विचित्र-प्रबन्ध

मूल-लेखक

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२४

प्रथमावृत्ति] [मूल्य २)

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

विचित्र-प्रबन्ध की

विषयानुक्रमणिका

———

विचित्र प्रबन्ध



लाइब्रेरी

महासागर की सैकड़ों वर्ष की लहरें यदि इस तरह बाँधकर रक्खी जा सकतीं कि ये, सोरहे बालक की तरह, चुपचाप पड़ी रहतीं तो उस नीरव महाशब्द के साथ इस लाइब्रेरी की तुलना की जा सकती। यहाँ भाषा चुप है, प्रवाह स्थिर है, मनुष्य के आत्मा का अमर प्रकाश काले काले अक्षरों की श्रृङ्खला से जकड़ा हुआ काग़ज़ के कारागार में बँधा पड़ा है। यदि ये मानवात्मा के स्वर्गीय प्रकाश कहीं सहसा विद्रोही हो उठें, अपनी निःस्तब्धता को तोड़ डालें, अक्षरों की श्रृङ्खला को तोड़ कर बाहर निकल आवें तो! हिमालय के शिखर पर आँधी कड़ी बर्फ़ के बीच जैसे कितनी ही बहिया बँधी हुई हैं वैसे ही यहाँ लाइब्रेरी में मनुष्य के हृदय की बहियाओं को किसने बाँध रक्खा है!

बिजली को मनुष्य ने लोहे के तार में बाँध दिया है, परन्तु कौन जानता था कि मनुष्य शब्द को चुप्पी में बाँध सकेगा! कौन जानता था कि मनुष्य सङ्गीत को, हृदय की आशा को, जागते हुए आत्मा की आनन्द-ध्वनि को, आकाश की दैववाणी को काग़ज़ की पुड़िया में बाँध रक्खेगा? कौन जानता था कि मनुष्य भूत-काल को वर्तमान काल में क़ैद कर लेगा! कौन समझता

था कि अगाध काल-समुद्र के ऊपर इस प्रकार पुस्तकों का पुल बाँधा जायगा!

लाइब्रेरी के बीच हम हज़ारों मार्ग के चौराहे पर खड़े हुए हैं। कोई मार्ग अनन्त समुद्र की ओर गया है, कोई मार्ग अनन्त उच्च शिखर पर गया है, और कोई मार्ग मनुष्य-हृदय की सबसे निचली तह की ओर गया है। चाहे जिस ओर जाइए, कोई रुकावट न होगी। मनुष्य ने अपनी रक्षा को इतनी सी जगह में बाँध रक्खा है।

शङ्ख के भीतर समुद्र का शब्द सुन पड़ता है, वैसे ही क्या इस लाइब्रेरी में तुम हृदय के उत्थान और पतन का शब्द सुन पाते हो? यहाँ जीवित और मृत मनुष्यों के हृदय पास ही पास एक ही महल्ले में रहते हैं। यहाँ वाद और प्रतिवाद, खण्डन और मण्डन दोनों एक साथ भाई भाई के समान रहते हैं। संशय और विश्वास, खोज और आविष्कार यहाँ मिल कर रहते हैं। यहाँ बलवान् और दुर्बल दोनों बड़े धैर्य और शान्ति के साथ अपना अपना जीवन बिताते हैं। यहाँ कोई भी किसी की उपेक्षा नहीं करता।

कितने ही नद, नदी, समुद्र, पर्वत आदि लाँघ कर मनुष्य का कण्ठ-स्वर यहाँ आकर पहुँचा है—कितनी ही शताब्दियों के किनारे से वह स्वर यहाँ आरहा है। आओ, यहाँ आओ, यहाँ प्रकाश के जन्मोत्सव का मङ्गल-गीत गाया जाता है।

जिन महापुरुषों ने पहले पहल अमृत-लोक का आविष्कार करके किसी दिन अपने चारों ओर मनुष्यों को बुलाकर कहा था—तुम लोग अमृत के पुत्र हो, तुम्हारा वासस्थान दिव्य धाम है,

उन्हीं महापुरुषों का स्वर आज, हज़ारों वर्ष बीतने पर भी, हज़ारों भाषाओं के द्वारा इस लाइब्रेरी में प्रतिध्वनित हो रहा है ।

क्या इस बंगाल प्रान्त से हमारे कहने की कोई बात नहीं है ? क्या हम लोगों के पास मनुष्य-समाज से कहने योग्य कोई ख़बर नहीं है ? जगत् के इस एक-तान संगीत के बीच क्या केवल बंगाल ही चुप रहेगा ?

हमारे पैरों के पास अवस्थित यह समुद्र क्या हम लोगों से कुछ नहीं कह रहा है ? क्या यह हमारी गङ्गा, हिमालय के शिखर से कैलास का कोई गीत अपने साथ नहीं लाती ? तो क्या हम लोगों के सिर पर अनन्त नील आकाश नहीं है ? वहाँ से अनन्त काल की सदा प्रकाशमयी नक्षत्र-लिपि को क्या किसी ने पोंछ डाला है ?

प्रति दिन देश-विदेश से, भूत और वर्तमान काल से हमारे पास मनुष्य-जाति के पत्र आते हैं। हम क्या उनके उत्तर में दो-चार चटकीले अँगरेज़ी के समाचार-पत्र लिख भेजेंगे ? सब देश असीम काल के पट पर अपना अपना नाम अङ्कित कर रहे हैं । बङ्गालियों का नाम क्या केवल अर्ज़ी के दूसरे सफ़े पर ही लिखा रहेगा ? आज जड़ भाग्य के साथ मनुष्य के आत्मा का संग्राम चल रहा है; सैनिकों को बुलाने के लिए पृथ्वी की हर एक दिशा में मारू बाजा बज उठा है; हम क्या केवल घर के छप्पर पर पड़े हुए कुम्हड़े-लौकी के लिए मुक़द्दमा तथा अपील ही दायर करते रहेंगे !

बहुत दिनों तक चुप रहने से आज बंगाल का जी ऊब उठा है । उसको अपनी भाषा में एक बार अपनी बात कहने दो । बंगालियों का कण्ठ-स्वर मिलने से विश्व-संगीत और भी मधुर हो जायगा ।

मा भैः (मत डरो)

मृत्यु एक बहुत बड़ी काली काली कठिन कसौटी है। इसी कसौटी पर संसार के खरे सोने की परख होती है।

आप देश को सचमुच प्यार करते हैं तो उसकी परीक्षा यह है कि आप देश के लिए मर सकते हैं कि नहीं? यदि आप अपने को प्यार करते हैं तो उसकी भी चरम परीक्षा यही है कि आप अपनी उन्नति के लिए अपने प्राणों को दे सकते हैं कि नहीं।

यदि हर एक के लिए ऐसा एक विश्वव्यापी भय संसार के सिर पर न बना रहता तो सच और झूठ को, छोटे बड़े और मँझोले को विशुद्ध भाव से तुलना कर के देखने का कोई उपाय ही न रहता।

इस मृत्यु की तुला में संसार की जो जातियाँ तौली जा चुकी हैं उन्हें 'पास' होने का प्रमाणपत्र मिल गया है। उन्होंने अपने को प्रमाणित कर दिया है, अपने और दूसरे के आगे उनके कुण्ठित होने का कोई कारण नहीं है। मृत्यु के द्वारा ही उनके जीवन की परीक्षा हो गई है। धन की यथार्थ परीक्षा दान के द्वारा होती है, और जिनके प्राण हैं उनकी परीक्षा प्राण देने की शक्ति से होती है। जिसके पास प्राण नहीं हैं वही मरने में कृपणता करता है।

जो मरना जानता है, सुख पर उसीका सच्चा अधिकार है। जो विजय प्राप्त करता है उसीको भोग करना सोहता है। जो अपने जीवन के साथ सुख और विलास को दोनों हाथों से दृढ़ता-पूर्वक पकड़े रहता है, सुख उस अपने घृणित दास के आगे ही अपना

सारा भण्डार नहीं खोल देता; उसे केवल जूठन देकर द्वार पर डाल रखता है। किन्तु जो मृत्यु का बुलावा पाते ही चुटकी बजाकर चल देते हैं, और सदा आदर पाये हुए सुख की ओर एक बार फिरकर भी नहीं देखते, सुख उन्हींको चाहता है और सुख को भी वेही जानते हैं। जो दृढ़ता के साथ त्याग कर सकते हैं वेही निःशङ्क हो कर भोग भी कर सकते हैं। जो मरना नहीं जानते उनके भोग-विलास की दीनता दुर्बलता और घृणितपन— घोड़े-गाड़ी तमग़ा-चपरास से—नहीं ढँका जा सकता। त्याग की विलासशून्य कठोरता में पुरुषार्थ है। यदि इच्छापूर्वक उस त्याग को हम स्वीकार करें तो निःसन्देह हम अपने को लज्जा से बचा सकते हैं।

यही दो मार्ग हैं। एक क्षत्रिय का है और दूसरा ब्राह्मण का। जो मृत्यु-भय की उपेक्षा करते हैं, पृथ्वी का सारा सुख और ऐश्वर्य उन्हीं का है। जो जीवन के सुख को तुच्छ समझते हैं उन्हीं को मुक्ति का आनन्द मिलता है। इन दोनों मार्गों में पुरुषार्थ है।

प्राण देंगे, यह बात कहना जैसे कठिन है, सुख न चाहिए—यह कहना भी उससे कम कठिन नहीं है। पृथ्वी पर यदि मनुष्यत्व के गौरव से सिर उठा कर चलना चाहें तो इन दोनों बातों में से एक बात अवश्य कहनी पड़ेगी। या तो पुरुषार्थ के साथ कहें कि "चाहिए!" और या पुरुषार्थ के साथ ही कहें कि "नहीं चाहिए!" "चाहिए" कह कर रोवेंगे, लेकिन लेने की शक्ति नहीं है; "नहीं चाहिए" कह कर पड़े रहेंगे, उद्योग न करेंगे—इस प्रकार के धिक्कार को धारण करके भी जो जीते हैं उन्हें यमराज यदि दया करके इस लोक से हटा न दें तो उनके मरने के लिए कोई उपाय नहीं है।

बंगाली इस समय लोक-समाज में बाहर निकले हैं। पर कठिनता यह है कि संसार की मृत्यु-शाला से उन्हें कोई 'पास' नहीं मिला है। अतएव उनकी बातचीत चाहे जितनी बड़ी हो, किन्तु किसी के निकट आदर पाने का वे दावा नहीं कर सकते। यही कारण है कि आज उनकी डींग की बातें बिलकुल बेसुरी मालूम पड़ती हैं। बिना मरे इसका संशोधन होना कठिन है।

अपने पूर्व पुरुषों के विरुद्ध हमारा यही अभियोग है। उन लोगों को एक न एक दिन तो मरना पड़ा ही, तो फिर वे भले-बुरे किसी अवसर पर यथोचित रीति से क्यों नहीं मरे? यदि वे मरते—प्राण देते—तो उत्तराधिकार-सम्बन्ध से आज हम भी अपनी मरने की शक्ति पर भरोसा कर सकते। उन लोगों ने अनेक कष्ट उठाये, इसलिए कि हमारे पुत्र-पौत्र आदि सुखी हों, वे अपना पेट काट कर अपनी सन्तानों के लिए खाने का सुभीता कर गये हैं, परन्तु वे मृत्यु से प्रेम करने का आदर्श नहीं छोड़ गये। इतना बड़ा दुर्भाग्य और इतनी बड़ी दीनता और क्या हो सकती है!

अँगरेज़ लोग हमारे देश की वीर जातियों को बुलाकर कहते हैं कि तुमने युद्ध किये हैं, प्राण देना जानते हो। जो कभी लड़े नहीं, जिन्हें केवल बकवाद करने का ही अभ्यास है, उनके दल में मिल कर तुम कांग्रेस में क्यों शरीक होगे!

इसका उत्तर तर्क के द्वारा दिया जा सकता है। परन्तु तर्क से अपमान दूर नहीं होता, तर्क लाज नहीं रखता। संसार के विश्वकर्मा नैयायिक नहीं थे। इसी से पृथ्वी पर पग पग पर

बहुत सी बातें युक्ति के विरुद्ध देखी जाती हैं। यही कारण है कि जो मरना नहीं जानते वे केवलयुद्ध के समय नहीं, शान्ति के समय में भी आपस में नहीं मिल सकते। तार्किक इस बात को युक्ति-विरुद्ध तथा अर्थ-हीन कह सकते हैं, परन्तु पृथ्वी पर यह बात सत्य है।

आराम-कुरसी पर लेट कर राजनीति के सुख-स्वप्न में कल्पना की दृष्टि से जिस समय हम देखते हैं कि सारा भारतवर्ष एक होकर मिलता जा रहा है उस समय बीच बीच में यह एक दुश्चिन्ता उत्पन्न होती है कि बङ्गाली के साथ सिख अपने भाई की तरह क्यों मिलेगा? क्या इसलिए कि बङ्गाली बी० ए०, एम० ए० पास है? परन्तु जब उससे कड़ी परीक्षा की बात उठेगी तब उसका सार्टिफ़िकेट कहाँ से निकलेगा? यह बात ठीक है कि केवल बातों से भी बहुत से काम निकल जाते हैं, परन्तु यह बात भी सभी जानते हैं कि चूड़े भिगोने के समय दही का काम बातों से नहीं निकलता। जहाँ आत्म-बलिदान की आवश्यकता है वहाँ उस कमी को कोरी बातें नहीं पूरा कर सकतीं।

किन्तु जब हम देखते हैं कि हम लोगों की पितामही, प्रपितामही आदि अपने पति के साथ मरी हैं, उन लोगों ने मृत-पति के साथ चिता में प्रवेश किया है, तब आशा होती है कि हमारे लिए मरना वैसा कठिन न होगा। यह ठीक है कि उन लोगों में से सभी अपनी इच्छा से नहीं मरी हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि अधिकांश स्त्रियों ने स्वेच्छापूर्वक पति का साथ दिया है। विदेशियों ने भी इस बात को स्वीकार किया है।

किसी भी देश में सभी निर्भय होकर स्वेच्छा से नहीं मरते। प्रसन्नता से स्वेच्छापूर्वक मृत्यु को आलिङ्गन करनेवालों की संख्या सभी देशों में थोड़ी होती है। शेष लोगों में से कोई दल के साथ मरता है, कोई लज्जा के मारे मरता है और कोई रीति-रवाज के लिए मरने को विवश होता है।

मन से भय बिलकुल नहीं जाता, तथापि डरने में स्वयं अपने तथा दूसरों के आगे लज्जा करनी चाहिए। बचपन से ही बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे भय पाते ही उसे अनायास स्वीकार न कर सकें। ऐसी शिक्षा मिलने से मनुष्य लोक-लज्जा में पड़कर साहस करता है। अगर मिथ्या गर्व ही करना है तो 'मुझ में साहस है' यह मिथ्या गर्व ही सब से अच्छा है। क्योंकि चाहे दीनता कहो, चाहे अज्ञता कहो, चाहे मूढ़ता कहो, मनुष्य-चरित्र में भय के बराबर छोटी चीज़ और नहीं है। 'भय नहीं है' यह कह कर जो मनुष्य मिथ्या अहङ्कार भी करता है, उसमें कम से कम लज्जा होने का सद्‌गुण तो प्रमाणित होता है।

जहाँ निर्भयता नहीं है वहाँ लज्जा का नाम भी काम आता है। साहस के समान लज्जा से भी मनुष्य में बल आता है। लोक-लज्जा में पड़कर प्राण-त्याग करना कुछ असंभव नहीं।

अतएव यह बात भी स्वीकार की जा सकती है कि हमारी पितामही-प्रपितामही आदि में से किसी किसी ने लोक-लज्जा से भी अपने प्राण दे दिये हैं। हम लोगों को यह बात स्मरण रखनी होगी कि उन लोगों में प्राण देने की शक्ति थी; चाहे वह शक्ति उन्हें

लज्जा से प्राप्त हुई हो, चाहे प्रेम से प्राप्त हुई हो और चाहे धर्म के उत्साह से प्राप्त हुई हो।

वास्तव में जत्था बाँध कर मरना सहज है। अकेले चिता की धधकती आग में प्रवेश करने के समान वीरता युद्ध-क्षेत्र में बहुत कम पाई जाती है।

बंगाल की ही नहीं, किन्तु सारे भारत को प्राण देनेवाली उन पितामही-प्रपितामहियों को हम आज नमस्कार करते हैं। उन्होंने जिस जाति को दूध पिलाया है उसे स्वर्ग में जाकर नहीं भूल सकतीं। आर्ये, तुम अपनी सन्तानों को संसार के सब से बड़े भय की परीक्षा में 'पास' कर दो। तुमने स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोचा होगा कि तुम्हारी वीरता से संसार के बड़े बड़े वीर लज्जित हो रहे हैं। घर के काम-काज को समाप्त करके जिस प्रकार तुम शाम को चुपचाप पति के पलँग पर पैर रखती थीं उसी प्रकार पति की मृत्यु के दिन, अपने संसार-सुख के समाप्त होने पर, संसार से बिदा लेकर सोहागिन के वेश में तुम सहज ही पति की चिता पर चढ़ी हो। मृत्यु को तुमने सुन्दर बना दिया है। तुमने उसे शुभ और पवित्र बनाया है। चिता को तुमने विवाह-शय्या की तरह आनन्दमय, कल्याणमय बना दिया है। इस देश में अग्नि तुम्हारे ही पवित्र जीवन की आहुति से पवित्र हुआ है। आज से हम लोग इस बात को कभी न भूलेंगे। यद्यपि हमारा इतिहास चुप है, तथापि हमारे घर-घर में अग्निदेव तुम्हारी वाणी सुना रहे हैं। तुम्हारा अक्षय और अमर स्मारक समझ कर उस अग्नि को—तुम्हारे अन्तिम विवाह के ज्योतिःसूत्र से बने हुए उज्ज्वल रेशमी

वस्त्र को—हम लोग प्रणाम करेंगे । वह अग्नि की ज्वाला ऊपर उठे हुए तुम्हारे बाहुओं के समान हम लोगों में से हर एक को आशीर्वाद दे । हे सदा चुपचाप रहनेवाली स्वर्गवासिनी वीराङ्गनाओ, मृत्यु कितना उज्ज्वल, सहज और उन्नत है, इस बात को तुम्हारे द्वारा हमें बतलाते हुए अग्निदेव हम लोगों के घर-घर अभय की घोषणा करें ।

———

पागल

पच्छिम की ओर एक छोटा सा शहर है। सामने एक चौड़ा रास्ता है । उसके दूसरे छोर पर कई टूटे छप्पर पड़े हैं। उनके ऊपर टीले पर पाँच छः ताड़ के पेड़, गूँगे के इशारे के समान, आकाश की ओर उठे हुए हैं ! एक खँड़हर के पास एक पुराना इमली का पेड़ है । उसके छोटे और चिकने घने पत्ते नीले बादल के समान शोभित हो रहे हैं । खँड़हरों में बकरियाँ चर रही हैं । पीछे की ओर दोपहर के समय आकाश की दिगन्त-रेखा तक वन की श्यामता देख पड़ती है ।

आज इस शहर के सिर पर से वर्षा ने एकाएक अपना काला घूँघट हटा दिया है ।

मेरा बहुत सा ज़रूरी लिखने-पढ़ने का काम पड़ा हुआ है । आज वह पड़ा ही रहेगा । यह मैं जानता हूँ कि इस समय इन कामों को न कर लेने से पीछे सन्ताप होगा । किन्तु जो हो उसे स्वीकार कर लेना होगा । पूर्णता कोई मूर्त्ति रखकर एकाएक न

जाने कब अपना आभास दे जाती है। उसे तो आगे से जानकर कोई तैयार नहीं रह सकता। किन्तु जब उसके दर्शन हुए तब ख़ाली हाथ उसका स्वागत नहीं किया जा सकता। उसके स्वागत में लाभ और हानि का विचार जाता रहता है। जो हानि-लाभ का विचार रखता है वह अवश्य ही बड़ा भारी व्यवहार-निपुण मनुष्य है। संसार में इसी प्रकार के मनुष्यों की उन्नति होती है। किन्तु हे अन्धकार-पूर्ण आषाढ़ मास के बीच के एक दिन के प्रकाशमय अवकाश, तुम्हारे इस शुभ्र मेघ-माला-मण्डित क्षणिक अभ्युदय के आगे मैं अपने सब ज़रूरी कामों को मिट्टी करता हूँ। आज मैंने भविष्यत् का हिसाब नहीं किया—आज मैं वर्तमान के हाथों बिक गया।

दिन पर दिन बीतते हैं। वे मुझसे कुछ भी दावा नहीं करते। उन दिनों हिसाब में, कुछ भी भूल या गड़बड़ नहीं होती,—सब काम सहज ढंग से हुआ करते हैं। तब जीवन एक दिन के साथ दूसरे दिन को—एक काम के साथ दूसरे काम को अच्छी तरह जोड़ कर अग्रसर होता है। सब काम बड़े मज़े में होते रहते हैं। किन्तु एकाएक कोई ख़बर न देकर एक विशेष दिन, सात समुद्र पार के किसी राजपुत्र की तरह, आकर उपस्थित होता है। प्रति-दिन के साथ उसका कोई मेल नहीं होता। तब दम भर में इतने दिनों की सब शृङ्खला बिगड़ जाती है। उस दिन नियमित कामों का करना कठिन हो जाता है।

परन्तु यही दिन हमारा बड़ा दिन है। यही अनियम का दिन है, यही काम-काज को मिट्टी करनेवाला दिन है। जो दिन

आकर हमारे प्रतिदिन के कामों को अस्त-व्यस्त कर देता है वही दिन हमारे आनन्द का है। दूसरे दिन बुद्धिमानों और सावधानों के दिन हैं, किन्तु कोई कोई दिन पूरे पागलों के होते हैं।

पागल शब्द हमारी घृणा के योग्य नहीं है। पागल निमाई (चैतन्यदेव) को पागल कह कर उनकी भक्ति करते हैं। हम लोगों के देवता महादेव भी पागल ही हैं। पागलपन का एक प्रकार का विकास ही प्रतिभा है—इस विषय को लेकर यूरोप के विद्वान् तर्क-वितर्क कर रहे हैं। परन्तु हम लोगों को इस बात के मान लेने में कोई संकोच नहीं है। प्रतिभा और पागलपन दोनों एक ही नहीं तो क्या है। प्रतिभा भी नियमों का उलट-फेर है। वह भी उलट-पलट देती है। ऐसे अनोखे दिन के समान वह भी एकाएक आकर सब काम-काजी लोगों के कामों को नष्ट कर देती है। कोई उसको गाली देने लगता है और कोई उससे आनन्दित होकर नाचने-कूदने लगता है।

भोलानाथ महादेव, जो हमारे शास्त्रों में आनन्दमय कहे जाते हैं, सब देवताओं में ऐसे ही अद्भुत और बेमेल हैं। उन्हीं पागल दिगम्बर को मैं आज के इस स्वच्छ नीलाकाश में व्याप्त सूर्य के प्रकाश में देख रहा हूँ। इस घने मध्याह्न के हृदय के भीतर डिम-डिम शब्द से उनका डमरू बज रहा है। आज मृत्यु की यह नग्न और शुभ्र मूर्त्ति इस कर्मक्षेत्र संसार में कैसी चुपचाप खड़ी है! कैसी सुन्दर और शान्त शोभा है!

भोलानाथ, हम जानते हैं कि तुम अद्भुत और विलक्षण हो। जीवन के प्रत्येक क्षण में तुम अद्भुत रूप से ही अपनी भिक्षा की

झोली लिये खड़े रहते हो! तुमने जीवन के सब हिसाब-किताब को नष्ट भ्रष्ट कर डाला है। तुम्हारे नन्दी भृङ्गी आदि गणों के साथ मेरी जान-पहचान है। मैं यह नहीं कह सकता कि आज उन्होंने तुम्हारी भङ्ग का—दो बूँद—प्रसाद मुझे नहीं दिया। उससे मुझे नशा हो गया है। इससे मेरा सब काम गड़बड़ा गया है। आज मेरे किसी भी काम में शृङ्खला नहीं है।

यह मैं जानता हूँ कि सुख प्रति दिन की वस्तु है। परन्तु आनन्द प्रतिदिन की सामग्री नहीं है। शरीर में कहीं धूल न लग जाय, इस प्रकार की शङ्का से सुख संकुचित और शङ्कित रहता है। परन्तु आनन्द धूल में लोट-पोट कर सब के साथ, अपने अन्तर को हटा कर, मिल जाता है। अतएव सुख धूल को हेय समझता है और आनन्द के लिए धूल भूषण है। कुछ खो न जाय, इस आशङ्का से सुख सदा भयभीत रहता है। परन्तु आनन्द अपना सर्वस्व लुटाकर तृप्त होता है। इसी कारण सुख के लिए खालीपन ग़रीबी है और आनन्द के लिए दरिद्रता ही ऐश्वर्य है। सुख नियम के बन्धन में रह कर बड़ी सावधानी से अपनी शोभा की रक्षा करता है। परन्तु आनन्द संहार में, मुक्ति में, अपने सौन्दर्य को उदारता के साथ प्रकाशित करता है। सुख बाहर के नियमों में बँधा है, और आनन्द उस बन्धन को तोड़ कर अपने नियमों को आप गढ़ता है। सुख अमृत के लिए ताक लगाये बैठा रहता है और आनन्द दुःख के विष को भी अनायास ही पचा जाता है। इसी कारण सुख को केवल अच्छे पदार्थों का ही पक्षपात है, और आनन्द के लिए भले-बुरे दोनों बराबर हैं।

इस संसार में एक पागल हैं। संसार में जो जो अद्भुत अभावनीय है उसे ही लाकर वह उपस्थित कर देता है। वह केन्द्र से अतीत "सेन्ट्रीफ्युनल" है। संसार के सभी पदार्थों को वह नियम के बाहर की ओर ही खींच रहा है। नियम का अधिष्ठाता देवता संसार के सब मार्गों को चक्करदार मार्ग का रूप देने की चेष्टा करता है, और यह पागल देवता सबको तोड़ फोड़ कर गोल कर देने की चेष्टा करता है। यह पागल देवता अपने ख़याल से सरीसृप (रेंगनेवाले जीवों) के वंश में पक्षियाँ और बन्दर के वंश में मनुष्यों की उद्भावना करता है। जो हुआ है और जो है उसी को चिरस्थायी रूप से रखने की संसार में एक भारी चेष्टा देखी जाती है। यह पागल उन सबको नष्ट भ्रष्ट करके, जो नहीं है, उसीके लिए राह तैयार करता है। इसके हाथ में वंशी नहीं है, इसके गाने में सामञ्जस्य का स्वर नहीं है। यह जब पिनाक बजाता है तब विधि-विहित यज्ञ नष्ट हो जाता है और न मालूम कहाँसे उड़कर अपूर्वता आ जाती है। पागलपन भी इसकी कीर्ति है और प्रतिभा भी इसी की कीर्ति है। इसके आकर्षण से जिसका तार टूट जाता है वह पागल होता है और जिसका तार अपूर्व स्वर से बज उठता है वह प्रतिभाशाली होजाता है। पागल दस आदमियों से अलग है और प्रतिभाशाली भी वही है। परन्तु पागल दस से अलग ही रह जाता है, और प्रतिभाशाली दस को ग्यारह के कोठे में खींच लाकर दस के अधिकार को बढ़ा देता है।

वह केवल पागल, केवल प्रतिभा-शाली ही नहीं है। वह हम

लोगों के प्रतिदिन के एकरंगे तुच्छ कार्यों में प्रकाशमान जटा-कलाप भयङ्कर रूप लेकर भी दीख पड़ता है। वह भयङ्कर पुरुष, प्रकृति में एक प्रकार के अतर्कित उत्पात और मनुष्य-हृदय में एक असाधारण पाप के रूप के आकार से जग उठता है। उस समय कितने ही सुखमिलन-जाल टूट फूट जाते हैं, कितने ही हृदयों के सम्बन्ध नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र, तुम्हारे ललाट की धधकती हुई जिस तृतीय नेत्र की अग्नि-शिखा की केवल चिनगारी से ही अँधेरे घर में प्रकाश हो जाता है, उसी अग्नि-शिखा के द्वारा हज़ारों मनुष्यों के हाहाकार के साथ आधी रात को कभी कभी गृहदाह होते भी देखा जाता है। हाय शम्भु, तुम्हारे नृत्य में तुम्हारे दाहने-बायें पैर के फेंकने से संसार में महापुण्य और महा-पाप ऊपर उछल पड़ते हैं। संसार के ऊपर प्रतिदिन की घटनाओं से जो एक साधारणता का पर्दा पड़ जाता है उसको तुम अच्छे और बुरे दोनों के प्रबल आघातों से छिन्न भिन्न कर देते हो और हृदय के प्रवाह को, जिसकी कोई आशा नहीं ऐसी, उत्ते-जना से बराबर तरङ्गित करके शक्ति की नई नई लीलाओं और सृष्टि की नई नई मूर्त्तियों को प्रकाशित कर देते हो। पागल, तुम्हारे इस रौद्र आनन्द में सम्मिलित होने से हमारा डरा हुआ हृदय विमुख न हो! संहार के रक्त-आकाश के बीच में सूर्य की किरणों से प्रकाशित तुम्हारा तीसरा नेत्र अपने नित्य प्रकाश से हमारे अन्तःकरण को प्रकाशित करे। नाचो पागल, नाचो! तुम्हारे नाचने से आकाश की लाखों करोड़ों योजनों तक व्याप्त उज्ज्वल ताराएँ जब तक घूमती रहेंगी तब तक हमारे हृदय में भय

के कारण तुम्हारे इस रौद्र संगीत का ताल टूट न जाय ! हे मृत्युञ्जय, हमारे सभी अच्छे और सब बुरे में आपकी ही जय हो !

हम लोगों के इस पागल-देवता का आविर्भाव चण चण भर पर नहीं हुआ करता। सृष्टि में इसका पागलपन भरा पड़ा है; घड़ी घड़ी भर पर हमें उसका परिचय प्राप्त होता है। प्रतिदिन ही जीवन को मृत्यु नवीन बनाता है, उत्तम को निकृष्ट उज्ज्वल बनाता है। तुच्छ को अभावनीय घटना महामूल्य बनाती है। हम जब परिचय पाते हैं तब रूप में अपरूप को और बन्धन में मुक्ति को स्पष्ट रूप से देख पाते हैं।

आज इस मेघ-मुक्त प्रकाश में उसी अपरूप की मूर्त्ति प्रकाशित हो उठी है। सामने का यह रास्ता, यह छप्पर के नीचे की मोदी की दूकान, वह खँडहर, यह सँकरी गली और ये वृक्ष आदि प्रतिदिन के परिचित होने के कारण बहुत ही तुच्छ जान पड़ते थे। इसीसे उन्होंने भी आज तक मुझे बाँध रक्खा था। प्रतिदिन इन्हीं कुछ पदार्थों में ही हमारी आँखें नज़रबंद थीं। आज वह तुच्छता अकस्मात् चली गई है। आज देख रहा हूँ कि अब तक सदा के अपरिचितों को परिचित समझ कर देख रहा था। आज भी वे पदार्थ पहले के समान मेरे चारों ओर वर्तमान हैं परन्तु उन्होंने मुझे अपने में अटकाया नहीं है। हर एक ने मुझे रास्ता देदिया है। मेरा पागल यही था। उस अपूर्व अपरिचित और अपरूप ने इस मोदी की दूकान को तुच्छ समझ कर छोड़ नहीं दिया। केवल जिस प्रकाश से वह देख पड़ता है वह प्रकाश मेरी आँखों में नहीं था। आज आश्चर्य यही है कि इस सामने के दृश्य, इन समीप के पदार्थों, ने आज बहुत दूर

की महिमा प्राप्त की है। उनके साथ हिममण्डित हिमालय के गौरी-शङ्कर शिखर की दुर्गमता और तरङ्ग-चञ्चल महासमुद्र की दुस्तरता अपनी सजातीयता जता रही है!

इसी तरह एक दिन अकस्मात् मालूम पड़ता है कि जिसको मैं अपनी गिरिस्ती, अपने घर की चीज़, समझता था वह मेरे घर का नहीं है। मैं जिसको हर घड़ी सुलभ समझ कर निश्चिन्त था उसके बराबर दुर्लभ वस्तु दूसरी नहीं है। आज तक मैं जिसको समझता था कि अच्छी तरह जानता हूँ और उसके चारों ओर की सीमा निश्चित करके निश्चिन्त था, आज देखता हूँ कि वह सब सीमाओं से अलग होकर एक अपूर्व रहस्यमय हो उठा है। जिसको छोटा, नियम और परिस्थिति के अनुकूल सुन्दर, व्यवस्था से स्थापित तथा अपना समझता था, उसको नाश की ओर से—इस श्मशानवासी पागल की ओर से एकाएक देखने पर मुँह से बात नहीं निकलती! कैसा आश्चर्य है! यह कौन है! जिसको सदा से जानता था वह यह कौन है! जो एक ओर से घर का है वही दूसरी ओर से हृदय का है। जो एक ओर से काम का है वही दूसरी ओर से सम्पूर्ण आवश्यकों के बाहर है। जिसको एक ओर से छू रहा हूँ वही दूसरी ओर क़ाबू के बाहर है। जो एक ओर से सबके साथ ख़ूब मिल गया है वही दूसरी ओर से बिलकुल बेमेल और भयङ्कर है। वह अपने में आप वर्तमान है।

नित्य जो नहीं देख पड़ता था उसे आज देखा। रोज़ के पचड़े से छुटकारा पाकर आज जैसे जान बची। मैं सोचता था कि चारों ओर के परिचित पदार्थों के घेरे में नित्य के नियमों से मैं

बँधा हुआ हूँ, परन्तु आज देखता हूँ कि मैं सदा से एक महान् अपूर्व की गोद में खेल रहा हूँ। मैंने सोचा था कि आफ़िस के बड़े साहब की तरह एक बहुत बड़े हिसाबी के हाथ में पड़कर, सामने जाकर, संसार में नित्य हिसाब कर रहा हूँ—किन्तु आज देखा कि उस बड़े साहब से भी बड़े के यहाँ हिसाब का आदर नहीं है। उस पागल के उदार अट्टहास्य को सुनकर हृदय में धैर्य हुआ। जल-स्थल-आकाश तथा सात लोकों में गूँजनेवाले उसके अट्टहास्य को सुनकर जान बची। मेरा वहीखाता ज्यों का त्यों पड़ा रह गया। मैंने अपने ज़रूरी कामों का बोझ इसी अनोखे के चरणों के पास फेंक दिया। उसके ताण्डव नृत्य की चोट से वह चूर चूर होकर धूल में मिल कर उड़ जाय!

रङ्गमञ्च

भरत के नाट्यशास्त्र में नाट्यमञ्च का वर्णन देखा जाता है। किन्तु उसमें दृश्यपट (पर्दे) का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। उसका उल्लेख न होने से, मेरी समझ में, कोई हानि भी नहीं।

जहाँ कला-विद्या का एकाधिपत्य है वहीं उसका पूर्ण गौरव भी है। सौत के साथ रहने से स्त्री को छोटा बनना ही पड़ेगा;—ख़ासकर अगर सौत ज़बरदस्त हो। यदि रामायण को सुर से पढ़ें तो बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक सुर को एक ही ढंग में रहना पड़ेगा। राग-रागिनी के हिसाब से उस बेचारे सुर की कभी उन्नति नहीं हो सकती। जो काव्य ऊँची श्रेणी के हैं

उनका सङ्गीत भी ख़ास अपने ही नियम का होता है। बाहरी सङ्गीत की सहायता की वे अवज्ञा के साथ उपेक्षा करते हैं। सङ्गीत भी, जो ऊँची श्रेणी के हैं वे, अपने ही नियम से अपनी बात कहते हैं। वे बातों के लिए कालिदास या मिल्टन के मुँह की ओर नहीं ताकते। वे बहुत ही तुच्छ "तूम-ताना-नाना" को लेकर ही अपना काम बड़े मज़े में पूरा कर लेते हैं। चित्र, सङ्गीत और बातचीत मिला कर ललितकला का एक स्वाँग किया जा सकता है। किन्तु वह एक तरह का खेल—बाज़ार की चीज़—होगा। उसे राजकीय उत्सव का उच्च आसन नहीं दिया जा सकता।

किन्तु श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य स्वभाव से ही कुछ कुछ पराधीन हुआ करता है। बाहर की सहायता से ही अपने को सार्थक करने के लिए विशेष रूप से उसकी सृष्टि हुई है। यह बात उसे स्वीकार ही करनी पड़ती है कि दृश्यकाव्य को अभिनय की अपेक्षा है।

पर हम इस बात को नहीं स्वीकार करते। जिस प्रकार पति-व्रता स्त्री अपने पति को छोड़कर और किसी को नहीं चाहती, उसी प्रकार अच्छा काव्य भावुक (सहृदय) के सिवा और किसी की अपेक्षा नहीं रखता। सभी साहित्य के पढ़नेवाले मन ही मन अभिनय करते हैं। उस अभिनय में जिस काव्य की सुन्दरता प्रकाशित नहीं होती वह काव्य किसी कवि को यशस्वी नहीं बनाता।

बल्कि यह बात कह सकते हो कि अभिनय-विद्या बिलकुल पराधीन है। वह अनाथ है, इस कारण नाटक की प्रतीक्षा में बैठी

रहती है। नाटक के गौरव के सहारे ही वह अपना गौरव दिखा सकती है।

जिस प्रकार लोक में स्त्री-भक्त पति की हँसी होती है उसी प्रकार नाटक भी यदि अभिनय की अपेक्षा करके अपने को छोटा बनावे तो निःसन्देह वह भी वैसे ही उपहास के योग्य हो उठता है। नाटक का भाव इस प्रकार का होना चाहिए—हमारा अभिनय होता हो तो हो और यदि न हो तो अभिनय का ही भाग्य फूटा समझना चाहिए। इससे हमारी कोई हानि नहीं है!

जो हो, अभिनय को काव्य की अधीनता माननी ही पड़ेगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अभिनय को सब कला विद्याओं की ग़ुलामी करनी पड़ेगी! यदि वह अपने गौरव की रक्षा करना चाहे तो उसे उचित है कि जितनी अधीनता न मानने से उसका स्वरूप प्रकाशित न हो सकता हो उतनी ही अधीनता वह स्वीकार करे। उससे अधिक कुछ भी सहायता उसे नहीं लेनी चाहिए। यदि वह उससे अधिक सहायता ले तो यह उनके लिए अपमान है।

यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि नाटक की बातें अभिनय करनेवाले के लिए विशेष आवश्यक हैं। कवि ने हँसी की जो बातें रक्खी हैं उन्हीं से उसे हँसना पड़ता है, कवि उसे जहाँ रोने का मौक़ा देता है वहीं रोकर उसे दर्शकों की आँखों में आँसू लाने पड़ते हैं। किन्तु चित्र की क्या आवश्यकता है? वह तो पर्दे में अभिनय करनेवाले के पीछे लटका रहता है। अभिनेता उसकी सृष्टि नहीं करता; वह केवल पट में अंकित रहता है। मेरी समझ में उसके द्वारा अभिनेता की अयोग्यता और

कापुरुषता ही प्रकाशित होती है । इस प्रकार जिस उपाय के द्वारा वह दर्शकों के मन में विभ्रम उत्पन्न करके अपने काम को सहज बना लेता है वह उपाय चित्रकार से भीख माँग कर लाया हुआ है ।

इसके अलावा जो दर्शक अभिनय देखने आया है उसके पास क्या अपनी पूँजी कुछ भी नहीं है ? उसमें अपनी शक्ति क्या कुछ भी नहीं है ? वह क्या निरा बच्चा है ? विश्वास-पूर्वक क्या उस पर कोई भी बात छोड़ी नहीं जा सकती ? यदि यह सत्य हो तो दूना दाम देने पर भी वैसे लोगों के हाथ अभिनय देखने का टिकट नहीं बेचना चाहिए ।

यह तो अदालत में गवाही देना नहीं है जो प्रत्येक बात को शपथ-पूर्वक प्रमाणित करना पड़ेगा ? जो विश्वास करने के लिए, आनन्द करने के लिए, आये हैं उनको ठगने के लिए इतनी बड़ी तैयारी की आवश्यकता ही क्या है ? वे (दर्शक) अपनी कल्पना-शक्ति को घर पर ताले में बन्द करके नहीं आते। कुछ तुम सम-झाओ और कुछ वे स्वयं समझें । अभिनेता और दर्शकों में ऐसे ही समझौते का सम्बन्ध है ।

वृक्ष की ओट में खड़े होकर दुष्यन्त सखियों के साथ शकु-न्तला की बातचीत सुन रहे हैं । अच्छी बात है । वह बातचीत, कवि के शब्दों में, रस का रङ्ग ख़ूब जमाकर कहते जाओ । उस समय मेरे सामने समूचे वृक्ष उपस्थित न रहने पर भी मैं उस बातचीत से वृक्षों का अनुमान कर ले सकता हूँ । इतनी सृजन-शक्ति—कल्पना-शक्ति—मुझमें है । दुष्यन्त-शकुन्तला और अनसूया-प्रियंवदा के चरित्र के अनुरूप हर एक हाव-भाव तथा उनके कण्ठस्वर के ढङ्ग आदि का

प्रत्यक्ष की तरह स्वयं अनुमान कर लेना कठिन है। अतएव उनको जब हम प्रत्यक्ष वर्त्तमान देख पाते हैं तभी उस रस का हृदय में उदय होता है। पर दो वृक्षों, एक घर अथवा एक नदी, की कल्पना कर लेना कुछ कठिन नहीं है। इतना समझ जाने का काम भी हमारे हाथ में न रख कर चित्र-द्वारा उक्त दृश्यों को प्रत्यक्ष दिखाना हम पर घोर अविश्वास करना है।

इसी कारण मुझे अपने देश की 'यात्रा' (रामलीला, रहस की लीला के ऐसे स्वाँग) अधिक अच्छी मालूम होती है। 'यात्रा' के अभिनय में अभिनेता तथा दर्शकों के बीच विशेष अन्तर नहीं रहता। यहाँ परस्पर के विश्वास और अनुकूलता पर भरोसा रखने के कारण सभी काम बड़ी उत्तमता से किये जाते हैं। यहाँ नाटक का सार पदार्थ—काव्यरस—अभिनय के द्वारा, फुहारे की तरह दर्शकों के आनन्दित हृदय पर पड़ता है। जब कम फूलोंवाले बाग़ से फूल ढूँढ़ने में मालिन विलम्ब कर देती है तब उसे प्रमाणित करने के लिए इसकी क्या आवश्यकता है कि पाठकों के आगे समूचे समूचे पेड़ ला कर खड़े कर दिये जायँ ? समूचे बाग़ का पता तो वह अकेली मालिन ही दे देती है। यदि ऐसा न हो तो उस मालिन में ही क्या गुण ठहरा, और वे दर्शक भी काठ के पुतले की तरह क्या करने बैठे हैं ?

शकुन्तला के कवि को यदि रङ्गमञ्च पर दृश्यपट (सीनरी) की बात सोचनी पड़ती तो वह शुरू में ही मृग के पीछे रथ दौड़ाना बन्द कर देते। यह ठीक है कि वह महाकवि थे, रथ के रुकने पर भी उनकी क़लम न रुकती; किन्तु मेरा कहना यह है कि जो तुच्छ

है उसके लिए, जो बड़ा है वह, अपने किसी अंश को क्यों हीन होने देगा ? भावुक दर्शक के हृदय में रङ्गमञ्च है और उसमें स्थान की कमी नहीं है। वहाँ किसी जादूगर के हाथ से दृश्य-पटों की रचना अपने आप हुआ करती है। उसी मञ्च, उसी दृश्यपट, से नाटककार को काम है। कोई कृत्रिम मञ्च या कृत्रिम पर्दा कवि की कल्पना के योग्य नहीं हो सकता।

इसी कारण दुष्यन्त और सारथि जिस समय एक ही जगह स्थिर भाव से खड़े होकर वर्णन और अभिनय के द्वारा रथ के वेग की आलोचना करते हैं, उस समय अनायास ही दर्शक समझ लेते हैं कि रङ्गमञ्च छोटा है, परन्तु कवित्व छोटा नहीं है। इसी से वे रङ्गमञ्च की इस अनिवार्य त्रुटि को ख़ुशी से माफ़ कर देते हैं और अपने चित्त को ही उस छोटे घेरेवाले रङ्गमञ्च में फैला कर मञ्च को महान् बना देते हैं। परन्तु रङ्गमञ्च के लिए यदि काव्य को हीन बनना पड़ता तो इन कई एक लकड़ी के टुकड़ों को कौन माफ़ कर देता ? वह त्रुटि किसे न खटकती ?

शकुन्तला नाटक को बाहरी चित्रपटों की कोई आवश्यकता न थी। इसी से उसने अपने लिए आप चित्रों की सृष्टि करली है। उसका कण्व का आश्रम, उसका स्वर्ग के मार्ग का मेघ-जगत्, उसका कश्यप का तपोवन अनूठा है। इन चित्रों के लिए वह परमुखापेक्षी नहीं बना। उसने आप ही अपने को पूर्ण कर लिया है। चरित्र की सृष्टि करने अथवा स्वभाव का चित्र खींचने में उसे अपनी ही कवित्व-सम्पत्ति पर भरोसा है।

हमने एक दूसरे प्रबन्ध में यह बात कही है कि यूरोप के

नाटकों में वास्तविक सत्य के बिना काम नहीं चल सकता। कल्पना केवल उनका मनोरंजन नहीं करती, काल्पनिक को बिल्कुल वास्तविक बनाकर बालकों की तरह उनको बहलाना भी पड़ता है। वहाँ काव्य-रस में प्राणसंचार करनेवाली केवल विशल्यकरणी ओषधि (अर्थात् कल्पना) से काम नहीं चल सकता, उस विशल्यकरणी के साथ ही साथ समस्त गन्ध-मादन पर्वत (अर्थात् सत्य की नक़ली सामग्री) तक चाहिए। इस समय कलियुग है, अतएव गन्धमादन को उठा लाने के लिए इंजीनियरी की आवश्यकता है, और उसके लिए ख़र्च भी कम नहीं करना पड़ता। विलायत के स्टेज (रङ्गमञ्च) पर यही अभिनय दिखाने के लिए जितना व्यर्थ ख़र्च होता है उतने में भारत के कितने ही भारी दुर्भिक्ष दूर हो सकते हैं।

पूर्वी देशों के काम-काज, खेल-तमाशे सभी सीधे और सहज हैं केले के पत्ते या पत्तल में हम भोजन कर सकते हैं, इसीसे भोज का सच्चा आनन्द—सबको बे रोक टोक अपने घर पर निमन्त्रित कर लाना—प्राप्त होता है। यदि बाहरी सामग्रियों की अधिकता होती, यदि अधिक दिखाऊ आयोजन किये जाते, तो निःसन्देह उनमें भोज का असली आनन्द कुचल कर मर जाता।

विलायत का अनुकरण करके जो थियेटर आजकल हमारे देश में किया जारहा है, वह बाहरी पदार्थों से दबा हुआ एक फूला हुआ पदार्थ है। उसको हिलाना कठिन है—अपने अनुकूल करना कठिन है और धनी-ग़रीब आदि सबके सामने उसे उपस्थित करना भी असाध्य है। इन थियेटरों में लक्ष्मी के वाहन उल्लू ने सरस्वती

के आसन-कमल को ढँक रक्खा है। इनमें कवि और गुणी की प्रतिभा की अपेक्षा धनी की पूँजी ही अधिक चाहिए। यदि दर्शक पर विलायती लड़कपन का प्रभाव न पड़ा हो और अभिनेता को काव्य पर और अपने ऊपर यथार्थ विश्वास हो, तो अपने यहाँ के अभिनय के चारों ओर से उसके बहुमूल्य व्यर्थ सामान के झंझट को झाड़ू से हटा कर, उसकी विशेषता को छुटकारा दिलाकर, गौरवान्वित करना ही सहृदय हिन्दू-सन्तान का कर्त्तव्य होना चाहिए। बाग़ के दृश्य को बिलकुल बाग़ लगा कर ही दिखावेंगे—स्त्री-चरित्र का अभिनय किसी स्त्री ही के द्वारा करावेंगे—इस प्रकार के विलायती ख़यालों के उजड्डपन को छोड़ देने का समय अब आ गया है।

साधारणतः यह कहा जा सकता है कि कठिनता अयोग्यता का चिह्न है। यदि शिल्प में वास्तविकता कीड़े की तरह घुस जाती है तो उसके भीतर के सब रस को चूस लेती है, और जहाँ अजीर्ण-वश रस की भूख नहीं है वहाँ बहुमूल्य बाहरी अधिकता धीरे धीरे भयानक रूप से बढ़ने लगती है। अन्त को यही होता है कि अन्न तो छिप जाता है, और चटनी का ढेर लग जाता है।

मयूरध्वनि

(एक दिन अकस्मात् घर के पालतू मोर की ध्वनि सुन कर मेरे मित्र बोल उठे—मैं यह मोर का कर्कश शब्द नहीं सुन सकता। मालूम नहीं, मोर के शब्द को कवियों ने अपने काव्यों में क्यों स्थान दिया।)

कवियों ने वसन्त के कुहू-स्वर (कोयल के शब्द) और वर्षा की मयूर-ध्वनि को अपने काव्यों में समान आदर दिया है। यह देख कर सहसा यह बात समझ में आ सकती है कि अवश्य कवि कैवल्य-मुक्ति को प्राप्त होगया था; इसीसे अच्छे-बुरे का, कोमल और कड़े का भेद उसे मालूम नहीं पड़ता था।

मयूर ही की ध्वनि क्यों, मेंढक के शब्द और झिल्ली की झनकार को कोई भी मधुर शब्द नहीं कह सकता। किन्तु कवियों ने इनके शब्दों की भी उपेक्षा नहीं की। यह ठीक है कि कवि प्रियतमा के कण्ठ-स्वर के साथ इन शब्दों की तुलना करने का साहस नहीं कर सके। किन्तु छः ऋतुओं के महासङ्गीत का प्रधान अङ्ग कह कर उनको सम्मान दिया है।

एक प्रकार की मधुरता है। उस मधुरता में किसी को सन्देह नहीं। वह बहुत ही मीठी है। उसकी मधुरता प्रमाणित होने में घड़ी भर की देर नहीं लगती। इन्द्रियों की सन्देह-रहित गवाही लेकर मन उसके सौन्दर्य को स्वीकार कर लेने में कुछ भी तर्क नहीं करता। वह मधुरता हम लोगों के मन के द्वारा आविष्कृत नहीं होती, किन्तु इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होती है। अतएव मन उसका तिरस्कार करके कहता है—यह अत्यन्त मधुर है, केवल मधुर है। अर्थात् उसकी मधुरता समझने में हृदय की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती; वह मधुरता इन्द्रियों के द्वारा ही मालूम पड़ जाती है। जो गाने की विद्या में समझदार समझे जाते हैं वे बड़ी उपेक्षा दिखला कर कहते हैं—इस मनुष्य का गाना मीठा है। इसका भाव यही है कि मधुर गायक का गान इन्द्रियों के सामने

ही अपनी मधुरता प्रकाशित कर देता है; अतएव अनायास ही उसको वाहवाही भी मिल जाती है। परन्तु यह है गाने का अपमान। मार्जित रुचि और शिक्षित मन के दरबार में उस गाने की पैठ नहीं। जो लोग पाट की जाँच करने में निपुण हैं वे हरे पाट नहीं लेते। वे कहते हैं, मुझे सूखा पाट दो; जिससे मैं उसका ठीक वज़न जान सकूँ। जो लोग गाना समझते हैं वे कहते हैं कि व्यर्थ रस के द्वारा गान का व्यर्थ गौरव मत बढ़ाना—मुझे सूखा माल दो। मैं उसका ठीक वज़न समझ कर, ख़ुश होकर, उसके दाम चुका दूँगा। बाहर की व्यर्थ मिठास असल चीज़ की क़ीमत को कम कर देती है।

जो वस्तु स्वभाव से ही मधुर है वह शीघ्र ही मन में आलस्य ले आती है। उसमें अधिक देर तक मनो-निवेश नहीं रह सकता। शीघ्र ही उसकी सीमा के पार पहुँच कर उससे मन ऊब जाता है और कहता है—बस, बहुत हुआ अब रहने दो।

इसका कारण यह है कि जिसने जिस विषय में विशेष शिक्षा प्राप्त की है वह उस विषय के शुरू के बहुत ही सहज और ललित अंशों का विशेष आदर नहीं करता। क्योंकि उसने इन बातों की सीमा जान ली है। वह समझता है कि इनकी दौड़ दूर तक नहीं है। इसी कारण उसका हृदय उन बातों में नहीं लगता। अशिक्षित मनुष्य उसी सहज अंश को समझ सकता है, और उस समय तक भी उसे उसकी सीमा का ज्ञान नहीं होता। इसी कारण उसे इस उथले अंश में ही आनन्द मिलता है। समझदार आदमी उस आनन्द को एक अजीब बात समझता है। कभी कभी तो वह उस आनन्द को कपट का आडम्बर भी मान लेता है।

इसी कारण सब तरह की कलाविद्या के सम्बन्ध में शिक्षित और अशिक्षित के आनन्द की जुदी जुदी राहें हैं। एक पक्ष कहता है, तुम क्या समझोगे! दूसरा पक्ष बिगड़ कर कहता है—समझने की जितनी बातें हैं वे सब तुम्हीं तो समझते हो, इस संसार में और दूसरा कोई नहीं समझ सकता!

औचित्य का आनन्द, उचित सन्निवेश का आनन्द, किसी दूर-वर्ती के साथ सम्मिलन का आनन्द और परिचित पदार्थ का किसी मनोहर रूप में देखने का आनन्द, ये सब आनन्द मानसिक आनन्द हैं। बिना भीतर घुसे, बिना समझे, इस आनन्द को भोगने का दूसरा उपाय नहीं है। केवल बाहर से चटपट जो सुख प्राप्त होता है उसकी अपेक्षा यह आनन्द चिरस्थायी और गहरा होता है।

एक दृष्टि से तो यह आनन्द उससे भी गहरा है। जो गहरा नहीं है वह शिक्षा बढ़ने के साथ, अभ्यास के साथ, क्रमशः क्षीण होता जाता है और उसका खालीपन प्रकट होजाता है। और जो गंभीर है, उसमें बहुत लोगों की पैठ न होने पर भी वह चिरस्थायी होता है। उसमें जो एक श्रेष्ठता का आदर्श होता है वह सहज ही जीर्ण नहीं होता।

इसमें सन्देह नहीं कि जयदेव का "ललितलवङ्गलता" अच्छा है, परन्तु इसका आनन्द थोड़ी ही देर के लिए है। उसे इन्द्रियाँ मन महाराज के पास ले जाती हैं। मन उसको एक बार छूकर रख देता है। फिर इन्द्रियों के ही भोग में वह समाप्त हो जाता है। अच्छा, "ललितलवङ्गलता" के पास "कुमार-सम्भव" के एक श्लोक को रख कर तो देखो;—

आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां
वासो वसाना तरुणार्करागम्।
पर्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा
संचारिणी पल्लविनी लतेव॥

छन्द भी कोई सुन्दर नहीं है, इसके शब्द भी संयुक्त अक्षरों से भरे पड़े हैं। तो भी ऐसा भ्रम होता है कि यह श्लोक ललित-लवङ्ग-लता की अपेक्षा सुनने में भी मधुर लगता है। किन्तु वह भ्रम है। यहाँ मन अपनी सृजन-शक्ति के द्वारा इन्द्रिय-सुख को पूर्ण कर देता है। जहाँ लुब्ध इन्द्रियाँ जमा होकर भीड़ नहीं करतीं वहीं मन को ऐसी नई सृष्टि करने का अवसर मिलता है। "पर्याप्तपुष्प-स्तवकावनम्रा" इसके भीतर लय का जो उत्थान है, कठोरता और कोमलता ने उचित रूप से मिल कर छन्द में जो आन्दोलन पैदा कर दिया है वह जयदेव की कविता के समान अत्यन्त प्रत्यक्ष नहीं है; अत्यन्त गूढ़ है। मन आलस्य के साथ उसको पढ़ नहीं जाता, किन्तु स्वयं आविष्कार करके प्रसन्नता प्राप्त करता है। इसके भीतर जो एक भाव की सुन्दरता है वह भी पाठकों के मन के साथ षड्यन्त्र रच कर कानों से न सुन पड़नेवाले सङ्गीत की रचना करती है। वह सङ्गीत सारे शब्द-सङ्गीत को छोड़ कर चला जाता है। उस समय मालूम पड़ता है कि जैसे कान तृप्त होगये। परन्तु कानों के तृप्त होने की बात नहीं है; मन की माया कानों को धोखा देती है।

हमारे इस मायावी मन को स्वयं कल्पना का अवसर न दिया जाय तो वह किसी भी मधुरता को बहुत समय तक मधुर नहीं समझता। मन उचित सामग्री पाने से कठोर छन्द को ललित और

कठिन शब्द को कोमल बना ले सकता है। वह इसी शक्ति को काम में लगाने के लिए कवियों से अनुरोध करता है।

मयूर-ध्वनि कर्ण-मधुर नहीं है। परन्तु मन में ऐसी शक्ति है कि वह विशेष-अवस्था तथा विशेष-समय में कठिन को भी मधुर सुन सकता है। इस मधुरता का स्वरूप कोकिल की तान की मधुरता से भिन्न है। नव वर्षा की अवाई के समय पर्वत की तराईवाले लता-परिवृत प्राचीन गहन वन में जो एक प्रकार की मस्ती आ जाती है, मयूरध्वनि उसी मस्ती का गान है। आषाढ़ में श्यामवर्ण ताल-तमाल-वन के दूने घने अन्धकार में, माता के स्तन-पान की इच्छा से हाथ उठाये सैकड़ों हज़ारों बालकों के समान, अनेक शाखा-प्रशाखाओं के आन्दोलन-पूर्ण महान् उल्लास के बीच काँसे की झनकार के समान मयूर की ध्वनि उठती है। उसके द्वारा वनस्पति-मण्डली के बीच वन के महोत्सव की सूचना प्रकाशित होती है। कवि का मयूर-ध्वनि का वर्णन उसी वर्षा-काल का गान है। उसकी मधुरता कानों को नहीं मालूम होती। उस मधुरता को मन ही जानता है। इसी कारण उसको सुनकर मन अत्यन्त प्रसन्न होता है। उस मधुरता के साथ मन को समस्त मेघमण्डित आकाश, छाया-पूर्ण वन, नीला पर्वत-शिखर और जड़-प्रकृति के अव्यक्त आनन्द आदि भी प्राप्त होते हैं। मयूर-ध्वनि इन दृश्यों का स्मारक है।

इसी कारण विरहिनी की विरह-वेदना के साथ कवि-वाणी मयूर-ध्वनि का भी वर्णन करती है। मयूर-ध्वनि श्रुति-मधुर होने के कारण विरहिनी को व्याकुल नहीं करती; किन्तु वह वर्षा के

समस्त दृश्यों को सामने लाकर खड़ा कर देती है; इसी कारण विरहिनी उसे सुन कर व्याकुल होती है। स्त्री-पुरुष के प्रेम में एक आदिम भाव वर्तमान है। वह भाव बाह्य प्रकृति के बहुत ही पास है। वह जल-स्थल-आकाश आदि से मिला हुआ है। छः ऋतुएँ अपने नये नये फूलों के साथ इस प्रेमभाव को भी अनेक रङ्गों से रँग देती हैं। जो नवीन पत्तों को हिलाता है, नदी में लहरें पैदा करता है, और अन्न के पौधों को कँपाता है, वही इस भाव को भी अपूर्व चञ्चलता से आन्दोलित कर देता है। पूर्णिमा के प्रकाश से इसकी वृद्धि होती है और सन्ध्या की लालिमा से लज्जित होकर यह वधू का वेश धारण करता है। प्रत्येक ऋतु जिस समय जादू की लकड़ी से इस प्रेम को छूती है उस समय यह पुलकित होकर जागे बिना नहीं रहता। वन के पुष्प-पल्लवों के समान यह भी प्रकृति के गुप्त स्पर्श के अधीन है। इसी कारण यौवन के आवेश से कातर कवि कालिदास ने वर्णन किया है कि स्त्री-पुरुषों का प्रेम, छः ऋतुओं के छः तारों में, किस किस सुर में बजता है। वे जानते थे कि जगत् में ऋतु-परिवर्तन का सबसे प्रधान प्रयोजन प्रेम को उत्तेजित करना ही है। पुष्पों को विकसित करना आदि सभी कार्य गौण हैं। इसी कारण मयूर-ध्वनि वर्षा ऋतु का निषाद स्वर है। उसका धक्का ठीक विरह-वेदना के ऊपर जाकर लगता है। विद्यापति ने लिखा है—

मत्त दादुरी डाके डाहुकी फाटि जावत छतिया।

यह दादुर का शब्द वर्षाकाल के मत्तभाव के साथ नहीं, घनघोर वर्षा के निविड़ भाव के साथ ख़ूब मेल खाता है। आज मेघों में

कोई वर्ण की विचित्रता नहीं है; तह पर तह नहीं जमी है। इन्द्राणी की किसी पुरानी दासी ने आकाश के आँगन को मेघों से बराबर करके मानो लीप दिया है। सारा आकाश काले-मटमैले रङ्ग का हो रहा है। अनेक प्रकार के अन्न के खेतों से विचित्रता धारण किये हुए पृथिवी पर अभी तक उज्वल प्रकाश की तूलिका (चित्र में रंग भरने की कूची) नहीं पड़ी; इसी कारण उसकी विचित्रता भी अभी फूट नहीं उठी। धान का कोमल मनोहर हरा रङ्ग, पाट का गहरा रङ्ग और ईख का पीला रङ्ग आदि सभी एक विश्वव्यापी काले वर्ण में मिले हुए हैं। हवा नहीं है। अभी पानी आवेगा, इस कारण कोई भी कीचड़-भरी राह में नहीं निकला। बहुत दिन पहले ही खेतों के सब काम समाप्त हो गये हैं। पोखरों में लबालब पानी भरा है। इस प्रकार के प्रकाश-हीन, गतिहीन, कर्महीन, विचित्रताहीन, कालिमामय एकाकार दिन में दादुर का शब्द ठीक सुर में सुन पड़ता है। उस शब्द का सुर ठीक इसी वर्णहीन मेघ के समान है। वह इसी दीप्ति-रहित प्रकाश के समान निःस्तब्ध निविड़ वर्षा में व्याप्त हो जाता है। वह शब्द वर्षा की सीमा को अधिक घना करके और भी बढ़ा देता है। वह सन्नाटे से भी बढ़कर एकान्त है। वह निभृत कोलाहल है। झिल्ली की झनकार भी इसका खूब साथ देती है। क्योंकि जैसा मेघ है, जैसी छाया है, उसी प्रकार झिल्ली की झनकार भी एक प्रकार का आवरण-विशेष है। वह स्वरमण्डल के लिए एक प्रकार का अन्धकार है। उससे वर्षा की रात्रि भी पूर्ण हो जाती है।

व्यर्थ बात

नियमित ख़र्चे से मनुष्य का यथार्थ परिचय नहीं होता, परन्तु व्यर्थ व्यय से मनुष्य का यथार्थ परिचय हो जाता है। क्योंकि मनुष्यों का नियमित ख़र्च बँधा हुआ रहता है और व्यर्थ ख़र्च मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार करता है।

जिस प्रकार व्यर्थ ख़र्चा है उसी प्रकार व्यर्थ बात भी है। व्यर्थ बातों से ही मनुष्य अपने को प्रकाशित कर देता है। उपदेश की बातें आज ही से नहीं किन्तु मनु के समय से नियमित हैं। और काम की बातें जिस मार्ग से प्रस्थान करती हैं वह मार्ग उन कर्मियों के पद-चिह्न से चिह्नित हो गया है। व्यर्थ बातें अपने मन के अनुसार बनाकर कही जाती हैं।

इसी कारण चाणक्य ने एक प्रकार के मनुष्य को बिलकुल चुपचाप रहने की आज्ञा दी है। परन्तु इस समय इस कठोर नियम में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। मेरी समझ से जिन मनुष्यों के लिए चाणक्य के कहे उक्त भद्र पुरुष "तावच्च शोभते" (तभी तक सोहते) हैं जब तक ऊँचे दर्जे की बातें कहते हैं, जब तक सबकी जानी और सब के द्वारा परीक्षित सच्ची बातों की घोषणा करते हैं; परन्तु उस समय उनके लिए आफ़त है जब वे कोई सहज बात अपनी भाषा में कहने का प्रयत्न करते हैं।

जो मनुष्य कहने की कोई ख़ास बात न रहने से कोई बात नहीं कह सकता—या तो वेद-वाक्य कहता है और या चुप बैठा

रहता है—हे चतुरानन! ऐसे मनुष्यों के कुटुम्ब में, साथ में, तथा परोस में रहना—

शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ।

इस पृथिवी में सारे पदार्थ प्रकाशवाले नहीं हैं। आग के बिना कोयला नहीं जलता, परन्तु स्फटिक बिना किसी की सहायता से सदा चमका करता है। कोयले से बड़े बड़े कारखाने चलते हैं, और स्फटिक की माला बना कर वह केवल गले में पहन ली जाती है। कोयला आवश्यक पदार्थ है और स्फटिक मूल्यवान् पदार्थ ।

स्फटिक ही के समान कुछ दुर्लभ मनुष्य भी स्वभाव ही से प्रकाशित होते रहते हैं। वे सहज ही अपने को प्रकाशित करते हैं। उनको किसी उपलक्ष्य की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु उनसे किसी विशेष स्वार्थ के सिद्ध होने की आशा कोई नहीं रखता। वे अपने को स्वयं प्रकाशित कर रहे हैं, यह देखकर ही लोग आनन्दित होते हैं। प्रकाश को मनुष्य बहुत अच्छा समझता है, वह उससे बड़ा प्रेम करता है। यहां तक कि अपने आवश्यक कामों को छोड़कर, भोजन करना भूलकर, मनुष्य प्रकाश के लिए लालायित हो उठता है। इस गुण के कारण मनुष्य निस्सन्देह एक प्रकार का श्रेष्ठ पतङ्ग कहा जा सकता है। प्रकाश-मय आँखों को देखकर जो जाति प्राण देने को तैयार होजाती है उसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं ।

परन्तु सभी पतङ्ग के पंख लेकर पैदा नहीं हुए। सभी को प्रकाश का मोह नहीं है। बहुत मनुष्य बुद्धिमान् और विवेकी भी

होते हैं। वे गुफा देखकर उसकी तह में पहुँचने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु प्रकाश देखकर उसके साथ ऊपर उड़ने की व्यर्थ चेष्टा नहीं करते। काव्य देखकर ये पूछते हैं—क्या इसमें लाभ की कोई बात है? और जब क़िस्सा-कहानी सुनते हैं तब उसे अष्टादश-संहिता से मिलाकर भारी अनुसन्धान द्वारा विशुद्ध धर्म-मत से प्रशंसा करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। जो अकारण है, जो अनावश्यक है उसके प्रति इन्हें कुछ लोभ नहीं है।

जो दल प्रकाश का उपासक है वह इस दल के लोगों पर प्रेम नहीं करता। वह दल जिन नामों से इस दल को पुकारता है उनका हम अनुमोदन नहीं कर सकते। वररुचि ने इन लोगों को अरसिक कहा है, इसको हम उचित नहीं समझते। इनके विषय में हम लोगों की जो धारणा है उसे हम लोग प्रकाशित नहीं करते। परन्तु हमारे पूर्वज मुँह सँभाल कर बात नहीं करते थे। इसका उदाहरण एक संस्कृत श्लोक में हमें मिलता है। उसमें लिखा है—सिंह के पैने नखों द्वारा हाथी के मस्तक से निकाला हुआ गजमुक्ता वन में पड़ा था, उसे देखकर एक भील की औरत दौड़ती हुई उसके पास आई। उसने उसे उठा लिया। जब उसने उसे दबाकर देखा और समझा कि यह पका हुआ बेर नहीं, मोती है तब उसने उसे दूर फेंक दिया। इससे यह साफ़ मालूम पड़ता है कि प्रयोजन के अनुसार जो लोग किसी वस्तु का मूल्य नियत करते हैं, केवल सौन्दर्य तथा उज्वलता का विकास जिन्हें कुछ भी विचलित नहीं कर सकता, उनकी तुलना कवि ने उस असभ्य स्त्री से की है। मेरी समझ में इनके विषय में कवि चुप ही रहते तो ठीक होता।

क्योंकि ये लोग क्षमताशाली हैं; विचार करने का काम प्रायः इन्हीं के हाथ में रहता है। ये विवेचक लोग गुरु का काम करते हैं। मेरी यही प्रार्थना है कि सरस्वती के काव्य कमल-वन में रहने वाले लोग अपने पास के बेंत के वन में रहनेवालों को दिक़ न किया करें।

साहित्य की यथार्थ व्यर्थ रचनाएँ कोई ख़ास बात कहने की स्पर्धा नहीं रखतीं। इसका उज्वल दृष्टान्त संस्कृत साहित्य का मेघदूत नामक ग्रन्थ है। इसमें धर्म की बात, अथवा कर्म का निरूपण नहीं है। यह पुराण भी नहीं है और इतिहास भी नहीं है। जिस अवस्था में मनुष्यों को चेतन-अचेतन का ज्ञान नहीं रहता, मेघदूत उसी अवस्थावाले मनुष्य का प्रलापमात्र है। उसको यदि बेर का फल समझकर कोई पेट भरने के इरादे से उठावे तो वह अवश्य ही दूर फेंक देगा, क्योंकि इसमें लाभ की कोई बात नहीं है। यह केवल मुक्ताफल है, इसमें विरही के फटे हुए हृदय का रक्त लगा हुआ है। यदि इसका वह चिह्न धोकर साफ़ कर दिया जाय तो भी इसके मूल्य में कमी नहीं हो सकती।

इसका कोई उद्देश्य नहीं है, इसी कारण यह काव्य इतना स्वच्छ और उज्ज्वल है। यह एक माया की नौका है। इस नौका पर सजल मेघ का पाल तना हुआ है, कल्पना की हवा इसे उड़ाये लिये जा रही है; एक विरही-हृदय की कामना लेकर यह नौका बड़े वेग से किसी अनिश्चित स्थान की ओर जा रही है। इस नौका में और कोई बोझ नहीं है।

टेनिसन ने Idle Tears में जो अकारण आँसू बहाने की बात

लिखी है, उसी व्यर्थ के आँसू बहाने का काव्य मेघदूत भी है। इस बात को सुनकर बहुत लोग मुझसे बहस करने के लिए तैयार हो जायँगे। बहुत लोग तो यह कहने लग जायँगे कि जब प्रभु के शाप से यक्ष अपनी प्रियतमा से अलग हुआ है तब तुम मेघदूत की अश्रुधारा को अकारण क्यों कहते हो? मैं बहस करना नहीं चाहता—अत: इन बातों का मैं कुछ उत्तर न दूँगा। लेकिन मैं यह ज़ोर देकर कह सकता हूँ कि यक्ष का निर्वासन आदि सब कालिदास की कल्पना है। वह काव्य-रचना का एक उपलक्ष्य मात्र है। इसी भराव के ऊपर कालिदास ने मेघदूत का भवन बनाया है। इस समय हम उस भराव को निकाल डालें तो कोई हानि नहीं है। सच्ची बात तो यह है "रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्" (मनोहर दृश्य तथा मधुर शब्दों को देख-सुनकर) अकारण ही मन विरह से विकल हो उठता है। इस बात को अन्यत्र कालिदास ने भी स्वीकार किया है। आषाढ़ के पहले दिन अकस्मात् घनघोर घटा देख कर हमारे मन में एक अलौकिक विरह जाग उठता है। मेघदूत उसी अकारण-विरह का अमूलक प्रलाप है। यदि यह न होता तो विरही यक्ष मेघ को दूत न बनाकर बिजली से दूत का काम लेता। तब मेघ इतना ठहर ठहर कर, घूम फिर कर, जूही के वनों को विकसित कर और नागरियों की ऊपर उठी दृष्टि के कटाक्षों का आनन्द लूट कर प्रस्थान न करता।

काव्य पढ़ने के समय भी यदि हिसाब का खाता आगे खोल कर रखना पड़ता हो, और वसूल क्या हुआ, इस बात का निश्चय उसी समय कर लिया जाता हो, तो यह मैं स्वीकार करूँगा कि

मेघदूत से एक तथ्य को पाकर हम आनन्दित हुए हैं। वह यह कि उस समय भी मनुष्य थे, और उस समय भी आषाढ़ का प्रथम दिन नियमित समय पर आता था।

परन्तु वररुचि ने जिनके लिए अनुचित विशेषण का प्रयोग किया है, क्या वे भी इस लाभ को लाभ समझेंगे? क्या इससे ज्ञानवृद्धि में सहायता मिल सकती है, या देश की उन्नति हो सकती है, अथवा चरित्र के सुधारने में ही कुछ सहायता मिल सकती है? अतएव हे चतुरानन, जो अकारण और अनावश्यक सरस काव्य है वह केवल रसिकों के लिए ही रक्खा रहे। उससे आवश्यक और हितकर वस्तु की प्रसिद्धि में कमी या उसके गाहकों का अभाव न होगा।



पन्दरह आना

धनियों का बाग़ उनके मकान से बड़ा और सुन्दर होता है। मकान आवश्यक है और बाग़ अधिक है। बाग़ के बिना भी काम चल सकता है। सम्पत्ति की उदारता अनावश्यक से ही अपने को प्रमाणित करती है। बकरे के जितने सींग हैं उतने ही से उसका काम चल जाता है। परन्तु हरिण के सींगों की पन्दरह आने भर अनावश्यकता देखकर हम लोग मुग्ध हो जाते हैं। मोर की पूँछ केवल रङ्ग-बिरङ्गी होने के कारण ही बढ़ी चढ़ी नहीं है। उसके विस्तार-गौरव को देख कर अनेक पक्षियों की पूँछ को लज्जा से व्याकुल होना पड़ता है।

जिस मनुष्य ने अपने जीवन को आदि से अन्त तक आवश्यक बना डाला है वह निःसंदेह आदर्श पुरुष है। किन्तु सौभाग्यवश उसके आदर्श का अनुसरण अधिक लोग नहीं करते। यदि वैसे मनुष्य बहुतों के आदर्श होते तो आज मनुष्य-समाज वैसे फल के समान बन जाता जिसमें सब बीज ही बीज हो—गूदे का नाम भी न हो। जो मनुष्य केवल उपकार करता है उसको अच्छा कहे बिना कोई नहीं रह सकता; किन्तु जो आदमी अनावश्यक है उसको लोग प्यार करते हैं।

क्योंकि अनावश्यक मनुष्य सब तरह से अपने को दे सकता है। संसार का उपकारी मनुष्य केवल उपकार के तंग पहलू से ही हमारे एक अंश को स्पर्श करता है; और सब ओर से उपकारिता की भारी दीवार उसे घेरे रहती है। उसका केवल एक ही द्वार खुला रहता है, उसी द्वार पर हम हाथ फैलाते हैं और वह दान करता है। और, हमारा अनावश्यक मनुष्य किसी काम का नहीं है, इसी कारण उसके चारों ओर कोई घेरा नहीं है। वह हमारा सहायक नहीं है, वह तो सिर्फ़ हमारा साथी है। उपकारी मनुष्य के पास से हम प्राप्त करते हैं, और अनावश्यक मनुष्य के साथ मिल कर ख़र्च करते हैं। जो हमारा ख़र्च करने का साथी है वही हमारा मित्र है।

विधाता के प्रसाद से हरिण के सींग और मोर की पूँछ के समान संसार के अधिकांश लोग अनावश्यक के अन्तर्गत हैं। हम लोगों में अधिकांश मनुष्यों का जीवन-चरित लिखने के योग्य नहीं है और यह भी सौभाग्य की बात है कि हम लोगों में से अधिकांश मनुष्यों की मृत्यु होने के पीछे उनके स्मारक में पत्थर की मूर्त्ति

गढ़ाने के लिए चन्दे का रजिस्टर लेकर किसी को घर घर रोते फिरना न पड़ेगा।

ऐसे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं जो मरने के बाद अमर होते हैं। इसी कारण यह पृथ्वी रहने के योग्य भी है। रेलगाड़ी के सभी डब्बे यदि रिज़र्व होते तो साधारण यात्रियों की क्या दशा होती? एक तो बड़े आदमी अकेले ही एक सौ के बराबर होते हैं—अर्थात् जितने दिनों तक जीते हैं उतने दिनों तक वे अपने भक्तों तथा निन्दा करनेवालों के हृदय में सैकड़ों मनुष्यों की जगह रोके रहते हैं—उसके बाद, फिर, मरने पर भी वे जगह नहीं छोड़ते। जगह छोड़ने की कौन कहे, मरने का सुयोग पाकर वे अपना अधिकार और भी अधिक बढ़ा लेते हैं। ऐसी स्थिति में हम लोगों की बचत यही है कि उनकी संख्या थोड़ी है। नहीं तो उनके समाधि-स्तम्भों के मारे ग़रीबों को झोपड़ी बनाने के लिए भी स्थान न मिलता। पृथिवी इतनी तंग है कि इसमें स्थान पाने के लिए जीवित मनुष्य आपस में लड़ा-भिड़ा करते हैं। भूमि में हो चाहे हृदय में, औरों की अपेक्षा अपना अधिकार फैलाने के लिए कितने ही मनुष्य जालसाज़ी करने और अपना लोक-परलोक बिगाड़ने के लिए तैयार रहते हैं। यह लड़ाई तो जीवित की है, अतएव बराबर की लड़ाई है। किन्तु मृत मनुष्य के साथ जीवित की लड़ाई बड़ी ही बेढब है। मृत मनुष्यों की समस्त दुर्बलताएँ दूर हो गई हैं। वे इस समय पूर्णता प्राप्त कर कल्प-लोक में विहार कर रहे हैं, और हम लोग माध्याकर्षण, केशों के आकर्षण आदि अनेक प्रकार के आकर्षण-विप्रकर्षणों से पीड़ित हो रहे हैं। हम कैसे उनसे पेश पा सकते हैं? इसी कारण विधाता

अधिकांश मृत मनुष्यों को विस्मृति के लोक में भेज देते हैं। वहाँ किसी के लिए भी स्थान की कमी नहीं है। यदि विधाता को बड़े बड़े मृत मनुष्यों के लिए हम लोगों के समान छोटे छोटे जीवित मनुष्यों को बहुत ही शोक-मलिन बना कर कोने में डाल रखना ही पसन्द होता तो वे पृथिवी को इतना सुन्दर और रमणीय क्यों बनाते? मनुष्य का हृदय मनुष्य के लिए इतना कमनीय क्यों होता?

नीतिज्ञ लोग हमारी निन्दा करते हैं। वे कहते हैं—हम लोगों का जीवन व्यर्थ गया। वे हम लोगों का तिरस्कार करते हुए कहते हैं—उठो, जागो, काम करो, व्यर्थ समय मत खोओ।

इसमें सन्देह नहीं कि बहुत ऐसे मनुष्य हैं जो काम न कर के समय को नष्ट करते हैं। किन्तु जो लोग काम कर के समय नष्ट करते हैं वे काम को भी नष्ट करते हैं और समय को भी। उन के पैरों के भार से पृथिवी काँपती है। उनकी सचेष्टता के हाथों से असहाय संसार की रक्षा करने के लिए भगवान् ने स्वयं कहा है—सम्भवामि युगे युगे।

जीवन व्यर्थ गया! वृथा जाने दो! कितने ही जीवन व्यर्थ जाने के लिए उत्पन्न हुए हैं। जीवन का यह अनावश्यक पन्दरह आना भाग विधाता के ऐश्वर्य को प्रमाणित कर रहा है। विधाता के जीवन-भाण्डार में दीनता नहीं है, इसके साक्षी के रूप में व्यर्थ जीवन धारण करनेवाले हम लोगों की एक बड़ी संख्या वर्तमान है। हम लोगों की कमी न होना, हमारी सदा अधिकता होते जाना आदि देखकर विधाता की महिमा स्मरण करो। जिस प्रकार

वंशी का पोलापन सुन्दर संगीत उत्पन्न करता है उसी प्रकार हम लोग संसार में पन्दरह आना की व्यर्थता के द्वारा विधाता के गौरव की घोषणा करते हैं। बुद्धदेव ने हमीं लोगों के लिए संसार का त्याग किया है। ईसा ने हमीं लोगों के लिए प्राण-त्याग किया है। ऋषियों ने हमीं लोगों के लिए तपस्या की है और साधुगण हमीं लोगों के लिए सजग रहते हैं।

जीवन व्यर्थ गया! जाने दो। क्योंकि उसको जाना ही चाहिए। उसका चला जाना ही एक प्रकार की सार्थकता है। नदी की धारा बह रही है, उसके समस्त जल को हम लोग स्नान-पान तथा अपने धान के खेत में ख़र्च नहीं कर डालते। नदी का बहुत जल केवल बहने के लिए ही रहता है। नदी के जल से और कोई काम न होकर केवल उसके प्रवाह की रक्षा होने की भी एक बड़ी भारी सार्थकता है। नदी के जल को, नहर काट कर, जो हम लोग तालाब में लाते हैं उस जल से केवल स्नान करने का ही काम होता है। उससे पीने का काम नहीं निकलता। नदी से घड़े में भर कर जो जल हम लोग अपने घर में रखते हैं वह पीने के काम आता है, परन्तु उस पर प्रकाश और छाया की क्रीड़ा का उत्सव नहीं होता। उपकार को ही संपूर्ण सफलता समझना कृपणता है। उद्देश्य को ही परिणाम समझनेवाले अपनी दीनता का परिचय देते हैं।

हम साधारण लोग पन्दरह आना हैं। हम लोगों को अपने को छोटा समझने का कोई कारण नहीं है। हमीं लोग इस संसार की गति हैं। पृथिवी पर मनुष्य के हृदय में हम लोगों के जीवन का अधिकार है। हम किसी पर दख़ल नहीं रखते, और न हम

लोग कुछ पकड़े ही रहते हैं। हम लोग आते हैं और चले जाते हैं। संसार के सब गान हमारे ही द्वारा ध्वनित होते हैं। संसार की सारी छाया हमारे ही ऊपर हिलती-डुलती है। हम लोग हँसते हैं, रोते हैं, प्रेम करते हैं, मित्रों के साथ अकारण खेलते हैं, स्वजनों के साथ अनावश्यक वार्तालाप करते हैं, दिन का अधिक भाग अपने आस पास के लोगों से निरर्थक बातें कर बिता देते हैं, तदनन्तर धूमधाम से लड़के का व्याह करते हैं और उसे आफ़िस में नौकर रखाकर, पृथ्वी पर कोई प्रसिद्धि न छोड़ कर, अन्त में मरकर राख हो जाते हैं। संसार की जो विचित्र और विशाल तरङ्गें उठती हैं उनका हम लोग एक अङ्ग हैं। हम लोगों के छोटे मोटे हँसी-खेल से ही सारा जन-प्रवाह झलमला रहा है—हमारे छोटे-मोटे रोने-गाने से ही समाज भर गूँज रहा है।

हम लोग जिसको व्यर्थ कहते हैं, प्रकृति का अधिक भाग वही है। सूर्य-किरणों का अधिक भाग शून्य में ही प्रकाश फैलाता है: वृक्षों में कलियाँ थोड़ी ही देर—फल न लगने तक ही—टिकती हैं। इसका विचार वे ही कर सकते हैं जिनका यह धन है। यह व्यय अपव्यय है कि नहीं, इसका निर्णय विश्वकर्मा की बही देखे बिना नहीं हो सकता। इसी प्रकार हम लोगों में भी अधिकांश मनुष्य परस्पर साथ देने और एक दूसरे को चलाने आदि कार्यों के अतिरिक्त और किसी काम के नहीं हैं। इस कारण अपने को या और किसी को दोष देना अथवा घबराना उचित नहीं है। प्रसन्नता-पूर्वक हँसते और गाते यदि हम लोग इस निभृत जीवन के अन्त होने के बीच ही शान्ति पा सकें तो यह निश्चित समझना

चाहिए कि इस उद्देश्य-हीनता में ही हम लोग यथार्थ रूप से जीवन का उद्देश्य सिद्ध कर सकते हैं।

यदि विधाता ने व्यर्थ ही हमारी सृष्टि की है तो हम धन्य हैं। किन्तु यदि उपदेशक के कहने से—उसके दबाव से—मैं समझूँ कि मुझको उपकार करना चाहिए, काम में लगना चाहिए, तो मैं जिस व्यर्थता की सृष्टि करूँगा वह मेरी अपनी उत्पन्न की हुई व्यर्थता होगी। उसकी जवाबदेही मेरे सिर पर होगी। परोपकार करने के लिए सबका जन्म नहीं हुआ है। अतएव उपकार न करना कोई लज्जा की बात नहीं है। मान लो, मिशनरी बनकर मैं चीन का उद्धार करने नहीं गया; देश ही में रह कर गीदड़ का शिकार तथा घुड़दौड़ का जुआ खेल कर समय बिताया, तो इससे क्या? यदि यों समय बिताने को आप व्यर्थ कहते हैं तो मैं कह सकता हूँ कि यों समय बिताना चीन-उद्धार की चेष्टा के बराबर भयानक और व्यर्थ नहीं है।

सभी घास धान नहीं है। पृथिवी में प्रायः सब घास ही है, धान बहुत ही कम हैं। इस पर घास को अपनी निष्फलता के लिए विलाप न करना चाहिए। उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह अपनी श्यामता के द्वारा पृथिवी की धूल को ढँके हुए है—वह अपनी चिर-प्रसन्न स्निग्धता के द्वारा सूर्य की प्रखर किरणों के ताप को कोमल बना रही है। मालूम होता है कि घास जाति के कुश-काश आदि ने धान बनने के लिए बड़ा ज़ोर लगाया था। मालूम होता है, सामान्य घास के रूप में न रह कर दूसरे की ओर लक्ष्य रख कर अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए वे भी उत्तेजित हो

उठे थे, परन्तु तो भी वे धान नहीं बन सके। सदा दूसरे के प्रति तीक्ष्ण दृष्टि रखने की एकाग्र चेष्टा कैसी होती है, इस बात को दूसरा ही ख़ूब समझता है। सारांश रूप से यह बात कही जा सकती है कि इस प्रकार की पर-परायणता विधाता की इच्छा के अनुकूल नहीं है। इसकी अपेक्षा साधारण तृण के समान सुन्दर नम्र कोमल तथा अप्रसिद्ध रहना ही अच्छा है; वह निष्फलता भी अच्छी है।

उपसंहार में यही कहा जा सकता है कि मनुष्य दो प्रकार के होते हैं, एक पन्दरह आना और दूसरे एक आना। पन्दरह आने मनुष्य शान्त हैं और एक आना अशान्त; पन्दरह आने अनावश्यक हैं और एक आना आवश्यक। हवा में चलनेवाले और जल उठनेवाले आक्सिजन का परिमाण थोड़ा रहता है और स्थिर तथा शान्त नाइट्रोजन का परिमाण अधिक। इसके विपरीत यदि होता तो आज पृथिवी कभी की जल कर राख होगई होती। इसी प्रकार संसार में भी पन्दरह आने भर वाला दल जब एक आने भर वाले दल के समान अशान्त और आवश्यक होने का प्रयत्न करने लगे तो निश्चित ही इस संसार का कल्याण नहीं समझना चाहिए। उस समय जिनके भाग्य में मरना होगा उनको मरने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

नववर्षा

युवावस्था में अपने विषय का कुछ भी यथार्थ ज्ञान नहीं था, और न संसार ही का ज्ञान था। मैं क्या होऊँगा, क्या नहीं

होऊँगा, क्या कर सकता हूँ और क्या नहीं कर सकता, इसका भी कोई पता नहीं था। कार्य, भाव और अनुभाव में मेरी प्रकृति की कहाँ तक गति है, यह भी निर्दिष्ट न था। संसार भी अनिर्दिष्ट रहस्य से परिपूर्ण था। किन्तु इस समय अपने सम्बन्ध में सब संभावनाओं की सीमा पर आपहुँचा हूँ। उसीके साथ पृथिवी भी संकुचित हो गई है। इस समय पृथिवी मेरे आफ़िस, बैठक, दर-दालान आदि के ही रूप में परिणत होगई है। इसी भाव से पृथिवी इतनी परिचित होगई है कि मैं बिलकुल ही भूल गया हूँ कि ऐसे ऐसे कितने ही आफ़िस, बैठक, दर-दालान आदि इस पृथिवी पर रह चुके हैं, जिनका आज कोई चिह्न भी नहीं देख पड़ता। कितने ही अधेड़ अपने मामले-मुक़दमे की सलाह के घर को ही पृथिवी का ध्रुव-केन्द्रस्थल समझ कर मसनद-तकिये के सहारे बैठे थे। आज उनके नाम भी उनके शरीर की राख के साथ हवा में उड़ गये हैं। आज यदि कोई उनका पता लगाना भी चाहे तो पता लगना कठिन है। तो भी पृथिवी उसी वेग से सूर्य की प्रदक्षिणा कर रही है।

परन्तु आषाढ़ का मेघ हर साल जब आता है, तभी वह नयेपन के रस से भरा और पुरानेपन से पुञ्जीभूत होकर आता है। उसको हम नहीं भूलते, क्योंकि वह हम लोगों के व्यवहार के बाहर रहता है। हम लोगों के संकोच के साथ वह नहीं संकुचित होता। जब हम किसी मित्र के द्वारा ठगे गये हैं, शत्रु के द्वारा दुःखित किये गये हैं और किसी दुर्भाग्य के द्वारा बाधा को प्राप्त हुए हैं, तब न केवल हृदय में ही दुःख की ज्वाला धधकी

है, और न केवल मस्तक में बल ही पड़ गये हैं किन्तु मेरे दुःख के आघात ने इस पृथिवी पर भी—जो हम लोगों के चारों ओर वर्तमान है—अपना चिह्न अंकित कर दिया है। पृथिवी का जल-स्थल आदि भी मेरी वेदना से क्षत-विक्षत और मेरी चिन्ता से चिह्नित होगया है। जिस समय मुझ पर अस्त्र-प्रहार हुआ है उस समय मेरे चारों ओर की पृथिवी मुझे छोड़कर दूर नहीं हट गई—बाण ने मुझको घायल कर उसको भी घायल किया है। इस प्रकार मेरे सुख-दुःखों में साथ देने के कारण पृथिवी मेरी ही हो गई है।

परन्तु मेघ में मेरा कोई चिह्न नहीं है। वह पथिक है, आता है और चला जाता है, ठहरता नहीं। मेरी वृद्धावस्था उसको छूने का अवकाश नहीं पाती। मेरी आशा और निराशा से वह बहुत दूर है।

इसी कारण कालिदास ने उज्जयिनी के महल की चोटी पर से जिस आषाढ़ के मेघ को देखा था उसीको हमने भी देखा है। इस बीच में बदल रहे मनुष्य के इतिहास ने उस मेघ को छुआ तक नहीं किन्तु आज वह अवन्ती और विदिशा नगरी कहाँ है। मेघदूत का मेघ हर साल चिर-नवीन तथा चिर-पुरातन बनकर देख पड़ता है। किन्तु विक्रमादित्य की उज्जयिनी पुरी, जो मेघों की अपेक्षा दृढ़ थी, आज स्वप्न की तरह नष्ट हो गई है। इच्छा करने पर भी आज उसका दर्शन होना कठिन है।

इसी कारण मेघ देखने से 'सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः' सुखी भी अन्यमनस्क हो जाते हैं। मेघ का मनुष्यलोक से कोई सम्बन्ध नहीं है, इस कारण वह मनुष्यों को उनकी चिरपरिचित सीमा से बाहर ले जाता है। मेघ के साथ हमारी नित्य की चिन्ता, चेष्टा

और काम-काज से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण वह आकर हम लोगों के मन को विश्राम देने के लिए छुट्टी देता है। मेघ के आते ही मन स्वाधीन हो जाता है, वह किसी बन्धन को मानना नहीं चाहता। स्वामी के शाप से निर्वासित यक्ष का विरह तब जाग उठता है। स्वामी-भृत्य का सम्बन्ध तथा संसार के सम्बन्ध आदि सभी सम्बन्धों को मेघ आकर भुला देता है। उस समय हृदय सब नियमों को तोड़ कर अपने लिए स्वतन्त्र मार्ग तैयार करने का प्रयत्न करता है।

मेघ अपने नित-नये चित्र, अन्धकार, गर्जन, वर्षण आदि के द्वारा परिचित पृथिवी के ऊपर अपरिचित का आभास डाल देता है; एक बहुत पुराने समय की और बहुत दूर के देश की निविड़ छाया फैला देता है। उस समय परिचित पृथिवी के हिसाब से जो असंभव था वही संभवपर हो जाता है। उस समय परदेशी की स्त्री यह मानना नहीं चाहती कि काम-काज में फँसे रहने के कारण उसका प्रियतम घर नहीं आ सकता। वह संसार के कठिन नियमों को जानती है, परन्तु वह जानना केवल जान लेना ही है। इस पर उसका विश्वास नहीं जमता कि उस नियम के अनुसार आज भी इस वर्षा के समय में काम होता है।

मैं यही बात सोच रहा था; भोग के द्वारा यह भारी पृथ्वी—सदा की पृथ्वी—मेरी दृष्टि में छोटी होगई है। जितना मैंने उसे पाया है उतना ही उसे जानता हूँ। अपने भोग के बाहर उसके अस्तित्व को ही मैं नहीं मानता। मेरा जीवन दृढ़ता के साथ बँध गया है, साथ ही उसने अपने व्यवहार के उपयोगी आवश्यक

पृथिवी को भी खींचकर पकड़ लिया है। हम अपने और पृथिवी के बीच में कोई भी रहस्य नहीं देखते, इसी कारण हमारी उत्कण्ठा भी नहीं है, हम शान्त होकर बैठे हैं। मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं अपने को अच्छी तरह जानता हूँ और अपनी पृथिवी को भी अच्छी तरह जानता हूँ। इसी समय पूर्व दिशा की ओर से घने अन्धकार को फैलाता हुआ वही पुराना, कई शताब्दी पहले का, कालिदास का मेघ आकर उपस्थित होता है! वह मेघ न मेरा है, और न मेरी पृथिवी का है। वह मुझे किसी अलकापुरी, किसी नित्य-यौवन के राज्य, चिर-विरह की वेदना, चिर-मिलन के आश्वास, नित्य-सौन्दर्यमयी कैलासपुरी के मार्ग-चिह्न-हीन तीर्थ, की ओर घसीट कर लेजाने का प्रयत्न करता है! पृथिवी का जो कुछ मुझे मालूम है वह उस समय तुच्छ जँचता है; जो जाना नहीं वही बड़ा हो उठता है। जो मिला नहीं वही, मिली हुई वस्तु की अपेक्षा, अधिक सत्य प्रतीत होने लगता है। मुझे मालूम होता है कि मैंने अपने जीवन और अपनी शक्ति पर बहुत ही कम अधिकार कर पाया है। जो बृहत् है उसे मैं छू भी नहीं सका।

मेरे नित्य के कर्म-क्षेत्र को, नित्य-परिचित संसार को ढँक कर सजल मेघों से परिपूर्ण नवीन वर्षा मुझे एकदम किसी अज्ञात भाव-लोक के भीतर, सब विधि-विधानों के बाहर, अकेले ले जाकर खड़ा कर देती है। वह पृथिवी की इस परिमित आयु से निकाल कर भारी परमायु के बीच मुझे स्थापित कर देती है। मुझे रामगिरि-आश्रम के निर्जन पर्वत-शिखर पर शिलातल के ऊपर बिना सङ्गी-साथी के अकेला ही छोड़ देती है। याद पड़ता है कि उस

निर्जन शिखर और मेरे किसी पुराने निवास-स्थान—अन्तरात्मा के चिर-प्रार्थनीय स्थान—अलकापुरी के बीच में एक बहुत बड़ा और सुन्दर मैदान पड़ा हुआ है। वह आज तक भी स्मरण आता है। उस मैदान में नदियों का प्रवाह प्रतिध्वनित हो रहा है, बड़े बड़े पर्वत शिखर-रूपी सिर उठाये खड़े हैं, जम्बू की छाया का अन्धकार छाया हुआ है, और नव-जल-सिञ्चित जूही की महक चारों ओर फैल रही है। हम लोगों का हृदय इस पृथिवी के वन-वन, गाँव-गाँव, पर्वत-पर्वत तथा नदी के तीर-तीर घूमता फिरता, उस अपरिचित परन्तु सुन्दर स्थान का परिचय प्राप्त करता है, और अपने दीर्घ विरह के अन्त में—मानस-सरोवर के लिए उत्कण्ठित हंस के समान-मोक्ष-स्थान पर पहुँचने के लिए उत्कण्ठित रहता है।

मेघदूत को छोड़ नव-वर्षा-विषयक काव्य और कहीं किसी भी साहित्य में नहीं है। मेघदूत में वर्षा-काल की समस्त भीतरी वेदनाओं का वर्णन नित्य-समय की भाषा में किया गया है। उसमें प्रकृति के प्रति वर्ष होनेवाले मेघ-महोत्सव की अनिर्वचनीय कवित्व-गाथा मनुष्य-भाषा में गाई गई है।

पूर्व-मेघ में एक बहुत बड़ी पृथिवी हमारी कल्पना के आगे प्रकट हो जाती है। जिस समय हम लोग धनी गृहस्थ बन कर अपने घर में सन्तोष से सुख-पूर्वक आँखें बन्द किये बैठे थे उसी समय कालिदास के मेघ ने—"आषाढस्य प्रथमदिवसे"—आषाढ़ के पहले दिन अकस्मात् आकर हमें घर से बाहर निकाल कर खड़ा कर दिया। हम लोगों के घर से बहुत दूर पर जो आवर्त-चञ्चला नर्मदा वेग से बहती जा रही है, जो चित्रकूट की तरहटी

के कुञ्ज फूले हुए कदम्ब-वृक्षों से सुशोभित हो रहे हैं, उदयन की कथा जाननेवाले ग्राम-वृद्धों के घर के पास जो वटवृक्ष तोतों के शब्द से गूँज रहे हैं, वे ही हम लोगों के परिचित क्षुद्र संसार को परास्त कर विचित्र सौन्दर्य के नित्य सत्य से उद्भासित हो दिखाई देने लगे।

विरही व्याकुल है, तथापि कवि ने मार्ग छोटा नहीं बनाया। उन्होंने आषाढ़ की नीली मेघछाया से आवृत पहाड़-नदी-नगर-जनपद आदि से होते हुए तथा वहाँ वहाँ ठहरते हुए भाव के आवेश के कारण अलसगति से यात्रा की है। जिसने उनकी मुग्ध दृष्टि को अभ्यर्थना करके पुकारा है, उससे वे 'नहीं' नहीं कह सके। कवि ने पाठकों के चित्त को पहले तो प्रबल विरह के वेग से बाहर निकाला है, और फिर मार्ग के सौन्दर्य को दिखाकर उसकी चाल धीमी कर दी है। जिस चरम स्थान की ओर मन दौड़ा जा रहा है उस स्थान का मार्ग लम्बा चौड़ा होने पर भी मनोहर है। उस मार्ग की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

वर्षा में चिरपरिचित संसार को छोड़कर मन बाहर की ओर जाने के लिए व्याकुल होता है। पूर्व-मेघ में कवि ने हमारी उसी आकाङ्क्षा की उमङ्ग बढ़ा कर उसी का मधुर संगीत छेड़ा है। कवि मेघ को हमारा साथी बनाकर अपरिचित पृथ्वी के बीच से हमको ले चले हैं। वह पृथ्वी 'अनाघ्रातं पुष्पं' (बिना सूँघा हुआ फूल) है। वह भूमि हमारे दैनिक भोग के द्वारा मलिन नहीं हुई है। वहाँ की भूमि में हम लोगों के परिचय की चहारदीवारी से कल्पना को कोई बाधा नहीं प्राप्त होती। जैसा यह मेघ है वैसी ही वह पृथिवी है।

हमारे इस सुख-दुःख-थकन और शिथिलता से पूर्ण जीवन ने उसे कहीं पर छुआ तक नहीं। प्रौढ़ अवस्था के निश्चय के भाव ने अपने घेरे से घेर कर उसे अपने घर के बाग़ के अन्तर्गत नहीं कर लिया।

अज्ञात संपूर्ण के साथ नवीन परिचय ही पूर्व-मेघ है। नये मेघ का एक और भी काम है। वह हमारे चारों ओर एक बहुत ही एकान्त घेरा बना कर "जननान्तरसौहृदानि" स्मरण करा देता है। वह अद्भुत सौन्दर्य-लोक में किसी चिर-परिचित और चिर-प्रिय के लिए मन को उत्कण्ठित कर देता है।

पूर्व-मेघ में अनेक विचित्र पदार्थों के साथ सौन्दर्य का परिचय कराया गया है और उत्तर-मेघ में उस एक के साथ आनन्द-सम्मिलन। पृथिवी में बहुत के बीच होकर वही सुख-यात्रा है और स्वर्ग में एक के बीच होकर वही अभिसार का परिणाम है।

नववर्षा के दिनों में इस काम-काज के क्षुद्र संसार को कौन न निर्वासन कहेगा! हम प्रभु के शाप ही से यहाँ अटके पड़े हैं। मेघ आकर बाहर यात्रा करने के लिए बुलाता है, यही पूर्व-मेघ का विषय है। और, यात्रा के अन्त में चिर-मिलन के लिए आश्वास देना ही उत्तर-मेघ का संवाद है।

सब कवियों के काव्यों के गूढ़ अभ्यन्तर में यह पूर्व-मेघ और उत्तर-मेघ है। सभी बड़े बड़े काव्य हम लोगों को बृहत् की ओर खींचकर लाते और एकान्त की ओर जाने का सङ्केत करते हैं। पहले वे बन्धन तोड़ कर निकालते हैँ और पीछे एक महान् के साथ बाँध देते हैं; प्रातःकाल मार्ग के निकट लाते हैं और सन्ध्या को घर पहुँचा देते हैं। तान के साथ साथ एक बार आकाश-

पाताल में घुमा फिरा कर सम (ताल) के बीच पूर्ण आनन्द में लाकर खड़ा कर देते हैं।

जिस कवि के पास तान तो है, किन्तु कहीं 'सम' नहीं है, जिसके पास केवल उद्यम है, आश्वास नहीं है, उसका कवित्व उच्च काव्यों की श्रेणी में स्थायी नहीं हो सकता। अन्त को कहीं न कहीं पहुँचा देगा, इसी भरोसे पर हम अपने चिर-परिचित संसार से बाहर निकल कर कवि के साथ यात्रा करते हैं। पुष्प-सुगन्धित मार्ग से ले जाकर अन्त को किसी शून्य गढ़े के किनारे छोड़ देना पाठकों के साथ विश्वासघात करना है। इसी कारण किसी कवि का काव्य पढ़ने के समय हम लोगों के हृदय में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं; (१) काव्य का पूर्व-मेघ हमको निकाल कर कहाँ लिये जाता है और (२) उत्तर-मेघ किस फाटक के सामने ले जाकर उपस्थित करता है।

पर-निन्दा

पर-निन्दा इतनी पुरानी और व्यापक है कि इसके विरुद्ध सहसा ऐसा-वैसा कोई मत प्रकाशित कर देना ढिठाई में दाखिल हो जाता है। खारी पानी पीने के योग्य नहीं होता, इस बात को एक छोटा सा बच्चा भी जानता है। परन्तु जब देखते हैं कि सातों समुद्रों का जल खारी ही है, जब देखते हैं कि इसी खारी जल से यह सारी पृथ्वी घिरी हुई है, तब यह कहने का किसी तरह साहस नहीं होता कि यदि समुद्रों का जल खारी न होता तो कैसा अच्छा

था। खारी पानी का न होना अवश्य ही अच्छा न होता—शायद खारी पानी के न होने से यह पृथिवी सड़ उठती।

इसी प्रकार पर-निन्दा भी यदि समाज की नस नस में घुसी हुई न होती तो कोई बहुत बड़ा अनर्थ होजाता। खारी पानी के समान पर-निन्दा भी सारे संसार को विकार से बचाये हुए है।

पाठक कहेंगे—हमने समझ लिया, तुम वही पुरानी बात कह हो: अर्थात् निन्दा के भय से समाज के लोग ठीक राह पर चल रहे हैं।

यह बात यदि पुरानी है तो बड़े आनन्द की बात है। क्योंकि मैं तो कह चुका हूँ कि पुरानी बातें विश्वास के योग्य होती हैं।

सच्ची बात यह है कि यदि निन्दा न होती तो इस संसार में मनुष्य-जीवन का कुछ गौरव न रहता। मान लो, मैंने किसी अच्छे काम को शुरू किया, पर उसकी निन्दा कोई भी नहीं करता, फिर उस अच्छे काम का मूल्य क्या है! मैंने कोई अच्छा लेख या ग्रन्थ लिखा, पर उसकी निन्दा करनेवाला कोई नहीं है, तो उस ग्रन्थ के लिए इससे बढ़कर अनादर क्या हो सकता है! मैंने अपना जीवन धर्म-चर्चा के काम में अर्पण कर दिया पर जो किसी ने उसके भीतर कोई छिपा हुआ बुरा अभिप्राय न देखा तो फिर साधुता बहुत ही सहज न हो गई!

महत्त्व को पग-पग पर निन्दा के काँटों के ऊपर चलना पड़ता है। इसमें जो हार मान लेता है वह वीरों की सद्गति को नहीं पाता। निन्दा के द्वारा मनुष्यों के केवल दोष ही दूर नहीं होते;

दोषों को दूर करना ही कुछ निन्दा का कार्य नहीं है किन्तु महत्व को गौरवान्वित करना निन्दा का एक बड़ा भारी काम है।

निन्दा—विरोध बुरा नहीं लगता, ऐसी बात बहुत कम लोग ही कह सकते हैं;—और कोई महृदय मनुष्य तो कही नहीं सकता। जिनका हृदय विशाल है उनकी व्यथा पाने की शक्ति भी अधिक होती है। जिसके पास हृदय है, संसार में वही किसी अच्छे काम में हाथ डाल सकता है। उधर किसी अच्छे काम का आरम्भ देखते ही निन्दा की धार चौगुनी पैनी हो उठती है। इस प्रकार यह देख पड़ता है कि विधाता ने जिसको अधिक अधिकार दिया है उसी को कठिन दुख सहना पड़ता है और उसी की कठिन परीक्षा भी होती है। विधाता के इसी विधान की सदा जय हो। निन्दा, दुःख, विरोध आदि ख़ास कर अच्छे मनुष्यों—गुणी मनुष्यों—को ही नसीब हुआ करें। व्यथा उसी को मिले जिसमें व्यथा सहने की पूरी शक्ति है। क्षुद्र अयोग्य को निन्दा की व्यथा मिलना एक प्रकार से निन्दा की वेदना का अनावश्यक अपव्यय है।

सरल-हृदय पाठक फिर कहेंगे—"मालूम है, निन्दा से उपकार होता है। जो दोषी हैं उनके दोष की घोषणा होना अच्छा है। परन्तु जो दोषी नहीं, उसकी निन्दा होनी उचित नहीं। उसकी निन्दा से संसार में भलाई नहीं हो सकती। मिथ्या से कभी भलाई की सम्भावना नहीं की जा सकती।"

परन्तु दोषी के दोष की घोषणा को तो निन्दा नहीं कह सकते। प्रमाणों के आधार पर दोषी को दोषी साबित करना तो निन्दा नहीं है, वह तो निर्णय कहाता है। यह कठिन काम कौन अपने

हाथ में ले सकता है और इतना समय ही किसके पास है? दूसरी बात यह है कि दूसरों के लिए इतनी ग़रज़ किसे पड़ी है। यदि ग़रज़ होती भी तो वह दूसरों के लिए असह्य होती। निन्दक की की हुई निन्दा सही जा सकती है, क्योंकि उसकी निन्दकता की निन्दा करने का सुख हमारे हाथ में भी है। परन्तु विचारक के विचार को कौन सह सकता है?

सच बात तो यह है कि हम बहुत ही साधारण प्रमाण पाकर निन्दा करने लग जाते हैं। यदि निन्दा में यह लघुता न होती तो समाज की हड्डियाँ चूर हो जातीं। कुशल इतनी ही है कि निन्दक की सम्मति सबसे बढ़ कर सम्मति नहीं हो सकती। निन्दित मनुष्य चाहे तो अपनी निन्दा का प्रतिवाद नहीं भी कर सकता है। यहाँ तक कि निन्दा के वचनों को हँस कर उड़ा देना ही बुद्धिमानी मानी जाती है। परन्तु निन्दा यदि विचारक की सम्मति होती तो सुबुद्धि को भी उसे दूर करने के लिए वकील-मुख़्तारों की शरण लेनी पड़ती। जो लोग जानते हैं वे स्वीकार करेंगे कि वकील-मुख़्तारों की शरण जाना हँसी-ठट्टा नहीं है। अतएव देख पड़ता है कि प्रयोजन के अनुसार निन्दा में जितनी गुरुता होनी चाहिए वह भी है और जितनी लघुता रहनी चाहिए उतनी लघुता भी है।

हमारी पहली बात जिन पाठकों को अच्छी नहीं मालूम हुई थी वे इस समय अवश्य ही कहेंगे कि तुच्छ अनुमान के ऊपर हो अथवा निश्चित प्रमाण के ऊपर ही हो, यदि निन्दा ही करनी है तो वह व्यथा के साथ की जानी चाहिए; निन्दा करके उससे सुखी होने की इच्छा करना उचित नहीं।

ऐसी बात कहनेवाले अवश्य ही सहृदय मनुष्य हैं । अतएव उनको स्वयं विचार करके देखना चाहिए कि निन्दा से निन्दित व्यक्ति को तो व्यथा होती ही है, उस पर यदि निन्दा करनेवाले को भी उससे व्यथा हो तो इस संसार में दुःख-वेदना की मात्रा कितनी अपरिमित हो उठेगी ! उस समय जिधर देखेंगे उधर ही दुःख ही दुःख दृष्टिगोचर होगा । पण्डितों की सभा, निमन्त्रण-सभा चुप हो जायगी, मित्रों की मण्डली दुःख-विषाद से व्याकुल हो जायगी, समालोचक की आँखों में आँसु भर रहेंगे, और पाठकों के हृदय से बार बार गर्म घनी लंबी साँसें निकलने लगेंगी । मुझे तो विश्वास है कि शनि-लोक के निवासियों की भी ऐसी दशा न होगी !

इसके सिवा, सुख भी न पावेंगे और निन्दा भी करेंगे,—मनुष्य जाति में ऐसी भयानक निन्दकता नहीं है । विधाता ने मनुष्य जाति को ऐसा शौक़ीन बनाया है कि जिस भोजन से उसका पेट भरता और प्राण-रक्षा होती है, उसमें क्षुधा-निवृत्ति के साथ साथ रुचि की तृप्ति का सुख भी उसे चाहिए। वही मनुष्य ट्रामगाड़ी का किराया खर्च कर के अपने मित्रों के घर जाकर पर-निन्दा कर आवेगा और उसमें उसको सुख भी नहीं मिलेगा ? जो धर्मनीति मनुष्य से इस प्रकार की असंभव प्रत्याशा करती है, वह पूजनीय तो है, परन्तु पालनीय नहीं ।

सभी आविष्कारों में सुख है । यदि मृग सब जगह पाये जाते तथा वे व्याध को देख कर भाग न जाते तो शिकार से लोगों को कुछ भी सुख न मिलता । यह बात नहीं है कि मृगों से हम लोगों

का किसी प्रकार का द्वेष हो, और इस कारण हम उन्हें मारते हों। बात यह है कि वह दुर्गम वन में रहता है और भागने में होशियार है, इसी कारण मारा जाता है।

मनुष्य का चरित्र, विशेष कर उसके दोष, आडम्बर की झाड़ी में छिपे रहते हैं; और, आहट पाते ही दौड़ मार कर आँखों की ओट हो जाना चाहते हैं। इसी कारण निन्दा में इतना सुख है। मैं नाड़ी और नक्षत्र का सब हाल जानता हूँ। 'मुझसे कोई बात छिपी नहीं है', निन्दक के मुँह से यह बात सुनते ही मालूम पड़ जाता है कि यह शिकारी जाति का है। तुम अपनी जो बातें छिपाना चाहते हो, मैंने उन्हीं बातों का पीछा करके पकड़ लिया है। जल में छिपी हुई मछलियों को हम बाँस की छीप डाल कर पकड़ते हैं; आकाश में उड़नेवाले पक्षियों को बाण मार कर गिराते हैं; वन के पशुओं को जाल में फाँसते हैं—इन कामों में कितना सुख है! जो छिपता है उसे प्रकाशित करने के लिए, जो भागता है उसे पकड़ने के लिए, मनुष्य क्या क्या नहीं करता!

दुर्लभ वस्तुओं के प्रति मनुष्यों को एक प्रकार का मोह हुआ करता है। मनुष्य समझता है कि थोड़े परिश्रम से मिलनेवाली वस्तु विशुद्ध नहीं है। जो देख पड़ता है वह ऊपर का आवरणमात्र है, और जो छिपा हुआ है वही सार पदार्थ है। अतएव जब किसी गुप्त वस्तु या बात का उसे परिचय मिलता है तब वह बिना सोचे विचारे आनन्दित हो जाता है और समझता है कि मैंने असली वस्तु का पता पा लिया। यह बात उसके मन में कभी नहीं आती कि ऊपर के सत्य की अपेक्षा भीतर के सत्य में सत्यता की अधिक

मात्रा नहीं है। यह बात उसे समझाना कठिन है कि सत्य अगर बाहर है, तो भी वह सत्य है और भीतर जो छिपा हुआ है वह यदि सत्य नहीं है तो कभी सत्य नहीं हो सकता। पदार्थों का छिपा रहना ही उनके सत्य होने की परिभाषा नहीं है। इसी मोह के कारण काव्यों के सहज और सरल सौन्दर्य की अपेक्षा उनके गूढ़ तत्त्व को अधिक सत्य समझ कर पाठकगण उसका अधिक आदर करते हैं। ऐसे ही जो विज्ञ मनुष्य कहाते हैं वे छिपे हुए पाप को प्रकाशित साधुता की अपेक्षा अधिक सत्य समझकर उस पर विशेष ध्यान देते हैं। अतएव साधारणतः मनुष्यों का यह विश्वास है कि किसी मनुष्य की निन्दा ही उसका यथार्थ परिचय है। संसार में ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं जिनके साथ हम लोग घर का ऐसा व्यवहार करते हैं; तब सैकड़ों मनुष्यों का यथार्थ परिचय लेने से हमें क्या लाभ है? किन्तु यथार्थ परिचय के लिए व्यग्र होना मनुष्य का स्वभाव-सिद्ध धर्म है। वह मनुष्यत्व का प्रधान अङ्ग है। अतएव उससे झगड़ा नहीं किया जा सकता। केवल जब कभी दुःख करने के लिए लंबी छुट्टी मिलती है तब यह सोचते हैं कि जो सुन्दर है, जो सम्पूर्ण है, जो फूल के समान बाहर विकसित होकर देख पड़ता है, वह वह छिपा नहीं है, इसी कारण बुद्धिमान् मनुष्य धोखा खाने के डर से उस पर विश्वास नहीं करते और न उस पदार्थ से आनन्द उठाने का ही साहस करते हैं। क्या ठगा जाना ही संसार में सबसे बड़ी हानि है! और ठगा न जाना ही सब से बढ़कर लाभ है!

किन्तु इन बातों पर विचार करने का भार मेरे ऊपर नहीं है

क्योंकि मेरे जन्म के बहुत पहले ही मनुष्य का चरित्र बन कर तैयार हो चुका है। मैं केवल यही समझने और समझाने का प्रयत्न कर रहा था कि मनुष्य साधारणत: निन्दा करके जो सुख पाता है वह विद्वेष का सुख नहीं है, क्योंकि साधारणत: विद्वेष सुख-कर हो ही नहीं सकता। विद्वेष जब समाज की नस-नस में व्याप्त हो जाता है तब उस विष का पचा जाना समाज के लिए असाध्य हो जाता है। हमने बहुत से अच्छे और सीधे सादे लोगों को भी निन्दा करते देखा है। इसका कारण यह नहीं है कि संसार में अच्छे और निरीह मनुष्य ही नहीं हैं। किन्तु इसका कारण यह है कि साधारणत: निन्दा का मूल भाव बुरा नहीं है।

किन्तु संसार में विद्वेष से निन्दा की ही नहीं जाती,—इस बात को लिखना चाहें तो सत्ययुग की अपेक्षा करनी पड़ेगी। हाँ, इस प्रकार की निन्दा के विषय में कुछ अधिक कहना नहीं है। केवल प्रार्थना यही है कि जो इस प्रकार की निन्दा करना अच्छा समझते हैं उन अभागों पर हम दया दिखला सकें!

वसन्त

इस मैदान के उस पार शाल-वन की नई कोपलों के बीच वसन्त की हवा डोलने लगी है।

अभिव्यक्ति के इतिहास में मनुष्य का एक अंश वृक्षों के साथ जकड़ा हुआ है। किसी समय हम लोग शाखामृग (बन्दर) थे, जिसका यथेष्ट परिचय आज भी हम लोगों के स्वभाव से मिलता

है। परन्तु इससे भी बहुत पहले किसी आदि-युग में हम लाग निःसन्देह वृक्ष थे, यह क्या हम भूल सके हैं ? उस आदि-काल के जनहीन मध्याह्न में हम लोगों की शाखाओं के बीच से जब वसन्त का वायु किसी को किसी प्रकार की सूचना दिये बिना अकस्मात् सर सर करता हुआ आता था तब क्या हम प्रबन्ध लिखने बैठते थे या देश के उद्धार के लिए प्रयत्न करते थे ? उस समय हम लोग दिन भर खड़े रह कर गूँगे और मूर्ख के समान काँपते रहते थे; हम लोगों का सारा शरीर झरझर-मरमर करता था, जो पागलों के गाने के समान मालूम पड़ता था। जड़ से लेकर छोटी छोटी टहनियां और पत्तों तक में उस समय रस-प्रवाह के कारण चञ्चलता उपस्थित हो जाती थी। उस आदि-काल के फागुन और चैत इसी प्रकार अधिक रस-प्रवाह के कारण आलस्य और अर्थ-हीन प्रलाप में ही बीत जाते थे। उस समय हमको किसी के आगे कोई भी कैफ़ियत नहीं देनी थी।

यदि कहो कि पीछे दुःख के दिन आते थे—वैशाख-जेठ की कड़ी धूप सिर झुकाकर चुपचाप सहनी पड़ती थी, तो यह बात हम मानते हैं। जिस दिन का जो सुख-दुःख है वह उस दिन इसी तरह ग्रहण करना पड़ता है। सुख के दिनों में भोग को और दुख के दिनों में धैर्य को यदि कोई सहज ही ग्रहण कर सके तो जब सान्त्वना की वारि-धारा दशों दिशाओं को प्लावित करना आरम्भ करती है तब उसे सर्वत्र भरपूर भर रखने की शक्ति रहती है।

किन्तु इन सब बातों को मैं यहाँ कहना नहीं चाहता था। लोग सन्देह कर सकते हैं कि मैं रूपक के द्वारा उपदेश देने बैठा

हूँ। यह सन्देह एकदम बेजड़ नहीं है। परन्तु किया क्या जाय, अभ्यास ही ख़राब हो गया है।

मैं यह कह रहा था कि अभिव्यक्ति की अन्तिम सीमा पर पहुँचने के कारण मनुष्य के बहुत से भाग हो गये हैं। जैसे, जड़-भाग, उद्भिद्भाग, पशुभाग, बर्बरभाग, सभ्यभाग और देवभाग इत्यादि। ये भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होते हैं। किस ऋतु में कौन भाग उत्पन्न होता है, इस बात का निर्णय करने का भार हम लेना नहीं चाहते। एक किसी सिद्धान्त को अन्त तक निबाहने की प्रतिज्ञा करने से बहुत झूठ बोलना पड़ता है। झूठ बोलने को भी राज़ी हूँ, पर आज उतना परिश्रम न कर सकूँगा।

आज पड़े पड़े, सामने देख देखकर, जो बातें सहज ही मन में आ रही हैं उन्हीं को मैं लिखने बैठा हूँ।

लंबे जाड़े के बाद आज दोपहर को नवीन वसन्त की हवा डोलते ही मुझे मानव-जीवन में भी एक भारी असामञ्जस्य देख पड़ रहा है। विपुल के साथ—समग्र के साथ—उसका सुर नहीं मिलता। शीत-काल में जो जो काम हमको करने पड़ते थे आज भी वही सब काम करने पड़ते हैं। ऋतु विचित्र है पर कामों में भेद नहीं है। ऋतु के परिवर्तनों पर मन को विजयी बनाकर निश्चेष्ट कर देने में जैसे कोई बहादुरी है! मन बड़ा बहादुर है, वह क्या नहीं कर सकता! वह दक्षिण-पवन की कुछ भी परवा न कर बड़े वेग से बड़े बाज़ार की ओर दौड़ा जा सकता है। माना कि कर सकता है, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि उसको वह काम करना ही चाहिए!

तब तो दक्षिण-पवन अपने डेरे में जाकर जान न दे देगा; किन्तु हानि किसकी होगी ?

अभी यही थोड़े दिनों की बात है कि हम लोगों के आँवला, माखू आदि वृक्ष अपने पत्ते गिरा रहे थे; किन्तु दूर से आये पथिक के समान फागुन का महीना ज्योंही द्वार पर आकर उपस्थित हुआ त्योंही वृक्षश्रेणी ने पत्ते गिराने का काम बन्द करके रात ही भर में कोंपल निकालने का काम शुरू कर दिया।

हम मनुष्य हैं। हम से वह होने का कोई उपाय नहीं है। बाहर चारों ओर जब हवा बदलती है, रङ्ग बदलता है, पत्ते बदलते हैं, तब भी हम बैलगाड़ी के बैल की तरह पीछे के पुराने बोझ को घसीटते धीरे धीरे राह में धूल उड़ाते चले जा रहे हैं। गाड़ीवान उस समय जो डंडा पसलियों में हूलता था वही डंडा आज भी हूल रहा है।

पास पञ्चांग नहीं है। अनुमान से जान पड़ता है कि आज फागुन की अमावस या पड़िवा है। आज वसन्त-लक्ष्मी षोडशी किशोरी है। परन्तु तो भी प्रति सप्ताह समाचार-पत्र निकलते हैं, और उनमें हम पढ़ते हैं कि हमारे शासक हम लोगों के कल्याण के लिए क़ानून बनाने में उसी तरह लगे हुए हैं, और दूसरा पक्ष मन लगा कर उसीके विचार में प्रवृत्त है। किन्तु संसार में यही सबसे आवश्यक बातें नहीं हैं। बड़े लाट, मँझले लाट, छोटे लाट, सम्पादक, सहकारी सम्पादक आदि की तत्परता को कुछ भी न समझकर दक्षिण समुद्र की तरंगोत्सव-सभा की ओर से प्रतिवर्ष वह पुराना संवाद देनेवाला, नवजीवन का आनन्द-समाचार लेकर, उसका

प्रचार करने के लिए इस पृथिवी पर आता है। उस संवाद को पाकर मनुष्य का आत्मा नये आश्वास से आश्वासित होता है। यह मनुष्यों के लिए साधारण बात नहीं है। पर इन बातों को सोचने के लिए हमको छुट्टी नहीं।

पुराने समय में मेघ-गर्जन से पढ़ने का अनध्याय होता था, वर्षा के समय परदेशी अपने अपने घर लौट आते थे। मैं यह नहीं कह सकता कि वर्षा के दिनों में पढ़ा नहीं जा सकता अथवा विदेश में रहकर काम करना असम्भव है। मनुष्य स्वाधीन है, स्वतन्त्र है, वह जड़-प्रकृति का अनुयायी नहीं है; परन्तु इससे क्या विशाल प्रकृति के साथ उसको बराबर विद्रोह करके ही चलना चाहिए। क्या यह कोई नियम है? यदि मनुष्य संसार के साथ अपनी कुटुम्बिता स्वीकार करे, आकाश में काले काले मेघों का आगमन होते ही पढ़ना और काम करना बन्द कर दे, दक्षिण पवन के प्रति श्रद्धा रखकर उस समय क़ानून की समालोचना करना छोड़ दे, तो मनुष्य का संसार के साथ कुछ असामञ्जस्य न हो। पञ्चांग में भिन्न भिन्न तिथियों को बैंगन, सेम, कुँभड़ा आदि खाना निषिद्ध है। मेरी समझ में और भी कई कामों का निषेध होना चाहिए। किस ऋतु में संवादपत्र का पढ़ना निषिद्ध है, किस ऋतु में आफ़िस का काम बन्द न करना महापाप है, इन बातों के निर्णय का भार अरसिकों की बुद्धि पर न छोड़ कर शास्त्रकारों को ही इस बारे में नियम बाँध देने चाहिएँ।

वसन्त के दिनों में विरहिनियों के प्राण व्याकुल हो जाते हैं, यह बात हमने प्राचीन काव्यों में ही पढ़ी है। आज यह बात

लिखते सङ्कोच मालूम होता है कि इसे सुनकर लोग उपहास करेंगे। इस प्रकार हम लोगों ने प्रकृति के साथ अपने मन का संबंध तोड़ दिया है। वसन्त में वन-उपवन आदि के बीच फूलों के फूलने का समय उपस्थित होता है। उस समय उनके हृदय के स्वाभाविक विकास का महोत्सव उपस्थित होता है। उस समय आत्म-दान करने के आनन्द में वृक्ष-लता आदि पागल हो उठते हैं। उस समय विधि-विधान की ओर उनका ध्यान नहीं रहता। जहाँ दो फल लगने को होते हैं वहाँ पचीस कलियाँ निकल आती हैं। तो क्या मनुष्य ही इस प्रवाह को रोक देगा? मनुष्य अपने को न फूलने देगा और न फलने देगा, और आत्मदान करना भी न चाहेगा! तो क्या वह घर झाड़ेगा, बर्तन मलेगा? और जिनके पास यह बला नहीं है वे क्या बैठे बैठे चार बजे तक ऊन का गुलूबन्द बीनेंगे? मनुष्य क्या इतना कोरा मनुष्य है? वसन्त के गूढ़ रस-सञ्चार के द्वारा विकसित तरु-लता-पुष्प-पल्लव आदि से क्या हम लोगों का कोई सम्बन्ध नहीं है? जो हम लोगों के घर के आँगन को छाया से छिपाये, गन्ध से परिपूर्ण किये और शाखा रूपी हाथों से घेरे खड़े हैं वे क्या हमारे इतने ग़ैर हैं कि जिस समय वे फूल उठेंगे उस समय हम अचकन पहन कर आफ़िस जाने के लिए तैयार होंगे—उस समय किसी एक अनिर्वचनीय वेदना से हम लोगों का हृदय वृक्ष-पल्लव की तरह काँप न उठेगा?

मैं तो आज वृक्षों के साथ अपनी बहुत प्राचीन काल की आत्मीयता स्वीकार करूँगा। इस बात को आज मैं किसी तरह न मानूँगा कि व्यग्रता के साथ काम करते फिरना ही हमारे जीवन

की सार्थकता है । आज हम लोगों की युग-युगान्तर की बड़ी बहन वनलक्ष्मी के यहाँ भाई-दूज का निमन्त्रण है । आज वहाँ तरु-लताओं के साथ बहुत ही सगे की तरह मिलना होगा । आज का दिन वृक्षों की छाया में रहकर बिताना होगा । जिस समय वसन्त की हवा चलेगी उस समय उसके आनन्द को मैं अपने हृदय की प्रत्येक तह में अनायास प्रवेश करने दूँगा और इसका ध्यान रक्खूँगा कि वह आनन्द वहाँ ऐसी कोई ध्वनि न उत्पन्न करे जिसकी भाषा को वृक्ष आदि न समझ सकें । इस प्रकार चैत्र के अन्त तक मिट्टी, हवा और आकाश के बीच अपने जीवन को इस प्रकार कच्चा—हरा—बना कर छोड़ दूँगा कि वह प्रकाश और छाया में चुपचाप पड़ा रह सके; प्राकृतिक आनन्द का उपभोग कर सके ।

किन्तु हाय, कोई भी काम बन्द नहीं रह सका । हिसाब का खाता वैसे ही खुला हुआ है । नियम की कल में, कर्म के फन्दे में पड़ गया हूँ । इस समय वसन्त के आने और जाने से क्या होता है !

मनुष्य-समाज के आगे मेरा यही सविनय निवेदन है कि यह अवस्था ठीक नहीं है । इसका संशोधन होना उचित है । संसार के साथ अपना कोई सम्बन्ध न रखने से ही मनुष्य का गौरव नहीं हो सकता । संसार की सभी विचित्रताएँ मनुष्य में हैं, इसी कारण मनुष्य बड़ा समझा जाता है । मनुष्य जड़ के साथ जड़, वृक्ष-लता के साथ वृक्ष-लता और मृग-पक्षी आदि के साथ मृग-पक्षी है । प्रकृति महारानी के राजभवन के भिन्न भिन्न महलों के सभी द्वार उसके लिए खुले हैं । परन्तु उनके खुले रहने से क्या होगा ? प्रत्येक

ऋतु में प्रकृति के एक एक महल से जब उत्सव का निमन्त्रण आता है तब यदि मनुष्य उस निमन्त्रण को अस्वीकार करके अपनी आढ़त की गद्दी पर ही पड़ा रहे तो उसने इतना बड़ा अधिकार क्यों पाया? पूर्ण मनुष्य होने के लिए मनुष्य को सब कुछ होना होगा,—इस सत्य सिद्धान्त को भूल कर मनुष्य ने मनुष्यत्व को विश्व-विद्रोह का झण्डा बना कर क्यों खड़ा कर रक्खा है? क्यों मनुष्य घमण्ड के साथ बार बार यही कहता है कि हम जड़ नहीं हैं, वृक्ष नहीं हैं, पशु नहीं हैं; किन्तु मनुष्य हैं। हम केवल काम करते हैं, समालोचना करते हैं, शासन करते हैं, और विद्रोह करते हैं। वह क्यों नहीं यह कहता कि हम सभी हैं, संसार के सभी पदार्थों के साथ हमारा सम्बन्ध है,—स्वतन्त्रता का झण्डा हमारा नहीं है!

हाय रे समाज के पिंजड़े में रहनेवाले पक्षी! आकाश की नीलिमा आज विरहिनी की—स्वप्न के आवेश से पूर्ण—दोनों आँखों के समान है, पत्तों का हरा रङ्ग आज तरुणी के कपोलों के समान नवीन है, वसन्त की हवा आज मिलन के आग्रह के समान चञ्चल है, तो भी आज तेरे दोनों पंख बँधे हुए हैं—तो भी आज तेरे पैरों में कर्म की जंजीर झन् झन् करके बज रही है। यही क्या मानव-जन्म है!

असम्भव कहानी

एक राजा था।

उस समय इससे अधिक जानने की आवश्यकता नहीं थी कि कहाँ का राजा था, उसका नाम क्या था? इन सब प्रश्नों को पूछ

कर कहानी में हम बाधा नहीं डालते थे। राजा का नाम शिलादित्य या शालिवाहन था; काशी, कांची, कन्नौज, कोशल, अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्ग आदि में ठीक कहाँ पर उसकी राजधानी थी, ये सब इतिहास और भूगोल से संबंध रखनेवाले तर्क हमारे निकट अत्यन्त तुच्छ थे। एक राजा था, यह सुनते ही हृदय पुलकित हो जाता था, और वह चारों ओर से खिंच कर उस ओर लग जाता था।

किन्तु आज-कल के पाठक जैसे पहले ही से कमर कसे तैयार रहते हैं। वे पहले ही से लेखक को मिथ्यावादी समझ बैठते हैं। अतएव वे बहुत ही सयाने की तरह मुखमण्डल गम्भीर बनाकर पूछते हैं कि लेखक महाशय, तुम कहते हो कि एक राजा था, पर यह तो बतलाओ कि वह राजा था कौन?

लेखक भी समयानुसार सयाने हो गये हैं। वे भारी प्रत्नतत्त्ववेत्ता पण्डित की तरह मुखमण्डल को चौगुना गम्भीर और मण्डलाकार बनाकर कहते हैं—एक राजा था और उसका नाम था अजातशत्रु।

फिर पाठक आँख बन्द करके पूछता है—अजातशत्रु! भला यह अजातशत्रु कौन था?

लेखक उसी प्रकार अविचल भाव से कहता है—"अजातशत्रु नाम के तीन राजा थे। एक अजातशत्रु ईसा के जन्म के तीन हज़ार वर्ष पहले उत्पन्न हुआ था और वह दो वर्ष आठ महीने की अवस्था में ही मर गया। दुःख की बात है कि उसके जीवन का विस्तृत विवरण किसी भी ग्रन्थ में लिखा नहीं मिलता।" अन्त को दूसरे अजातशत्रु के संबंध में दस पाँच ऐतिहासिक विद्वानों

के भिन्न भिन्न मतों की समालोचना करके जब ग्रन्थ के नायक तीसरे अजातशत्रु तक लेखक पहुँचता है तब पाठक सहसा कह उठता है--वाह वाह, कैसा पाण्डित्य है! यह कहानी सुनने में कितनी अच्छी अच्छी बातें मालूम हुई! कितनी शिक्षा मिली! अब इस मनुष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। फिर पाठक कहता है—अच्छा लेखक महाशय कहिए, आगे क्या हुआ?

हाय, मनुष्य ठगा जाना ही चाहता है। ठगा जाना मनुष्य को बहुत पसन्द है। किन्तु वह मन ही मन इस बात से डरता भी है कि कोई हमको निर्बोध न समझ ले। इसीलिए वह प्राणपन से चालाक होने का प्रयत्न करता है। इसका फल यह होता है कि वह अन्त में ठगा तो जाता है, परन्तु बड़े आडम्बर और आयोजन से।

अँगरेज़ी में एक कहावत है – "पूछो मत, नहीं तो झूठा उत्तर सुनना पड़ेगा।" बालक इस बात को समझता है, इसी कारण वह कोई प्रश्न नहीं करता। अतएव कहानी का मिथ्या भाग बालक की तरह नंगा (खुला हुआ), सत्य के समान सरल और फुहारे के समान स्वच्छ होता है। और आज-कल का चातुरी-पूर्ण झूठ नक़ाब डाले रहता है। यदि कहीं तिल भर भी छिद्र रह जाता है तो सब मिथ्या प्रकाशित हो जाता है। पाठक विमुख हो जाते हैं और लेखक को भागने की राह नहीं मिलती।

बाल्यावस्था में हम लोगों में सच्ची रसज्ञता थी। अतएव जब हम कहानी सुनने बैठते थे, तब ज्ञान-लाभ के लिए हमारे हृदय में कुछ भी आग्रह न होता था। हमारा अशिक्षित हृदय ठीक

ठीक समझ लेता था कि असल बात क्या है। और, आज-कल कहानी कहने में बहुत अधिक बकना पड़ता है, बहुत सी अनावश्यक बातें भी आवश्यक हो जाती हैं। परन्तु अन्त में सार इतना ही निकलता है कि एक राजा था।

ठीक ठीक स्मरण है कि उस दिन सन्ध्या-समय पानी बरस रहा था। समूचा कलकत्ता जलमय हो गया था। गलियों में घुटने घुटने भर पानी भरा हुआ था। पूरी आशा थी कि आज मास्टर साहब नहीं आवेंगे। पर तो भी उनके आने के नियत समय तक कुछ कुछ उनके आने का भय बना हुआ था। अतएव ऊपर बरामदे में कुरसी रखकर उस पर बैठा हुआ मैं राह की ओर देख रहा था। जब पानी ज़ोर से बरसने लगता था तब एकाग्र चित्त से यही प्रार्थना करता था कि हे देवता, कुछ और अधिक बरसो। किसी प्रकार सायंकाल के साढ़े सात बजे तक ज़ोर से बरसते रहो। उस समय मन में यही सोचता था कि संसार में पानी बरसने की और कोई आवश्यकता नहीं है। पानी बरसने का मुख्य प्रयोजन नगर में मास्टर के भय से व्याकुल एक बालक की रक्षा करने के अतिरिक्त दूसरा नहीं है। पहले किसी एक निर्वासित यक्ष ने भी तो समझा था कि आषाढ़ के मेघ का और कोई विशेष काम नहीं है; अतएव रामगिरि के शिखर से एक विरही का दुःख-संवाद ले जाकर संसार के बाहर, अलकापुरी के एक महल के झरोखे में, एक विरहिनी के पास पहुँचाना—ख़ास कर जब मार्ग इतना सुन्दर और मनोहर है तथा हृदय की वेदना इतनी प्रबल है—उसके लिए कुछ कठिन नहीं है।

बालक की प्रार्थना के कारण चाहे न हो, किन्तु धूम-ज्योति-सलिल-मरुत के किसी विशेष नियम के ही अनुसार, पानी बरसना बन्द नहीं हुआ। पर हाय, तो भी मास्टर ने पीछा न छोड़ा। नियत समय पर गली के मोड़ पर एक परिचित छाता देख पड़ा। देखते ही मेरी सब आशा भाप की तरह उड़ गई। मेरा हृदय जैसे पसलियों से चिपक गया। यदि पर-पीड़न के पाप का उचित दण्ड मिलता है तो निश्चय ही आगे के जन्म में मैं मास्टर होऊँगा और मास्टर मेरे विद्यार्थी होंगे। पर उसके विरुद्ध एक आपत्ति यह है कि मास्टर के मास्टर बनकर दूसरा जन्म लेने से बहुत ही असमय में मुझे इस संसार से बिदा होना पड़ेगा। इस कारण मैं हृदय से मास्टर के अपराधों को क्षमा करता हूँ।

छाता देखते ही मैं दौड़ कर भीतर चला गया। उस समय माता बुआ के साथ उनके सामने बैठ कर चौपड़ खेल रही थीं। मैं वहीं एक किनारे जाकर लेट रहा। माता ने पूछा, क्या हुआ? मैंने मुँह लटका कर कहा—मेरी तबीयत आज अच्छी नहीं है, मैं आज मास्टर के पास पढ़ने न जाऊँगा।

आशा है, कोई बालक मेरे इस लेख को नहीं पढ़ेगा, और स्कूल के किसी सिलेक्शन पुस्तक में भी यह उद्धृत नहीं किया जायगा। क्योंकि मैंने जो काम किया था वह नीति-विरुद्ध है और उसके लिए मुझे कोई दण्ड भी नहीं मिला था। बल्कि उससे मेरा अभिप्राय सिद्ध होगया।

माता ने नौकर को बुला कर कहा—आज पढ़ना न होगा; मास्टर से कहो कि आज जायँ।

इसके अनन्तर माता ने फिर चौपड़ खेलने में मन लगाया। वह कुछ भी विचलित नहीं हुईं। इससे यह स्पष्ट मालूम होगया कि पुत्र के रोग के उत्कट लक्षणों को मिला कर—देख कर—माता मन ही मन हँसने लगीं। मैं भी ख़ुशी के मारे तकिये में मुँह छिपाकर ख़ूब हँसा। माता ने मेरे मन की और मैंने माता के मन की बात जान ली।

किन्तु यह सभी जानते हैं कि इस प्रकार के रोग को बहुत देर तक बनाये रखना रोगी के लिए बहुत ही कठिन होता है। कुछ मिनटों के भीतर ही मैं बुआ के पीछे पड़ गया और कोई कहानी कहने के लिए उन्हें तंग करने लगा। तीन चार बार कहने से कोई उत्तर नहीं मिला। फिर माता ने कहा—ठहरो बेटा, पहले यह खेल समाप्त होजाने दो!

मैंने कहा—नहीं मा, अपना खेल तुम कल समाप्त करना, आज बुआ को कहानी कहने दो।

माता चौपड़ की बिसात लपेट कर बुआ से कहने लगीं—जाओ भाई जाओ, इससे भला कौन पेश पा सकता है।

सम्भव है, माता ने मन ही मन यह सोचा हो कि मेरा तो कोई मास्टर नहीं है, जो कल फिर पढ़ाने आवेगा। मैं कल भी खेल सकती हूँ।

मैं बुआ का हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ एकदम मसहरी के बिछौने पर जाकर बैठ गया। पहले तकिया लगा कर हाथ-पैर फैला कर मैं लेट रहा और थोड़ी देर तक मन के आनन्द का उपभोग करता रहा। अन्त को मैंने कहा—बुआ, कोई कहानी कहो।

उस समय भी झम झम करके बाहर पानी बरस रहा था। बुआ ने कहानी कहना शुरू किया—एक राजा था। उसके एक रानी थी। आह, मेरी तो जैसे जान बची। क्योंकि सूयो और दूयो * रानी की कथा सुनने से हृदय काँप उठता है। अभागिन दूयो पर भारी आफ़त आने की आशङ्का से हृदय धड़कने लगता है। पहले ही से मन एक प्रकार की उत्कण्ठा से दब जाता है।

जब सुना कि किसी विशेष चिन्ता की कोई बात नहीं है; राजा के कोई पुत्र न था, इस कारण वह व्याकुल था; वह फिर देवताओं से प्रार्थना करने की इच्छा से तपस्या करने के लिए वन जाने को तैयार हुआ, तब जैसे जान में जान आई। यह बात मैं नहीं जानता था कि पुत्र के न होने से भी दुःख होता है। मुझे तो केवल यही मालूम था कि यदि कोई मनुष्य वन में जाता है तो वह केवल मास्टर के हाथ से बचने के लिए।

रानी और एक छोटी कन्या को घर में छोड़ कर राजा चला गया। एक दो वर्ष करके धीरे धीरे राजा को नगर छोड़े बारह वर्ष बीत गये तो भी वह लौट कर नहीं आया।

इधर राजकन्या सोलह वर्ष की होगई। उसके व्याह का समय बीतने लगा। पर तो भी राजा लौट कर घर नहीं आया।

कन्या की ओर देख कर रानी को खाना-पीना कुछ भी अच्छा न लगता था। वह बेटी के मुँह की ओर देख कर अपने मन में

* सूयो-दूयो की एक कथा है। दूयो सीधी थी इस कारण उसे अनेक कष्ट भोगने पड़े थे।

कहती थी कि हाय, मेरी प्राणों की प्यारी बेटी क्या सदा बिन ब्याही ही रहेगी ? हाय, मेरे भाग्य में क्या लिखा है !

अन्त को रानी ने बहुत ही अनुनय-विनय के साथ राजा के पास यह कहला भेजा कि मैं और कुछ नहीं चाहती, आप एक दिन के लिए घर आइए, और भोजन करके फिर लौट जाइएगा ।

राजा ने कहला भेजा—अच्छा ।

रानी ने उस दिन भोजन के लिए बड़ी तैयारियाँ कीं । उसने अपने हाथ से चौसठ प्रकार के व्यंजन बनाये। सोने के थाल और चाँदी के कटोरे-कटोरियों में उसने भोजन परोसा । चन्दन का पीढ़ा डाल दिया। राजकुमारी हाथ में चँवर लेकर खड़ी हुई ।

राजा आज बारह वर्ष के बाद अपने महल में लौट आकर भोजन करने बैठा। राजकुमारी अपनी सुन्दरता का प्रकाश फैलाती हुई चँवर डुला रही है ।

राजा कन्या के मुँह की ओर एकटक ताकने लगा, भोजन न कर सका। अन्त को उसने रानी की ओर देख कर पूछा—रानी, यह सोने की प्रतिमा के समान सुन्दरी लक्ष्मी कौन है ? यह किसकी बेटी है ?

यह सुन कर रानी ने अपना सिर धुनकर कहा—हाय रे मेरे अभाग्य ! आप इसको नहीं पहचानते ! यह आपही की कन्या तो है ।

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने कहा—मेरी कन्या, जो अभी उस दिन छोटी सी थी, आज इतनी बड़ी होगई !

रानी ने ठण्डी साँस लेकर कहा—तो क्या उतनी ही छोटी बनी रहती? आप कहते क्या हैं, आपको वन में गये आज बारह वर्ष बीत गये!

राजा ने पूछा—इसका अभी तक ब्याह नहीं किया?

रानी ने कहा—आप तो यहाँ थे ही नहीं; ब्याह करता कौन? क्या वर ढूँढ़ने के लिए मैं जाती?

यह सुन कर राजा घबरा उठा। वह सहसा कह उठा—अच्छा, कल प्रातःकाल उठते ही राजद्वार पर मैं जिसका मुँह देखूँगा उसी के साथ इस लड़की का ब्याह कर दूँगा।

राजकन्या चँवर डुलाती रही। राजा भोजन कर चुका।

दूसरे दिन प्रातःकाल पलँग से उठकर बाहर आते ही राजा ने देखा कि एक ब्राह्मण का लड़का राज-महल के बाहर जङ्गल से सूखी लकड़ियाँ ला ला कर ढेर कर रहा है। उसकी अवस्था सात आठ वर्ष के लगभग होगी।

राजा ने कहा—इसी के साथ मैं अपनी कन्या का ब्याह करूँगा।

राजा की आज्ञा को कौन टाल सकता है। उसी समय वह लड़का पकड़ मँगाया गया और राजकन्या से उसका ब्याह हो गया।

इतना सुनकर मैं बुआ के बहुत पास खिसक गया और कौतूहल के साथ पूछा—फिर क्या हुआ?—क्या उस सात आठ वर्ष की अवस्थावाले भाग्यवान् लकड़ी बटोरनेवाले बालक का स्थान पाने की कुछ भी इच्छा मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई? जिस समय बाहर झमा झम पानी बरस रहा था, दीपक टिमटिमा रहा था, मसहरी के भीतर धीरे धीरे बुआ कहानी कह रही थी, उस

समय बालक-हृदय के विश्वास-परायण रहस्यमय और अप्रकाशित एक छोटे भाग में यह संभवपर चित्र नहीं अङ्कित हो उठा कि वह भी किसी दिन सबेरे किसी राजा के राजमहल के द्वार पर लकड़ियाँ जमा कर रहा है; अकस्मात् लक्ष्मी के समान राजकन्या से उसका ब्याह होगया। राजकन्या के माथे पर सेंदुर, कानों में कर्ण-फूल, गले में हार, हाथों में कंगन, कमर में करधनी और महावर से रँगे पैरों में नूपुर झम झम बज रहे हैं।

परन्तु मेरी बुआ यदि लेखक होकर जन्म लेतीं और आज-कल के चतुर पाठकों के सामने उन्हें यह कहानी कहनी पड़ती तो इतने ही में उनको न मालूम कितनी शंकाओं का समाधान करना पड़ता। सबसे पहले तो यही, कि राजा बारह वर्ष तक वन में रहे और राजकन्या तब तक ब्याही नहीं गई। इस बात को सब श्रोता असम्भव कहते। यदि इस शंका का समाधान किसी प्रकार हो जाता और पाठक मान भी लेते, तो राजकन्या के वर के बारे में भारी आपत्ति उठती। एक तो ऐसा होना ही असम्भव ठहराया जाता, दूसरे लेखक पर यह दोषारोप किया जाता कि क्षत्रिय-कन्या के साथ ब्राह्मण-बालक का ब्याह कराकर वह समाज-विरुद्ध मत का प्रचार कर रहा है। पाठक तो वैसे लड़के नहीं हैं, वे तो लेखक के नाती-पोते नहीं हैं कि सब बातें चुपचाप सुन लें। वे लेखक की लिखी कहानी की अख़बार में समालोचना करेंगे। अतएव मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि बुआ यदि फिर जन्म लें तो बुआ हो कर ही, अभागे भतीजे के समान ग्रह-दोष से उन्हें लेखक न बनना पड़े।

मैंने अत्यन्त आनन्दित होकर धड़कते हुए हृदय से कहा—इसके बाद ?

बुआ ने कहा—इसके बाद इस घटना से दुःखित होकर राजकन्या अपने उस छोटे से पति को लेकर वहाँ से चली गई।

राजकन्या ने बड़ी दूर के किसी देश में जाकर वहाँ एक महल बनवाया। वहीं रह कर वह उस ब्राह्मण-बालक को, उस अपने नन्हें से पति को, बड़े यत्न से पालने लगी।

मैं थोड़ा हिल-डुल कर पासवाले तकिये को ज़ोर से पकड़ कर बोला—इसके बाद ?

बुआ ने कहा—इसके बाद वह बालक रोज़ हाथ में पोथी लेकर पाठशाला जाने लगा।

इस प्रकार गुरुजी से अनेक विद्याएँ सीखता हुआ वह बालक ज्यों ज्यों बड़ा होने लगा त्यों त्यों उसके सहपाठी विद्यार्थी उससे पूछने लगे कि उस सतखंडे महल में जो तुमको लेकर रहती है वह औरत तुम्हारी कौन है ?

वह ब्राह्मण का बालक बहुत सोचकर भी यह निश्चय न कर सका कि वह औरत उसकी कौन होती है! उसे इतना ही कुछ कुछ याद है कि एक दिन वह राजद्वार के आगे सूखी लकड़ियाँ जमा कर रहा था। परन्तु उस दिन न जाने क्या गोलमाल मच गया कि वह अपना काम न कर सका। यह बहुत दिनों की बात कैसे ठीक ठीक याद रह सकती है ? इसी तरह चार पाँच वर्ष बीत गये। किन्तु उसके साथियों का पूछना बन्द नहीं हुआ। वे उससे

बराबर पूछते रहते हैं कि इस सतखंडे महल में जो बड़ी सुन्दरी स्त्री रहती है वह तुम्हारी कौन है?

एक दिन वह ब्राह्मण का लड़का बहुत उदास होकर पाठशाला से घर आया। उसने आकर राजकुमारी से कहा—मेरे साथी प्रतिदिन पाठशाला में मुझसे पूछते हैं कि उस सतखण्डे महल में जो परमसुन्दरी स्त्री रहती है वह तुम्हारी कौन है। मैं इसका कुछ उत्तर नहीं दे सकता। बताओ, तुम हमारी कौन हो?

राजकुमारी ने कहा—आज रहने दो, और किसी दिन बतलाऊँगी।

ब्राह्मण का बालक प्रतिदिन पाठशाला से लौटकर राजकुमारी से पूछता था—बताओ, तुम हमारी कौन हो?

राजकन्या प्रतिदिन यही उत्तर देती थी कि, आज रहने दो और किसी दिन बता दूँगी। इसी प्रकार और चार पाँच वर्ष बीत गये। एक दिन ब्राह्मण-बालक ने बहुत बिगड़ कर कहा—जो तुम आज न बताओगी कि तुम हमारी कौन हो तो तुम्हारा मकान छोड़ कर मैं कहीं चला जाऊँगा।

तब राजकन्या ने कहा—अच्छा, कल तुमको अवश्य बता दूँगी।

दूसरे दिन पाठशाला से आकर ब्राह्मण-कुमार ने राजकुमारी से कहा—आज ही बतलाने के लिए तुम ने कहा था, सो बतलाओ।

राजकुमारी ने कहा—आज रात को भोजन करके जब तुम सोओगे तब बतलाऊँगी।

ब्राह्मण-बालक ने कहा—"अच्छा।" वह बैठा बैठा सूर्यास्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। इधर राजकुमारी ने सोने के पलँग पर सुन्दर

सफ़ेद फूलों की सेज बिछाई, सोने के दीपक में सुगन्धित तेल जलाया, और नीले रङ्ग की सारी पहन कर अपना शृङ्गार करके बैठी। वह इस तरह रात के आने की घड़ियाँ गिनने लगी।

रात को उसका स्वामी किसी तरह भोजन करने के उपरान्त शयन-गृह में जाकर सोने के पलँग पर, फूलों के बिछौने पर, लेट रहा। वह लेटकर सोचने लगा कि आज यह मालूम हो जायगा कि इस मकान में रहनेवाली सुन्दरी मेरी कौन है।

पति की थाली में प्रसाद खाकर राजकुमारी धीरे धीरे पति के सोने के कमरे में गई। आज बहुत दिनों बाद पति को यह बतलाना होगा, इस मकान की एकमात्र स्वामिनी मैं तुम्हारी कौन हूँ।

राजकुमारी ने बिछौने पर पैर रखते ही क्या देखा! देखा, स्वामी के शरीर में प्राण नहीं हैं। फूल-सेज पर कोई साँप छिपा बैठा था, उसने न मालूम कब स्वामी को काट खाया है। स्वामी का मृत शरीर काला होकर सोने के पलँग पर—फूल-सेज पर—पड़ा हुआ है।

मेरे हृदय की गति जैसे रुक गई। मैंने भर्राई हुई आवाज़ में पूछा—इसके बाद क्या हुआ!

बुआ कहने लगीं—इसके बाद—

पर उस बात के कहने की क्या आवश्यकता है? वह तो और भी असम्भव है। कहानी का प्रधान नायक साँप के काटने से मर गया, तो भी इसके बाद? मैं बालक तब यह जानता ही नहीं था कि मृत्यु के पीछे भी प्रश्न करने का अवसर अवश्य रहता है, पर उसका उत्तर बुआ की बुआ भी नहीं दे सकतीं। विश्वास

ही से सावित्री ने मृत्यु का अनुगमन किया था। बालक के हृदय में भी प्रबल विश्वास होता है। इसीसे वह मृत्यु का आँचल पकड़ कर उसको लौटा लाना चाहता है। वह किसी तरह इस पर विश्वास नहीं कर सकता कि --मास्टर के भय से शून्य—सन्ध्या को बड़ी साध से जो कहानी वह सुन रहा है वह साँप के काटते ही समाप्त हो जायगी। इसी कारण बुआ को उस महापरिणाम के सदा बन्द घर से कहानी फिर लौटा लानी पड़ती है। कहानी को मृत्यु के पास से लौटा लाने में उन्हें कुछ कठिनता भी नहीं है; वह अनायास, बहुत ही सहज में, उसे लौटा लेती हैं। केवल किसी केले की नाव में बहा कर और फिर मन्त्र की सहायता से मुर्दे को जिला कर वह अपना काम सिद्ध कर लेती हैं। इससे झमा झम बरस रहे पानी से परिपूर्ण रात्रि में, निश्चल प्रदीप के प्रकाश में, बालक के हृदय से मृत्यु का भय एक दम ही दूर हो जाता है। वह मृत्यु की कोमल मूर्त्ति देखने लगता है। उसको मृत्यु के बारे में एक रात की निद्रा से अधिक और कुछ नहीं मालूम होता। कहानी जब चुक जाती है, थकी हुई दोनों आँखें आराम से आप ही बन्द हो आती हैं, उस समय भी तो बालक की नन्हीं सी जान निःस्तब्ध और निस्तरङ्ग समय के प्रवाह में निद्रा की नाव पर छोड़ दी जाती है। उसके बाद प्रातःकाल न जाने कौन दो-एक माया-मन्त्र पढ़ कर उसे जगत् में जगा देता है!

पर जिसे विश्वास नहीं है, जो डरपोक इस सौन्दर्य-रस के स्वाद के लिए भी इंच भर असम्भव को स्वीकार करना नहीं चाहता उसके लिए कहीं कुछ भी "इसके बाद" नहीं है। उसके लिए

सभी कुछ अकाल में और अपूर्णता में ही समाप्त हो गया है। बाल्यावस्था में सात समुद्र पार होकर, मृत्यु को भी नाँघ कर, जहाँ कहानी की यथार्थ समाप्ति है वहाँ स्नेहमय और मधुर स्वर में मैं सुनता था—

आमार कथाटि फुरोलो,
नटे गाछटि मुड़ोलो ।

(अर्थात् मेरी कहानी समाप्त हुई और नट का वृक्ष शाखा-पत्र आदि से रहित हुआ ।)

इस समय बाल्यावस्था नहीं है। इस समय बीच ही में कहानी के रुक जाने से ये कठोर शब्द सुन पड़ते हैं—

आमार कथाटि फुरोलो ना,
नटे गाछटि मुड़ोलो ना ॥
केनोरे नटे मुड़ोलि ने केन,
तोर गोरुते—

(अर्थात, मेरी कहानी समाप्त नहीं हुई, नट का वृक्ष नहीं मुड़ गया । क्यों रे नट ! तू मुड़ा क्यों नहीं, अच्छा तुझे बैल—)

जाने भी दो इन बातों को, इस निरीह प्राणी का नाम न लेना ही अच्छा है; न-जाने कौन उसे अपने लिए समझ ले ।

बन्द घर

बड़ी भारी बस्ती में केवल एक घर बन्द है। उसके ताले में मोर्चा लग गया है। बहुत ढूँढ़ने पर भी उसकी चाभी का पता नहीं

लगता। न मालूम कितने दिनों से सन्ध्या के समय न तो उसमें दीपक जलाया जाता है और न दिन में कोई मनुष्य ही रहता है।

उस घर को खोलने में डर लगता है। अँधेरे में उसकी ओर जाने से रोएँ खड़े हो जाते हैं। जहाँ मनुष्य मनुष्य के साथ हँस कर बातें नहीं करता वहीं हम लोगों को डर लगता है। और जहाँ मनुष्य आपस में बातचीत करते हैं उस पवित्र स्थान में भय का नाम भी नहीं रहता।

दोनों किवाड़े बन्द किये बीच में वह घर खड़ा है। किवाड़ों में कान लगा कर सुनने से मालूम पड़ता है कि भीतर हू-हू शब्द हो रहा है।

वह घर और कोई नहीं, विधवा है। यहाँ कोई एक आदमी रहता था। उसके चले जाने से यह बन्द पड़ा है। जब से वह गया तब से न तो यहाँ कोई आता है और न यहाँ से कोई जाता ही है। और किसी के लिए क्या कहा जाय, तब से यहाँ आते जैसे मौत को भी मौत आती है।

इस जगत् में निरन्तर गति-शील जीवन का प्रवाह मृत्यु को भी बहा ले जाता है, मृत मनुष्य कहीं पर एक क्षण भी नहीं टिकने पाता। इसी भय से समाधि-मन्दिर, कृपण की तरह, चोर के हाथ से मृत पुरुष की रक्षा करने के लिए, उसे पत्थर की चहार-दीवारी के भीतर छिपा रखता है। वहाँ भय दिन-रात पहरा दिया करता है। लोग चोर कह कर मृत्यु की ही निन्दा करते हैं, पर जीवन भी मृत्यु की चोरी करके उसे अपने बड़े परिवार में बाँट देता है—यह बात कोई भी नहीं कहता।

पृथिवी मृत्यु को भी अपनी गोद में स्थान देती है और जीवन को भी। मृत्यु की गोद में दोनों ही भाई-बहन के समान एक साथ क्रीड़ा करते हैं। जीवन और मृत्यु का प्रवाह देखने से, तरङ्गों पर अन्धकार और प्रकाश की क्रीड़ा देखने से, हम लोगों को कुछ भी डर नहीं लगता। पर बँधी हुई मृत्यु और रुँधी हुई छाया देखते ही डर लगता है। जहाँ मृत्यु की गति है, जहाँ मृत्यु जीवन का हाथ पकड़ कर प्रत्येक ताल पर नाचती है, वहाँ मृत्यु का भी जीवन है। वहाँ मृत्यु भयानक नहीं है। चिह्न के भीतर बँधी हुई गतिहीन मृत्यु ही यथार्थ मृत्यु है; वही भयानक है। इसी कारण समाधि-मन्दिर भय का निवासस्थान है।

पृथिवी में जो आता है वह जाता है। इस प्रवाह से ही संसार के स्वास्थ्य की रक्षा होती है। यह आना-जाना ज़रा भी बन्द होने से जगत् का सामञ्जस्य नष्ट होजाता है। जीवन जैसे आता है वैसे ही चला जाता है। मृत्यु भी जैसे आती है वैसे ही चली जाती है। उसे पकड़ कर रखने की चेष्टा क्यों करते हो? हृदय को पत्थर बनाकर, उस पत्थर में उसको दबा कर, क्यों रखते हो? उससे केवल स्वास्थ्य का नाश ही होगा। छोड़ दो, उसको जाने दो, जीवन-मृत्यु के प्रवाह में रुकावट न डालो। हृदय के दोनों द्वार खोल दो। प्रवेश के द्वार से लोग उसमें प्रवेश करें और निकलने के द्वार से निकल जायँ।

किन्तु इस घर के दोनों द्वार बन्द हैं। जिस दिन इस घर के द्वार पहले पहल बन्द हुए थे उस दिन का वह पुराना अन्धकार आज तक इस घर में वर्तमान है। घर के बाहर दिन पर दिन और

रात पर रात आती और चली जाती हैं। पर उस घर में वही एक दिन बन्द है। वहाँ समय चारों दीवारों के बीच में बँधा हुआ पड़ा है। पुरानी बातें कहीं नहीं रहतीं, केवल इसी घर में हैं।

इस घर के भीतर से बाहर का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। बाहर की बातें इस घर के भीतर नहीं पहुँचतीं, और न भीतर की साँस बाहर ही आती है। जगत् का प्रवाह इस घर के आसपास हो कर बह जाता है, पर उस प्रवाह का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। मानों संसार के अङ्ग से काट कर यह अलग कर दिया गया है।

यह घर अपने द्वार बन्द कर मार्ग की ओर देख रहा है। कौन कह सकता है कि जब पूर्णिमा के चन्द्रमा का प्रकाश आकर इस घर के द्वार पर धक्का देकर पड़ता है तब इसके द्वार खुलना चाहते हैं कि नहीं! पास के घर में जब उत्सव की आनन्दध्वनि उठती है तब क्या इस घर का अन्धकार दूर होना नहीं चाहता? यह घर किस भाव से देखता है, किस भाव से सुनता है, सो हम कुछ नहीं समझ सकते।

इसी घर में एक दिन लड़के खेलते थे, आज वही कोलाहलमय दिन इस घर में आधी रात के भीतर पड़कर रो रहा है। इस घर में जो स्नेह-प्रेम की लीलाएँ हो चुकी हैं, आज वे इसी में बन्द पड़ी हैं। इस निःस्तब्ध नीरव घर के बाहर खड़े होकर आज मैं उनके विलाप को सुन रहा हूँ। स्नेह और प्रेम बन्द करके रखने के लिए नहीं होते। वे मनुष्यों से अलग करके समाधि के भीतर गाड़कर रखने की चीज़ भी नहीं हैं। उनको बल-पूर्वक बाँधकर रक्खा जाय तो वे संसार के लिए रोते हैं।

इससे इस घर को बन्द न रक्खो, द्वार खोलदो। सूर्य का प्रकाश देखकर,—मनुष्यों की आहट पाकर, चौंककर,—भय यहाँ से चला जायगा। सुख और दुःख, शोक और उत्सव, जन्म और मृत्यु, पवित्र वायु की तरह इस घर की खिड़कियों से आने-जाने लगेंगे। सारे संसार के साथ इसका सम्बन्ध स्थापित हो जायगा।

राजपथ

मैं हूँ राजपथ (सड़क)। मुझे एक घड़ी के लिए भी विश्राम नहीं है। मुझे इतना भी विश्राम नहीं है कि मैं इस अपनी कठिन सूखी शय्या पर थोड़ी सी हरी घास लगा सकूँ। इतना भी समय नहीं है कि मैं अपने सिरहाने की ओर एक नीले रङ्ग का छोटा सा जङ्गली फूल खिला सकूँ। बात भी नहीं कर सकता हूँ, तथापि अन्धे की तरह सब अनुभव करता हूँ। रात-दिन, जब देखो तब, पद-शब्द सुनता रहता हूँ।

पृथिवी की कोई भी कहानी मैं पूर्ण रूप से नहीं सुन पाता। आज कई सौ वर्षों से मैं लाखों आदमियों का हँसना, गाना और बातें सुनता आता हूँ; पर उनका बहुत थोड़ा अंश सुन पाता हूँ। शेष अंश सुनने के लिए जब कान खड़े करता हूँ तब देखता हूँ कि कोई नहीं है; वे बातें करनेवाले चले गये।

सम्भव है, समाप्ति और स्थायिता कहीं हो, पर मैं तो उन्हें देख नहीं पाता। एक चरण-चिह्न को भी तो मैं बहुत देर तक अपने ऊपर रख नहीं सकता। मुझपर बराबर पैरों के चिह्न पड़ते हैं; किन्तु नये नये पद-चिह्न आकर पुराने पद-चिह्नों को मिटा देते हैं।

मैं किसी का भी लक्ष्य नहीं हूँ, मैं सबका उपाय भर हूँ। मैं किसी का घर नहीं हूँ, किन्तु सबको उनके घर पहुँचा देता हूँ। जिनका घर बड़ी दूर है वे मुझे ही गालियाँ देते हैं। यद्यपि मैं धैर्य के साथ उन्हें उनके घर पहुँचा देता हूँ, तो भी कोई मेरा कृतज्ञ नहीं होता। घर में पहुँचने पर विश्राम मिलता है, आनन्द मिलता है। सुख-सम्मिलन होता है। और, मेरे ऊपर रहने से केवल थकन का बोझ, केवल अनिच्छा-कृत परिश्रम, केवल वियोग भोगना पड़ता है।

जिस समय छोटे छोटे कोमल पैर मेरे ऊपर होकर चलते हैं उस समय मुझे अपना अंग बड़ा कठोर जान पड़ता है। मालूम होता है कि उनके पैरों में मेरा कठिन शरीर गड़ता है! तब मुझे कुसुम-दल-कोमल बनने की इच्छा होती है! राधिका ने कहा था—

जहँ जहँ अरुण चरण चलि जाता।
तहँ तहँ धरणि होहि मृदु गाता॥

अरुण-चरण इस कठिन पृथिवी पर क्यों चलते हैं! पर यदि वे न चलते तो आज कहीं पर हरी घास न उगती!

बहुत दिन हुए, ऐसे ही कोमल चरणों से कोई प्रति दिन तीसरे पहर बहुत दूर से आता था; उसके छोटे छोटे पैरों में नूपुर रुनुक झुनुक कर बजते थे। जहाँ इस वट वृक्ष की बाईं ओर मेरी एक शाखा बस्ती की ओर गई है, वहीं पर, वह थके हुए शरीर से पेड़ के नीचे चुपचाप खड़ी रहती थी। और एक आदमी दिन के सब कामों को समाप्त करके अन्यमनस्क भाव से उसी समय बस्ती की ओर चला जाता था। उसके चले जाने पर वह बालिका, थके

पैरों से, जिस मार्ग से आई थी उसी मार्ग से लौट जाती थी। बालिका जिस समय लौटती थी तब मुझे जान पड़ता था कि अन्धकार हो आया है। उस समय गोधूलि-बेला का कौओं का बोलना बन्द हो जाता था, बटोहियों का आना-जाना कम होने लगता था। सन्ध्या की हवा से रह रह कर बाँस-वन में भरभराहट का शब्द उठता था। इसी प्रकार कितने ही दिन तक—प्राय: प्रति दिन—वह बालिका धीरे धीरे आती और धीरे धीरे चली जाती थी। एक दिन, फागुन के आख़िरी दिनों में, तीसरे पहर जब आम के बौर हवा से भर भर कर गिरते थे, वह आदमी नहीं आया जो कि आता था। उस दिन वह बालिका बड़ी रात गये घर को लौट गई। जिस प्रकार बीच बीच में वृक्षों से सूखे पत्ते गिरते थे, उसी प्रकार वह बालिका अपने आँसुओं को मेरी नीरस तपी हुई धूल पर गिराती जाती थी। दूसरे दिन तीसरे पहर फिर भी वह बालिका उसी वृक्ष के नीचे आकर खड़ी हुई, पर उस दिन भी वह दूसरा आदमी नहीं आया। फिर वह बालिका रात को धीरे धीरे घर लौट गई। थोड़ी दूर तक चलने पर उससे आगे चला न गया। मेरे ऊपर धूल में गिर कर वह लोटने लगी—दोनों हाथों से अपनी आँखें बन्द कर फूट फूट कर रोने लगी। कौन हो तुम बेटी? इस सन्नाटे की रात में, मेरी छाती पर भी, क्या कोई आश्रय लेने आता है?

इस प्रकार के कितने ही चरणों के शब्द चुप हो गये हैं, मैं क्या उन सब को स्मरण रख सकता हूँ! मुझे क्या घड़ी भर भी शोक करने का अवसर है!

कैसी कड़ी धूप है। ओह ओह! मैं साँस लेता हूँ और तपी

हुई धूल नीले आकाश को मलिन बनाती हुई उड़ जाती है। धनी-दरिद्र, सुखी-दुःखी, वृद्ध-युवा, हँसना-रोना, जन्म और मृत्यु, सभी मेरे ऊपर से एक साँझ में धूल की तरह उड़ता चला जाता है। राह का न हँसना है और न रोना। घर ही अतीत के लिए शोक करता है, वर्तमान के लिए सोचता है और भविष्य के लिए आशा लगाये रहता है। परन्तु मार्ग में यह कुछ नहीं, वह तो वर्तमान प्रत्येक पल के सैकड़ों-हज़ारों अभ्यागतों को लेकर ही व्यस्त रहता है। ऐसे स्थान पर, अपने पद-गौरव पर विश्वास रख कर, अत्यन्त दर्प के साथ पैर रखता हुआ कौन अपने चरण-चिह्नों को चिर-काल तक रख जाने की चेष्टा करता है! मैं कुछ भी पड़ा रहने नहीं देता—हँसना भी नहीं, और रोना भी नहीं। केवल मैं ही पड़ा हुआ हूँ।

मन्दिर

उड़ीसा में भुवनेश्वर का मन्दिर मैंने जब पहले पहल देखा तब मालूम हुआ कि जैसे कोई नया ग्रन्थ पढ़ा। उस समय मुझे यह अच्छी तरह मालूम हुआ कि इन पत्थरों में बातें लिखी हुई हैं। वे बातें बहुत शताब्दियों से चुप—गूँगी सी—रहने के कारण जैसे हृदय पर और भी अधिक असर डालती हैं।

ऋक् बनानेवाले ऋषि छन्दों में मन्त्रों की रचना कर गये हैं। यह मन्दिर भी पत्थरों का मन्त्र है। हृदय की बातें प्रत्यक्ष होकर आकाश की ओर सिर उठाये खड़ी हैं।

मनुष्य के हृदय ने यहाँ कौन सी बात जोड़ रक्खी है? भक्ति ने क्या रहस्य प्रकाशित किया है? मनुष्य ने उस अनन्त से अपने अन्तःकरण में ऐसी कौन वाणी पाई थी जिसके प्रकट करने की भारी चेष्टा से पहाड़ की तरहटी का यह भारी मैदान भरा पड़ा है?

ये जो सैकड़ों देवालय हैं—जिनमें से अधिकांश में आज सन्ध्या की आरती का दीपक भी नहीं जलता, शंख-घण्टा आदि नहीं बजते, जिनके खुदे हुए पत्थर इधर उधर धूल में बिखरे पड़े हैं—ये किसी एक व्यक्ति-विशेष की कल्पना का परिचय नहीं देते। ये उस समय की—उस अज्ञात युग की—भाषा से परिपूर्ण हैं।

इन देवालयों ने अपनी निगूढ़ निःस्तब्ध चित्-शक्ति के द्वारा दर्शक के अन्तःकरण में जिस भाव की हलचल मचा दी है उसकी आकस्मिकता और सम्पूर्णता का वर्णन करना कठिन है। अतएव उसका विश्लेषण करके, उसके टुकड़े टुकड़े करके, कहने के लिए प्रयत्न किया जायगा। मनुष्य की भाषा यहाँ पत्थरों के आगे हार मानती है। पत्थरों को सिलसिलेवार वाक्यों का प्रयोग नहीं करना पड़ता—वे स्पष्ट कुछ नहीं कहते। उन्हें जो कुछ कहना होता है उसे वे एक ही साथ कह देते हैं; वे एक साथ ही पल भर में मनुष्य के हृदय पर अधिकार जमा लेते हैं। अतएव मन ने क्या समझा, क्या सुना, और क्या पाया—आदि बातों को भाव के द्वारा समझ लेने पर भी भाषा के द्वारा समझने का अवसर नहीं मिलता। अन्त में धीरे धीरे उन सब बातों को अपनी बातों में समझना पड़ता है।

मैंने देखा, मन्दिर की भीत पर चारों ओर चित्र खुदे हुए हैं।

कहीं भी खाली जगह नहीं है। जो देख पड़ता है और जो नहीं देख पड़ता, सर्वत्र शिल्पी की आलस्यहीन चेष्टा ने काम किया है।

वे चित्र विशेष रूप से पौराणिक ही नहीं हैं। दस अवतारों की लीला, अथवा स्वर्ग-लोक की देव-कहानी के ही चित्र मन्दिर पर नहीं खुदे हुए हैं। मनुष्य की छोटी-बड़ी, अच्छी-बुरी, प्रतिदिन की घटनायें—उसके खेल और काम, युद्ध और शान्ति, घर और बाहर आदि के सुन्दर चित्र—उस मन्दिर को चारों ओर घेरे हुए हैं। इन चित्रों के बीच और कोई उद्देश्य मुझे नहीं देख पड़ता। इन चित्रों के बनाने का उद्देश्य केवल यही जान पड़ता है कि संसार किस प्रकार चलता है, यह बात चित्र के रूप में दिखा दी जाय। अतएव इन चित्रों के भीतर ऐसी बहुत सी चीज़ें देख पड़ती हैं, जो एकाएक देखने से देवालय पर अंकित होने योग्य नहीं जान पड़तीं। इन चित्रों के लिखनेवालों ने इस बात का विचार नहीं किया है कि कौन चित्र रखने योग्य और नहीं रखने योग्य है। तुच्छ और महत्, गोपनीय और प्रकाशनीय सभी कुछ इन चित्रों में है।

किसी गिरजे में जाकर यदि मैं देखता कि वहाँ अँगरेज़-समाज के प्रति दिन के व्यवहारों के चित्र टँगे हुए हैं—कोई खाना खा रहा है, कोई डग कार्ट (एक घोड़े की गाड़ी) हाँक रहा है, कोई 'ह्विस्ट' खेल रहा है, कोई पियानो बजा रहा है, कोई अपनी साथिन के गलबहियाँ डाले नाच रहा है—तो मैं चकित होकर सोचने लगता कि शायद मैं स्वप्न देख रहा हूँ। क्योंकि गिरजा तो संसार को सब तरह मिटा-हटा कर अपनी स्वर्गीयता प्रकट करने

का प्रयत्न करता है। मनुष्य वहाँ जैसे बस्ती से बाहर निकल आता है। वह जैसे यथा-संभव मनुष्य-लोक के संसर्ग से रहित देव-लोक का आदर्श है।

इसीसे भुवनेश्वर-मन्दिर के चित्रों को देखकर पहले मन में बड़ा भारी विस्मय का धक्का लगता है। हम यदि स्वाभाविक स्थिति में होते, यदि बाल्यकाल ही से हमने शिक्षा के अनुसार स्वर्ग-लोक और मनुष्य-लोक के बीच बड़ा भारी अन्तर न समझ लिया होता, तो शायद इतना विस्मय न होता। हम सतर्क रहते हैं कि देव-आदर्श में मनुष्य भाव की छाँह न पड़ने पावे—देवता और मनुष्य के बीच में जो अत्यन्त पवित्र लम्बा चौड़ा अन्तर है उसे क्षुद्र मनुष्य कहीं, कुछ भी, नांघ न जाय।

पर यहाँ तो मनुष्य जैसे देवता के देह पर एकदम आकर गिर पड़ा है: सो भी अपने शरीर की धूल झाड़ कर नहीं। गति-शील, कर्म-परायण, धूलि-धूसर संसार की मूर्त्ति बिना किसी संकोच के ऊँची होकर देवता की मूर्त्ति को ढँके हुए है।

मैं मन्दिर के भीतर गया. वहाँ एक भी चित्र नहीं है, प्रकाश भी नहीं है। सजावट से खाली एकान्त अव्यक्तता के भीतर निःस्तब्ध देव-मूर्त्ति विराजमान है।

इसका एक बड़ा अर्थ मन में प्रकट हुए बिना नहीं रहता। मनुष्य ने इन पत्थरों की भाषा में जो कहने का प्रयत्न किया था वह उस बहुत प्राचीनकाल से आकर मेरे मन में प्रतिध्वनित हो उठा।

वह बात यही है, कि देवता दूर नहीं हैं, गिरजे में भी नहीं

हैं किन्तु हम लोगों के हृदय में ही विराज रहे हैं। वह जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, मिलन और विच्छेद के बीच में अचल भाव से खड़े हैं। यह संसार ही उनका पुराना मन्दिर है। यह सजीव और सचेतन भारी देव-मन्दिर प्रति दिन विचित्रता के साथ निर्मित होता रहता है। यह किसी समय नवीन नहीं है और किसी समय पुराना भी नहीं होता। इसका कुछ भी स्थिर नहीं है, सभी निरन्तर परिवर्त्तनशील है। तथापि इसकी महती एकता, सत्यता और नित्यता नष्ट नहीं होती। क्योंकि इसकी चंचल विचित्रता में एक नित्य सत्य प्रकाशित है।

भारतवर्ष में बुद्धदेव ने मनुष्य को बड़ा बनाया है। वे जाति-पाँति नहीं मानते थे। याग-यज्ञ करने से भी उन्होंने मनुष्यों को छुटकारा दे दिया है। देवता को मनुष्य के लक्ष्य से उन्होंने हटा दिया है। उन्होंने मनुष्यों की आत्मशक्ति की आराधना का प्रचार किया है। उन्होंने दया और कल्याण की प्रार्थना स्वर्ग से नहीं की है; उन्होंने तो मनुष्यों के हृदय से ही इन दोनों को निकालने की चेष्टा की है।

इसी प्रकार श्रद्धा के द्वारा, भक्ति के द्वारा उन्होंने मानव-हृदय की ज्ञान-शक्ति और उद्यम को महान् बनाया है। उन्होंने यह घोषणा की है कि मनुष्य दीन, दैवाधीन तथा तुच्छ पदार्थ नहीं है।

इसी समय हिन्दुओं के चित्र ने भी सजीव होकर कहा—यह बात ठीक है, मनुष्य दीन हीन नहीं है। क्योंकि मनुष्य की शक्ति ही—जिसने उसे मुख में भाषा दी है, मन में बुद्धि दी है, हाथों

में कारीगरी दी है, जो समाज को गठित करती है और संसार को चलाती है—दैवी शक्ति है।

बुद्धदेव ने जिस विशाल महोच्च मन्दिर की रचना की, उसी मन्दिर में नवप्रबुद्ध हिन्दुओं ने अपने देवता को पाया। बौद्धधर्म हिन्दूधर्म के अन्तर्गत हो गया। मनुष्य के भीतर देवता का प्रकाश है, संसार के भीतर देवता की प्रतिष्ठा है, हम लोगों के प्रतिमुहूर्त्त के सुख-दुख में देवता का सञ्चार है; यही नये हिन्दू-धर्म के मर्म की बात (सिद्धान्त) हो उठी। शाक्त की शक्ति और वैष्णव का प्रेम घर घर में व्याप्त हो गया। मनुष्य के छोटे छोटे कामों में भी शक्ति की प्रत्यक्ष सहायता और मनुष्य के स्नेह-प्रेम के सम्बन्ध में भी दिव्य प्रेम की प्रत्यक्ष लीला बहुत ही निकटवर्ती होकर देख पड़ी। इस देवता के आविर्भाव से छोटे-बड़े का भेद मिटने की चेष्टा होने लगी। समाज में जो घृणित समझे जाते थे वे भी अपने को दैवी शक्ति का अधिकारी समझ कर अभिमान से फूल उठे। प्राकृत पुराणों में इसका इतिहास है।

उपनिषद् में एक मन्त्र है—

"वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः।"

जो एक है वह आकाश में वृक्ष के समान अटल भाव से खड़ा है। भुवनेश्वर का मन्दिर इसी मन्त्र को एक विशेष रूप से इस प्रकार पढ़ रहा है कि जो एक है वह इस मानव-संसार में अटल भाव से अवस्थित है। जन्म-मृत्यु का आना-जाना हम लोगों की आँखों के सामने से प्रतिदिन घूमा करता है, सुख और दुःख उठते और गिरते हैं; पाप और पुण्य, प्रकाश और अन्धकार के द्वारा,

संसार की दीवार को व्याप्त कर रहे हैं। सब विचित्र है, सब चञ्चल है। उसी के भीतर बिना सजावट के एकान्त स्थान में वही 'एक' वर्तमान है। यह सब अस्थिर पदार्थ उसी स्थिर का शान्ति-निकेतन हैं—यह परिवर्तन-परम्परा उसी नित्य का स्थायी प्रकाश है। देवता, मनुष्य, स्वर्ग, मर्त्य, बन्धन और मुक्ति का यही अनन्त सामञ्जस्य है। यही बात वहाँ पत्थर की भाषा में लिखी है।

उपनिषद् ने एक उपमा द्वारा इसी बात को प्रकट किया है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्योऽभिचाकशीति॥"

दो सुन्दर पक्षी एक साथ एक वृक्ष पर रहते हैं। उनमें एक मधुर पिप्पल का फल खाता है और दूसरा खाता नहीं, केवल देखता है।

जीवात्मा और परमात्मा का ऐसा सायुज्य, ऐसा सारूप्य, ऐसा सालोक्य, इस प्रकार अनायास, ऐसी स्वाभाविक उपमा के द्वारा, ऐसे सरल साहस के साथ और कहाँ कहा गया है! जीव के साथ भगवान् की सुन्दर समता को जैसे कोई प्रत्यक्ष आँखों से देख कर उसका वर्णन कर उठा है। इसी कारण उसे उपमा के लिए आकाश-पाताल को टटोलना नहीं पड़ा। वनवासी कवि ने वन के दो सुन्दर पक्ष वाले पक्षियों के समान ससीम और असीम को साथ साथ बैठे देखा है। इसी कारण उन्होंने इस गूढ़ तत्त्व को किसी बड़ी उपमा के द्वारा बहुत बड़ा बना डालने की चेष्टा भी नहीं की। दो छोटे पक्षी स्पष्ट रूप से अनुभवगम्य हैं, सुन्दर भाव से देख पड़ते हैं; उनमें नित्य के परिचय की सरलता है। किसी

बड़ी उपमा में यह बात नहीं हो सकती थी। यह उपमा छोटी है; इसीसे इसने सत्य को बड़े महत्व से, बृहत् बना कर, प्रकाशित किया है। बृहत् सत्य को देखनेवाले का चिन्ता-रहित साहस छोटी उपमा में ही ठीक ठीक प्रकाशित हो सका है।

ये दोनों पक्षी हैं। इनके पंख आपस में मिले हैं। ये दोनों मित्र हैं और एक ही वृक्ष पर रहते हैं। इनमें एक भोग करने वाला और दूसरा साक्षी है। एक चञ्चल है और दूसरा नित्य।

भुवनेश्वर का मन्दिर भी जैसे इसी मन्त्र को धारण करता है। उसने देवालय से मनुष्यत्व को पोंछ कर फेंक नहीं दिया। उसने दोनों पक्षियों को एक साथ रख कर उक्त श्लोक के भाव की ही घोषणा की है।

किन्तु भुवनेश्वर के मन्दिर में जैसे और भी कुछ विशेषता है। ऋषि-कवि की उपमा में एकान्त वन की निपट निर्जनता का भाव रह गया है। इस उपमा की दृष्टि से प्रत्येक जीवात्मा जैसे अकेले ही परमात्मा से सम्बन्ध-युक्त है। इस वर्णन से जो चित्र मन में अङ्कित होता है उसमें हम लोग देखते हैं कि मैं भोग करता हूँ, भ्रमण करता हूँ, उसी 'मैं' में ही वह "शान्तं शिवम-द्वैतम्" (शान्त और अद्वैत कल्याण) अटल भाव से प्रकट है।

किन्तु यह एक ही के साथ एक का संयोग भुवनेश्वर के मन्दिर में नहीं अङ्कित हुआ है। वहाँ समस्त मनुष्य अपने समस्त कर्म—समस्त भोग लेकर, अपने तुच्छ और महान इतिहास को लिये हुए, समग्र भाव से एक होकर, अपने ही बीच में अन्तरतर रूप से—साक्षी के रूप से, भगवान् को प्रकाशित कर रहा है। निर्जन

में नहीं, योग में नहीं, किन्तु जनता में और कर्म-क्षेत्र में यहाँ भगवान् प्रकट हैं । भुवनेश्वर के मन्दिर ने संसार को—जनसमूह को—देवालय के रूप में व्यक्त कर रक्खा है । उसने समष्टि रूप से मनुष्य को देवता के पद पर प्रतिष्ठित किया है। उसने पहले छोटे-बड़े सब मनुष्यों को अपने पत्थर के चित्रपट पर एक करके सजाया है, और फिर दिखलाया है कि इनमें जो परम ऐक्य है वह कहाँ है और कौन है । इस महान् एकता का हृदय-पट में आविर्भाव होने से प्रत्येक मनुष्य समग्र मनुष्य से मिल कर महान् है । पिता के साथ पुत्र, भाई के साथ भाई, पति के साथ पत्नी, पड़ोसी के साथ पड़ोसी, एक जाति के साथ दूसरी जाति, एक काल के साथ दूसरा काल, एक इतिहास के साथ दूसरा इतिहास देवात्मा के द्वारा एकात्म भाव को प्राप्त हो गये हैं—एक में लीन हो गये हैं।



छोटा नागपुर

मैं रात को हवड़े में रेलगाड़ी पर सवार हुआ । रेल पर झोंके खा खाकर नींद जैसे टुकड़े टुकड़े हो जाती है । होश-औँघाई, सोना-जागना, इनकी एक खिचड़ी सी पकने लगती है । बीच बीच में रोशनी देख पड़ती है—घंटे की आवाज़, मनुष्यों का कोलाहल, अद्भुत स्वर से स्टेशनों का नाम पुकारा जाना सुन पड़ता है । ठन् ठन् ठन् करके तीन बार घंटा बजा और ये बातें दम भर में ग़ायब हो गईं । फिर सब ओर अन्धकार और सन्नाटा छा जाता है । केवल तारागण से परिपूर्ण रात में गाड़ी के पहियों का घर्घर शब्द

सुन पड़ता है। उसी शब्द के ताल के साथ मस्तिष्क के भीतर अनेक अनोखे स्वप्न रात भर नाचा करते हैं। रात के चार बजे मधुपुर स्टेशन पर गाड़ी बदलनी पड़ी। अन्धकार भी मिटने लगा। उसी प्रातःकाल के प्रकाश में गाड़ी की खिड़की के पास बैठ कर मैं बाहर की ओर देखने लगा।

गाड़ी बराबर आगे बढ़ी चली जा रही है। चारों ओर के मैदान में कहीं कहीं पर सूखी नदी की बालू की रेखा देख पड़ती है। नदी के गर्भ में बड़े बड़े काले पत्थर निकले हैं जो पृथिवी के कङ्काल के समान मालूम पड़ते हैं। बीच बीच में सिरों के समान पहाड़ खड़े हैं। दूर के नीले पहाड़ देख कर जान पड़ता है, मानों नीले मेघ आकाश से पृथिवी पर खेलने के लिए आये थे और वे यहाँ पकड़ कर बांध लिये गये हैं, वे आकाश में उड़ जाना चाहते हैं, परन्तु बंधे रहने कारण उड़ नहीं सकते। आकाश में उनके सजातीय मेघ आते हैं और उनसे मिल कर, उनका आलिङ्गन कर, चले जाते हैं। यह देखो, पत्थर के समान काला, सिर पर बालों की चोटी बांधे, हाथ में लाठी लिये एक मनुष्य खड़ा है। दो भैंसों के कन्धों पर हल रक्खा हुआ है। अभी खेत का जोता जाना प्रारम्भ नहीं हुआ है। भैंसे रेलगाड़ी की ओर टकटकी लगाये खड़े हैं। बीच बीच की भूमि घीकुआर से घेरी गई है। वह स्वच्छ सुशोभित हो रही है। बीच में पक्का कुआँ है। उसके चारों ओर सूखी जगह देख पड़ती है। पतली लम्बी और सूखी घास बूढ़ों के पके हुए बालों की तरह देख पड़ती है। छोटे छोटे पत्र-हीन गुल्म सूख कर काले पड़ गये हैं। दूर दूर पर ताड़

के पेड़ छोटा सिर लिये एक लंबे पैर से खड़े हैं। बीच बीच में पीपल और आम के वृक्ष भी देख पड़ते हैं। सूखे खेत में एक पुरानी झोंपड़ी की, छप्पर से रहित, टूटी दीवार खड़ी हुई अपनी छाया की ओर देख रही है। पास ही एक जला हुआ बड़े पेड़ का ठूँठ है।

मैं प्रातःकाल छः बजने के समय गिरिडीह स्टेशन पर पहुँचा। आगे रेलगाड़ी नहीं है। यहाँ से डाकगाड़ी पर जाना होगा। डाक-गाड़ी को मनुष्य घसीट कर लेजाते हैं। तो क्या इसे गाड़ी कहना उचित है? इसमें चार पहिये हैं और उस पर एक छोटा पिंजड़ा सा रक्खा हुआ है।

सबसे पहले गिरिडीह के डाक-बँगले में जाकर मैं स्नान-भोजन आदि से निवृत्त हुआ। डाक-बँगले के चारों ओर, जहाँ तक नज़र गई, घास का कहीं नाम भी न देख पड़ा। बीच बीच में कुछ पेड़ खड़े हैं। चारों ओर जैसे रङ्गीन मिट्टी की लहरें उठ रही हैं। एक दुबला-पतला बीमार सा टट्टू पेड़ के नीचे बँधा हुआ है। वह चारों ओर देखता है परन्तु उसे खाने को कोई चीज़ नहीं देख पड़ती। अब वह बेचारा करे तो क्या करे, कोई काम तो है ही नहीं; बेचारा पेड़ के ठूँठ में अपना शरीर घिस रहा है। वहीं एक वृक्ष के नीचे लंबी रस्सी में एक बकरा बँधा है। वह बड़ी खोज से कहीं हरी हरी एक आध घास पा जाता है और उसे प्रसन्नता-पूर्वक चरता है। मैं यहाँ से आगे बढ़ा। पहाड़ी राह है। आगे-पीछे, जिधर देखो उधर, बड़ी दूर तक देख पड़ता है। सूखे, निर्जन और विस्तृत मैदान में साँप के समान टेढ़ा मेढ़ा छायाहीन लम्बा मार्ग मानों धूप में सोया हुआ है। कभी गाड़ी बड़े कष्टों से

खींच खाँच कर, ठेल ठाल कर, चढ़ाई के रास्ते पर चढ़ाई जाती है और कभी ढालू रास्ते पर बड़े वेग से गड़ गड़ करती उतर जाती है। इस प्रकार धीरे धीरे आगे जाने पर आस पास पहाड़ देख पड़ने लगे। लम्बे लम्बे सीधे साखू के पेड़ तथा कटे वृक्षों के खुत्थे भी नज़र आते थे। बड़े बड़े लम्बे पत्र-हीन वृक्षों से पहाड़ के सब अंश ढके हुए हैं। उपवासी वृक्ष शुष्क जीर्ण और अस्थिमय हाथ आकाश की ओर उठाये खड़े हैं। इन पहाड़ों को देखने से मालूम होता है कि ये मानों हज़ारों तीरों से विंधे हुए हैं; मानों ये भीष्म की शरशय्या हैं। इसी समय आकाश मेघों से भर गया और धीरे धीरे पानी पड़ने लगा। कुली गाड़ी खींचते खींचते बीच में बड़े ज़ोर से चिल्ला उठते हैं। बीच बीच में मार्ग के पत्थरों से ठोकर खा कर गाड़ी ठहर जाती है। बीच में एक जगह मार्ग का अन्त देख पड़ा। आगे रेती और उसके बीच में एक नदी की क्षीण रेखा देख पड़ी। नदी का नाम पूछने पर कुलियों ने कहा, यह 'बड़ेकर' नदी है। खींच खांच कर गाड़ी नदी के पार पहुँचाई गई। फिर हम लोग रास्ते पर पहुँचे। रास्ते के दोनों ओर गढ़ों में पानी भरा हुआ है। उसमें चार पांच भैंसे एक दूसरे के शरीर पर सिर रक्खे हुए बैठे हैं। उनका आधा शरीर जल में डूबा है। वे बड़े आलस्य से कभी कभी हम लोगों की ओर नज़र उठा कर देख लेते हैं।

उस समय सन्ध्या हो गई थी। हम लोग गाड़ी से उतर कर पैदल चले। पास ही एक पहाड़ था, उसीके बीच से ऊँचा-नीचा मार्ग गया है। जिधर देखो उधर ही शून्य है, न मनुष्य हैं, न गाँव हैं, न अन्न के खेत हैं, और न जोती-बोई धरती ही है। चारों ओर

ऊँची-नीची पृथिवी समुद्र के समान निःस्तब्ध और निःशब्द पड़ी है। सन्ध्या के सुनहरे अन्धकार की छाया दिशाओं में चारों ओर व्याप्त हो गई है। कहीं मनुष्य तथा जीव-जन्तु का पता नहीं है; तथापि मालूम होता है कि किसी विराट् पुरुष के सोने के लिए इस शय्या की तैयारी की जा रही है। कोई जैसे पहरेदार की तरह मुख पर उँगली रक्खे चुप रहने का इशारा करता हुआ खड़ा है, इसी कारण भय से सब की साँस भी बन्द है। दूर से एक पथिक की छाया देख पड़ी। वह घोड़े पर सामान लादे हुए था। हम लोगों के पास ही से वह धीरे धीरे चला गया।

जाग कर, सोकर, करवटें बदल कर, किसी तरह मैंने रात बिताई। प्रातःकाल उठने पर देखा कि बाईं ओर बड़ा सघन वन है। हर एक वृक्ष से लताएँ लिपटी हैं और भूमि गुल्मों से ढकी हुई है। वन के ऊपर दूर पर के पहाड़ का नीला शिखर देख पड़ता है। बड़े बड़े पत्थर हैं। दो पत्थरों के बीच से पेड़ निकले हैं। वृक्षों की भूखी जड़ें लम्बी लम्बी होकर चारों ओर से बाहर निकल पड़ी हैं। पत्थरों को फाड़ कर अपनी दृढ़ मुट्ठी से जैसे वे अपने खाने की चीज़ पकड़ना चाहती हैं। थोड़ी ही देर में अकस्मात् वह बाईं ओर का वन न जानें कहाँ चला गया। बड़ी दूर तक मैदान ही मैदान देख पड़ा। उसमें दूर पर पशु चर रहे हैं। वे दूर होने के कारण बकरों के समान छोटे छोटे देख पड़ते हैं। बैलों या भैंसों के कंधे पर हल रक्खे, उनकी पूँछ उमेठते हुए, किसान खेत जोत रहे हैं। जोते हुए खेत बाईं ओर के पहाड़ पर सीढ़ियों की तरह, तह की तह, देख पड़ते हैं।

तीन बजने के समय हम हज़ारी-बाग़ के डाक-बँगले में पहुँचे। लम्बे चौड़े मैदान में हज़ारी-बाग़ शहर बहुत ही सुन्दर और साफ़-सुथरा देख पड़ता है। इसमें शहर का भाव विशेष नहीं देख पड़ता। छोटी छोटी गलियाँ, कूड़ा-कर्कट, नालियाँ, भीड़, शोर-गुल गाड़ी-घोड़ा, धूल-कीचड़, मक्खी-मच्छड़ आदि की अधिकता यहाँ नहीं है। मैदान, पहाड़ और वृक्षों के बीच में यह शहर बसा है।

एक दिन बीत गया। इस समय दोपहर है। डाक-बँगले के सामने कुरसी पर अकेले चुपचाप बैठा हूँ। आकाश स्वच्छ नीलवर्ण है। दो छोटे छोटे मेघ सफ़ेद 'पाल' के समान उड़ते चले जा रहे हैं। धीरे धीरे हवा चल रही है। एक प्रकार की मीठी मीठी गन्ध आ रही है, बरामदे की छत पर एक गिलहरी है। दो गलगलियाँ बरामदे में आकर चकित भाव से इधर उधर देखती, पूँछ हिलाती और इधर उधर फुदकती हैं। पास के रास्ते से बैल, भैंसे आदि जा रहे हैं। उनके गले के घण्टे का शब्द सुनाई पड़ रहा है। कोई छाता लगाये, कोई कंधे पर गठरी रक्खे, कोई दो-एक पशुओं को हाँकते और कोई टट्टू पर चढ़े उस मार्ग से धीरे धीरे मज़े में जा रहे हैं। कोलाहल नहीं है। घबराहट नहीं है। किसी के चेहरे पर चिन्ता का चिह्न नहीं है। देखने से मालूम होता है कि यहाँ के मनुष्यों का जीवन एंजिन के समान बड़े वेग से अथवा बड़े बोझ से दबी हुई बैलगाड़ी के पहिये के समान आर्तनाद करता हुआ नहीं व्यतीत होता। जिस प्रकार वृक्षों की छाया में शीतल प्रवाह धीरे धीरे कल कल करता हुआ बहता है उसी प्रकार यहाँ के मनुष्यों का जीवन भी शान्त है। सामने ही वह कचहरी है। पर

यहाँ की कचहरी की भी वैसी कठोर मूर्त्ति नहीं है । जिस समय अदालत के भीतर दो वकील परस्पर बहस करते हैं उस समय बाहर पीपल के पेड़ पर दो पपीहे आपस में उत्तर-प्रत्युत्तर कर रहे हैं । विचार-प्रार्थी लोग आम की छाया में बैठ कर 'हाहा—हाहा' हँस रहे हैं । उसे मैं यहीं से सुन रहा हूँ । बीच बीच में कचहरी में दोपहर को हर घण्टे पर घण्टा बजता है । चारों ओर जहाँ जीवन की मृदु-मन्द-गति है वहाँ इस घण्टे का शब्द सुनने से जान पड़ता है कि शिथिलता के प्रवाह में समय बह नहीं गया । समय बीच में खड़ा होकर प्रत्येक घण्टे के अन्त में लौह-कण्ठ से कहता है—और कोई जागे चाहे न जागे, मैं जाग रहा हूँ ! परन्तु लेखक की दशा ठीक वैसी नहीं है । मेरी आँखों में नींद आ रही है ।



सरोजिनी की यात्रा

[अपूर्ण विवरण]

(१)

आज जेठ की एकादशी तिथि और शुक्रवार है । अँगरेज़ी तारीख़ २३वीं मई, सन् १८८४ है । आज शुभ मुहूर्त्त में सरोजिनी नाम का भाप से चलनेवाला जहाज़ अपनी सङ्गिनी दो लोहे की नावों को लेकर बरीसाल को, अपने काम पर जाने के लिए, प्रस्थान करेगा । जानेवालों की भीड़ बढ़ गई । हम तीन आदमियों के जाने की बात थी । हम तीनों ही सयाने मर्द हैं । हम लोगों का सब सामान बँधा-बँधाया तैयार है । हम उदास मुख लिये बड़ी ही दिल्लगीबाज़

अपनी बड़ी भौजाई से विदा होने का उद्योग कर रहे थे, उसी समय मालूम हुआ कि वे भी अपने बाल-बच्चों के साथ हमारे साथ चलेंगी। उन्होंने किसी के मुँह से सुना है कि जिस रास्ते से हम लोग जा रहे हैं उसी मार्ग से बहुत लोग बरीसाल जाने के लिए कह कर फिर वहाँ नहीं गये। हम लोग भी वैसे ही धोखा न दें, इसी सन्देह से अपने दाहने हाथ की पाँचों उँगलियों के नखों को निहारती हुई वे बड़ी देर तक सोच-विचार करती रहीं। अन्त को आठ बजने के समय नखों से जितने विचारों और युक्तियों का संग्रह संभव था उतना सब संग्रह करके वे हम लोगों के साथ गाड़ी पर बैठ गईं।

प्रातःकाल के समय कलकत्ते के मार्ग कुछ विशेष सुन्दर नहीं होते; खास कर चितपुर रोड का दृश्य तो बिलकुल दर्शनीय नहीं होता। प्रातःकाल के सूर्य की किरणें छकड़ा-गाड़ियों के अस्तबल पर और बिल्लौरी झाड़वाले मुसलमानों की दूकानों पर प्रतिफलित होने लगीं। गैस-लैम्पों पर सूर्य की किरणें इस प्रकार चकमक कर रही हैं कि उधर देखते नहीं बनता। मालूम पड़ता है कि रात्रि नक्षत्रों के प्रकाश से तृप्त नहीं हुई, इसी से प्रातःकाल लाखों योजन दूर रह कर भी सूर्य के प्रकाश से चकमक फैला कर वह महत्व प्राप्त करना चाहती है। ट्रामगाड़ी सीटी बजाती जा रही है। परन्तु अभी तक अधिक मुसाफ़िर नहीं आये हैं। म्युनिसिपैलिटी की गाड़ियाँ कलकत्ते का कूड़ा-कर्कट लेकर धीरे धीरे जा रही हैं। फुटपाथ के पास किराये की गाड़ियाँ खड़ी हुई सवारियों की राह देख रही हैं। उसी अवसर पर घोड़े के चमड़े से

मढ़ा हुआ, चार पैर वाला, हड्डियों का ढाँचा (दुबला पतला घोड़ा) नीचे गर्दन करके बहुत ही सूखी घास को अन्यमनस्क भाव से खा रहा है। उसका यह पारमार्थिक भाव देखने से मालूम होता है कि संसार की सभी उत्तम वस्तुओं से इस सूखी घास की तुलना करके उसने दोनों की सारवत्ता और सरसता में कुछ अन्तर नहीं देख पाया। दक्षिण की ओर मुसल्मानों की दूकानों में खाल खींचे हुए बकरों के अंग-प्रत्यंग रस्सियों में बँधे लटक रहे हैं। कुछ मांस के टुकड़े लोहे की सलाख में आग पर पकाये जा रहे हैं। कहीं बड़े बड़े, लाल रंग के, सिर मुँड़े दाढ़ी वाले अपने लम्बे लम्बे हाथों से बड़ी बड़ी रोटियाँ सेंक रहे हैं। कबाब की दूकान के पास ही शीशा गलाने और ढालने की दूकानें हैं: वहाँ कुछ रात रहे से ही भट्ठी में आग जला दी गई है। कोई टट्टर खोल कर हाथ-मुँह धो रहा है, कोई दूकान के सामने झाड़ू दे रहा है और कोई बुड्ढा—जिसकी दाढ़ी खिज़ाब से लाल होगई है—आँखों पर चश्मा चढ़ाये कोई फ़ारसी की किताब पढ़ रहा है। सामने मसजिद है। मसजिद की सीढ़ी पर एक भिक्षुक हाथ फैलाये खड़ा है।

गङ्गा के किनारे हम कोयला घाट पर पहुँचे। सामने से छाई हुई बड़ी बड़ी नावें, पुराने समय के दैत्यों के पैर की माप से बने हुए जूतों के समान, जान पड़ती हैं। मालूम होता है कि आज उनमें किसी प्रकार प्राण आ गये हैं और वे उन अनुपस्थित चरणों का स्मरण कर शीघ्र चलने के समय की प्रतीक्षा में चंचल हो रही हैं। यही उनका भाव जान पड़ता है कि एक बार चलने पावें तो बस ले उड़ें। वे ऊपर उठती हैं और किनारे की ओर देखती हैं

कि कोई आता है कि नहीं; फिर नीचे चली जाती हैं। वे बड़े आग्रह से अधीर होकर जल की ओर चली जाती हैं और फिर न मालूम क्या समझ कर अपने को रोक कर किनारे की ओर लौट आती हैं; गाड़ी से ज़मीन पर पैर रखते ही झुण्ड के झुण्ड मल्लाह आकर हम पर टूट पड़े। एक कहता है, हमारी नाव में चलिए, दूसरा कहता है, हमारी नाव में। इस प्रकार माँझियों की लहर में हम लोगों की शरीर-नौका कभी दाहने कभी बायें, और कभी बीच ही में, चक्कर में पड़ कर, घूमने लगी। अन्त में अवस्था के प्रवाह से, पूर्व जन्म के किसी विशेष पुण्य के फल से, हम एक नाव में जाकर बैठ गये। पाल लगा कर नाव खोल दी गई। आज गङ्गा में कुछ अधिक लहरें हैं; हवा भी है। इस समय 'ज्वार' है। छोटी छोटी नावें इस समय पाल खोल कर बड़े वेग से जा रही हैं। इसी समय एक बड़ा स्टीमर, लोहे की दो नावों को लिये, छोटी छोटी नावों को तिरस्कार की दृष्टि से देखता हुआ, अपनी लोहे की नाक—आकाश की ओर उठा कर—हप् हप् शब्द करता हुआ हम लोगों की ओर अग्रसर हुआ। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि यह हमारा ही जहाज़ है। मैंने कहा—बस, बस, ठहरो, ठहरो। माँझी ने कहा,—"सरकार, डरने की कोई बात नहीं है। ऐसे ऐसे जहाज़ों पर कई बार हुज़ूर लोगों को चढ़ा चुके हैं।" माँझी ने जहाज़ के पास नाव खड़ी कर दी। जहाज़ से सीढ़ी नीचे लटकाई गई। पहले बच्चों को जहाज़ पर चढ़ाया, तदनन्तर भाभी ने अपने स्थूल चरण-कमल जब जहाज़ पर रक्खे तब हम भी भ्रमर के समान उनके पीछे पीछे जहाज़ पर चढ़ गये।

(२)

वायु और प्रवाह दोनों ही प्रतिकूल थे; परन्तु इससे हमारे इस नये गजराज को किसी कठिनता का सामना नहीं करना पड़ा। यह अपनी सूँड़ को ऊपर उठा कर गर्जन करता हुआ गजेन्द्र-गमन की उपेक्षा करके चालीस घोड़े के वेग से आगे बढ़ा। हम छः आदमी और जहाज़ के एक बूढ़े मालिक, ये सात आदमी जहाज़ के कमरे के सामने थोड़ी सी खुली जगह में कुरसी पर बैठ गये। हमारे सिर के ऊपर केवल एक छत थी। सामने से, बड़े ज़ोर से, कानों के पास साँय साँय करती हुई हवा चल रही थी। उस हवा ने हम लोगों के कुरते में घुस कर उसे फुला दिया और वह फर् फर् शब्द करने लगी। हमारी भाभी के साथ तो हवा ने बड़ी ही दिल्लगी की। उसने भाभी के आजानु-लम्बित, परन्तु बँधे हुए, केशों को विद्रोही बना दिया। मालूम होता है, वे बाल साँपों के वंशज थे, इसी कारण विद्रोही होकर—आपस में विरोध कर—पूजनीय भाभी की नाक तथा मुँह में घुसने के लिए प्रयत्न करने लगे, और कुछ बाल वहीं सिर पर ही नाचने-कूदने लगे। उस समय मालूम होता था कि भाभी के सिर पर नाग-लोक का महोत्सव हो रहा है। परन्तु इस विद्रोह में वेणी नामक अजगर साँप ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया। वह दृढ़ बँधा हुआ था, हज़ारों बाणों से बिंधा हुआ था, अतएव वह गोलाकार गुड़री मारे बैठा हुआ था। अन्त में कन्धे पर सिर नवा कर भैया सोने लगे; बालों की दुष्टता भूल कर भाभी भी कुरसी पर ही सो गईं।

जहाज़ बराबर चला जा रहा है। लहरें चारों ओर से उचक

कर ऊपर चढ़ना चाहती हैं। उनमें से कोई कोई सबसे अलग होकर, सफ़ेद फेन का फन फैला कर, एकाएक जहाज़ के डेक के ऊपर जैसे साँप की तरह चोट मारने आती हैं—गरजती हैं, और पीछे के साथियों को सिर ऊँचा करके पुकारती हैं। और, फिर घमण्ड से फूल फूल कर लौट जाती हैं। सिर के ऊपर सूर्य की किरणें उज्वल आँखों के समान चमकती हैं। वे लहरें झपट कर नावों को पकड़ती हैं; और उनमें क्या है, यह देखने के लिए ऊपर उठती हैं। अपनी अभिलाषा तृप्त करके, नाव को झोंका देकर, फिर वे न जाने कहाँ चली जाती हैं। आफ़िस की छोटी छोटी पनसुइयाँ (छोटी नावें) अपना पाल उड़ाती—और अपनी मीठी चाल के आनन्द को जैसे आप ही भोगती हुई—चली जा रही हैं। वे मस्तूल के किरीट धारण करनेवाले बड़े जहाज़ों की गम्भीरता को कुछ भी चीज़ नहीं समझतीं, स्टीमरों के गर्जन को भी कुछ नहीं समझतीं। वे बड़े बड़े जहाज़ों के सामने से 'पाल' डुलाती हँसती रंग-तमाशा करती निकल जाती हैं। जहाज़ भी इससे अपना कुछ अपमान नहीं समझते। किन्तु गधा-बोटों का बर्ताव और ही है। उनके हटने में तीन घण्टे लगते हैं, उनका आकार भी मोटी बुद्धि के समान बिलकुल भद्दा है। वे स्वयं हट नहीं सकते, अतएव जहाज़ ही को हटना पड़ता है। जब वे जहाज़ के पास आ जाते हैं तब उनकी यह शेखी देखी नहीं जाती।

एक दिन सुना गया कि हम लोगों के जहाज़ का कप्तान नहीं है: जहाज़ चलने के पहले ही वह कहीं ग़ायब हो गया है। यह सुनते ही हमारी भाभी की सुध-बुध जाती रही। लङ्गर डाल

कर जहाज़ को रोक रखना ही उनकी विवेचना में सबसे अच्छा उपाय समझ पड़ा। भैया ने कहा—कप्तान नहीं है तो इससे हानि क्या है, कप्तान के नीचे काम करनेवाले भी कप्तान से किसी अंश में कम नहीं हैं। जहाज़ के मालिक भी एक कप्तान ही हैं। और लोग चुप थे। पर उन सबका हृदय प्रसन्न न था। मैंने देखा कि बिना कप्तान के भी सचमुच जहाज़ चल रहा है। कप्तान के न रहने से कोई भी गड़बड़ी नहीं देख पड़ती। अकस्मात् जहाज़ के चलने का शब्द बन्द होगया। कल नहीं चलती। उस समय "लङ्गर डालो, लङ्गर डालो" का शब्द चारों ओर से सुन पड़ने लगा। लङ्गर भी डाल दिया गया। सुना कि मशीन का कहीं जोड़ खुल गया है; उसके दुरुस्त होने पर जहाज़ आगे चलेगा। मरम्मत करनेवाले अपना काम करने में लग गये। इस समय साढ़े दस बजे हैं। डेढ़ बजे के पहले मरम्मत हो जाने की सम्भावना नहीं है।

बैठे बैठे गङ्गा की शोभा देखने लगा। शान्तिपुर के दक्षिण ओर से शुरू करके गङ्गा-तट की जैसी शोभा देख पड़ती है वैसी शोभा और कहीं नहीं देख पड़ती। वृक्ष-श्रेणियाँ, छाया और झोपड़ियाँ गङ्गा के दोनों तट पर लगातार चली गई हैं; कहीं भी उनका सिलसिला नहीं टूटा। उन्हें देख कर बड़ा आनन्द होता है। कहीं कहीं हरी घास से ढँकी हुई गङ्गा-तट की भूमि जैसे गङ्गा की गोद में लेट रही है। कहीं कहीं लता-मण्डित वृक्षों की क़तारें गङ्गा के जल तक झुकी हुई हैं। जल पर उनकी छाया निरन्तर डोल रही है। कतिपय सूर्य की किरणें उस छाया में झिलमिला रही हैं

और कुछ किरणें वृक्ष-श्रेणी के हिलते हुए हरे नवीन पत्तों पर चमक रही हैं। वहीं एक छोटी नाव एक वृक्ष की जड़ से बँधी हुई है। वह वहीं छाया के नीचे जल के कलकल शब्द में हिल-कोरें खाकर बड़े मजे में सो रही है। उसी की बगल में वृक्षों की घनी छाया में होकर टेढ़ी मेढ़ी एक पगडण्डी जल के किनारे तक आई है। इसी मार्ग से गाँव की औरतें घड़ा बगल में दबा कर पानी भरने के लिए आ रही हैं। लड़के कीचड़ पर लोट पोट कर नदी में कूद जाते और तैरते हैं। पुराने टूटे घाटों की कैसी विलक्षण शोभा है। मनुष्यों ने इन घाटों को बनाया है, यह बात जैसे भूल जाती है। ये भी वृक्ष-श्रेणियों के समान गङ्गा-तीर की अपनी सम्पत्ति हैं। इनकी बड़ी बड़ी दरारों में से पीपल के पेड़ उगे हैं, टूटी सीढ़ियों में ईंटों के बीच से घास निकल आई है। बहुत दिनों से, सैकड़ों वर्षों से, इन पर होकर वर्षा का जल बहने के कारण ऊपर काई जम गई है, और इसीसे उनका रङ्ग चारों ओर की सब्ज़ी में बिलकुल मिल गया है। मनुष्य का काम समाप्त होने पर प्रकृति ने अपने हाथ से उसका संशोधन कर दिया है; कूची लेकर इधर उधर अपना रंग लगा दिया है। उसने अत्यन्त कठिन गर्व से पूर्ण उज्ज्वल सजावट को नष्ट करके टूटा फूटा विशृंखल माधुर्य स्थापित कर दिया है। गाँव के जो लड़के या लड़कियाँ नहाने के लिए अथवा जल लेने के लिए आते हैं उन सबके साथ इनका जैसे कोई सम्बन्ध है। उनमें कोई तो इनकी नातिन हैं और कोई मा-मौसी हैं। उन बच्चों के दादा और दादी जब छोटे से थे तब वे भी इन्हीं घाटों पर आकर बैठते और खेलते थे—वर्षा के दिनों में

बिछल बिछल कर गिर पड़ते थे। प्रसिद्ध गायक अन्धा श्रीनिवास भी सन्ध्या के समय इन्हीं में से किसी घाट पर आकर बैठता और अपनी सरंगी बजा कर गौरी रागिनी में "गेलो गेलो दिन" यह गीत गाता था। उसके आस पास गाँव के दस पाँच आदमी भी बैठ कर गाना सुनते थे। आज ये बातें किसी को याद नहीं हैं। गङ्गा के किनारे के टूटे हुए मन्दिरों का भी जैसे एक विशेष माहात्म्य है। आज उन मन्दिरों में देवता की मूर्त्तियाँ नहीं हैं। किन्तु वे स्वयं ही जटाजूट-धारी प्राचीन ऋषि के समान पवित्र और भक्ति के पात्र बन गये हैं। बीच बीच में गंगा के तीर पर गाँव हैं। उनके किनारे क़तार की क़तार मछुओं की नावें बँधी हैं। कुछ पानी में हैं, कुछ सूखे में हैं, और कुछ किनारे पर पट पड़ी हुई हैं और उनकी मरम्मत हो रही है। फूस के छाये कच्चे घर कुछ घने—पास ही पास—बने हैं। किसी किसी के आस-पास टेढ़ी मेढ़ी दीवारों से हाता सा घिरा हुआ है। दो-चार पशु चर रहे हैं। गाँव के दो-एक दुर्बल कुत्ते बेकार की तरह गंगा के किनारे इधर-उधर घूम रहे हैं। एक नङ्ग धड़ङ्ग बालक मुँह में उँगलियाँ डाले बैंगन के खेत के सामने खड़ा हुआ चुपचाप विस्मय के साथ हम लोगों के जहाज़ की ओर देख रहा है। मछुओं के लड़के छोटे छोटे जाल लिये छोटी छोटी मछलियाँ पकड़ रहे हैं। सामने ही तीर पर एक बड़ का पेड़ है, उसकी जड़ की मिट्टी नदी के प्रवाह से बह गई है। अतएव उन जड़ों के बीच में एक रहने योग्य एकान्त स्थान बन गया है। एक वृद्धा दो चार हाँड़ी और एक चटाई लिये उसीके भीतर रहती है।

दूसरी ओर तीर पर रेती के ऊपर बड़ी दूर तक काश का वन है। शरद् ऋतु में जब वह वन फूलता है तब वायु के प्रत्येक झकोरे में यहाँ जैसे हँसी के सागर में लहरें उठती हैं। चाहे जिस कारण हो, गङ्गा-तीर के ईंटों के पजावे भी देखने में मुझे अच्छे लगते हैं। उनके आस पास वृक्ष-पंक्ति नहीं है, वहाँ की आस-पास की ज़मीन जली हुई और ऊबड़खाबड़ है, इधर उधर ईंटें बिखरी पड़ी हैं, कितने ही खंजर (झाँवां) पड़े हुए हैं, आसपास की मिट्टी काट कर निकाल ली गई है। ऐसे कठोर ऊसर स्थान में अभागों की तरह पजावे कैसे खड़े हैं! वृक्षों की कतारों में से शिव के द्वादश मन्दिर देख पड़ते हैं। सामने ही घाट है। वहाँ नौबतख़ाने पर से नौबत बज रही है। उसके पास ही पार उतरने का घाट है। कच्चा घाट है, ताड़ की लकड़ियों से वह बाँधा गया है। उसके दक्षिण की ओर कुँभारों के घर हैं। छप्परों पर कुम्हड़े फले हुए हैं। एक अधेड़ स्त्री झोंपड़ी की दीवार पर गोबर लीप रही है। आँगन सुन्दर स्वच्छ है। उसी आँगन में एक ओर टट्टर पर लौकी की लता फैली है और दूसरी ओर तुलसी का वृक्ष है। सन्ध्या के समय तरङ्ग-शून्य गंगा में नाव पर चढ़ कर जिसने गङ्गा के पश्चिम तट की शोभा नहीं देखी उसने वङ्गाल की कुछ भी सुन्दरता नहीं देखी। इस पवित्र शान्तिमय और सुन्दर दृश्य का यथार्थ वर्णन करना असम्भव है। सुनहरे और मलिन वर्ण के सन्ध्या के प्रकाश में बड़े बड़े नारियल के पेड़, मन्दिरों के शिखर, आकाश-पट में अंकित से बड़े बड़े वृक्ष, निश्चल जल में सन्ध्या के प्रकाश का प्रतिबिम्ब, सुमधुर विश्राम, निःस्तब्धता और अगाध शान्ति—ये सब मिलकर नन्दन वन की झलक

के समान, छाया-पथ के उस प्रान्त वाले दूरवर्त्ती शान्ति-निकेतन के एक चित्र के समान, पश्चिम दिशा के छोर की गङ्गा की धारा में अंकित से देख पड़ते हैं। धीरे धीरे सन्ध्या का प्रकाश जाता रहा। वन में इधर उधर एक-आध दीपक जल उठे। इसी समय सहसा दक्षिण दिशा से हवा चलने लगी—वृक्षों के पत्ते झर झर करके हिलने लगे। अन्धकार में बड़े वेग से नदी बह रही थी, तरंगों के आघात से दोनों तीर पर छल छल शब्द हो रहा था—अब कुछ भी अच्छी तरह देख-सुन नहीं पड़ता,—केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ रहा है और जहाँ तहाँ जुगनू चमक रहे हैं। अन्धकार में जुगनू चमकते हैं और फिर उनका प्रकाश बुझ जाता है। और भी रात बीत गई। धीरे धीरे कृष्णपक्ष की सप्तमी की रात्रि का चन्द्रमा अन्धकार को दूर करता हुआ पीपल के पेड़ के ऊपर से होकर आकाश में दिखाई पड़ा। नीचे वन का घोर अन्धकार, और ऊपर क्षीण चन्द्रमा का प्रकाश था। थोड़ा सा प्रकाश अन्धकारमयी गङ्गा के बीच में एक जगह पड़ कर लहरों से चूर चूर सा हो जाता है। उस पार की अस्पष्ट वृक्ष-माला पर और थोड़ा सा प्रकाश पड़ा। उस उतने प्रकाश में कुछ भी साफ़ साफ़ नहीं देख पड़ता। वह प्रकाश केवल उस पार की दूरता और अस्फुटता को रहस्यमय बना देता है। इस पार निद्रा का राज्य है और उस पार स्वप्न का देश सा जान पड़ता है।

ये सब गङ्गा के सुन्दर चित्र जो मेरे मन में अङ्कित हो रहे हैं, सो सब इसी यात्रा के फल नहीं हैं। ये सब कितने ही दिनों के कितने चित्र मन में अङ्कित हैं। ये बड़े ही सुख के चित्र हैं। आज

अश्रुजल के बिल्लौरी चौखटे में इनको मैंने जैसे बँधा लिया है। ऐसी शोभा इस जन्म में और कहीं देखने को न मिलेगी।

मशीन की मरम्मत हो चुकी। यात्री भी स्नान-भोजन से निपट लिये। बड़ा कोलाहल करके लङ्गर उठाया गया। जहाज़ भी चल पड़ा। बाईं ओर मोची-खोला के नवाब का भारी मकान और दाहनी ओर शिवपुर का बटानिकल गार्डेन देख पड़ा। ज्यों ज्यों हम लोगों का जहाज़ दक्षिण की ओर आगे बढ़ने लगा त्यों त्यों गङ्गा की चौड़ाई भी बढ़ने लगी। दो या तीन बजने के समय हम लोगों ने फल खाये। तदनन्तर, सन्ध्या के समय कहाँ ठहरना होगा, इसी विचार में हम लोग लग गये। हम लोगों के दाहने-बायें से बहुत से जहाज़ झंडा उड़ाते आये और गये। उनकी गर्व-भरी चाल देखने से हम लोगों का उत्साह और भी बढ़ गया। यद्यपि हवा उलटी चल रही थी पर प्रवाह हमारे प्रतिकूल न था। हम लोगों के उत्साह के साथ साथ जहाज़ का वेग भी और अधिक बढ़ गया। जहाज़ हिलने लगा। दूर ही से हम लोग देखते थे कि बड़ी बड़ी लहरें मुँह फैलाये हम लोगों के सामने आ रही हैं। हम लोग बड़े आनन्द से उनकी प्रतीक्षा करते थे। वे बड़े ज़ोर से आकर जहाज़ से टकराती थीं। उनका प्रयत्न व्यर्थ हो जाता था। निष्फल क्रोध के कारण वे फेना उगलती गरजती हुई बड़े वेग से जहाज़ की बग़ल में टक्कर मारती थीं। हताश होने पर वे दो पग पीछे हट कर फिर आकर जहाज़ में टक्कर मारती थीं। हम सब लोग मिलकर यही देख रहे थे। हमने देखा कि एकाएक जहाज़ के मालिक उदास मुँह लिये घबराये हुए बड़े वेग से जहाज़ चलाने-

वालों के पास दौड़े जारहे हैं। इसी समय हल्ला उठा—रोको रोको, ठहरो ठहरो। गङ्गा की तरङ्गों से भी अधिक वेग से हम लोगों का हृदय धड़कने लगा। देखने पर मालूम हुआ कि सामने से लोहे का एक बड़ा सा पीपा बड़े वेग से हम लोगों के जहाज़ की ओर बहता आरहा है, और हम लोगों का जहाज़ भी बड़े वेग से उसकी ओर आगे बढ़ रहा है। किसी प्रकार इन दोनों की टक्कर बचाई नहीं जा सकती। हम लोग मन्त्र-मुग्ध के समान उसीको खड़े खड़े देखने लगे। वह भारी पीपा भैंसे के समान सिर उठाये आया और आकर उसने जहाज़ पर टक्कर मारी।

(३)

कहाँ हैं वे निरन्तर उठनेवाली जल की लहरें, और सैकड़ों-लाखों लहरों का दिन-रात का महोत्सव: कहाँ है वह घनी वनश्रेणी, आकाश की वह खुलासा नीली आभा, पृथिवी के नवयौवन-पूर्ण हृदय के उल्लास ऐसी अनन्त की ओर उठी हुई विचित्र वृक्ष-लहरियाँ; कहाँ हैं वे प्रकृति के हरे-भरे गोद में छिपे हुए बच्चे ऐसे छोटे छोटे गाँव,—ऊपर नित्य स्थिर आकाश और उसके नीचे सदा की चञ्चल नदी!—वह नित्य निःस्तब्धता के साथ कोलाहल का, सर्वत्र समता के साथ चिर-विचित्रता का, और निर्विकार के साथ सदा परिवर्तनशील का, निरन्तर प्रेम-मिलन कहाँ है! यहाँ तो सुरखी और ईंट का, धूल और नाक का, गाड़ी और घोड़े का परस्पर हठयोग देख पड़ रहा है। यहां चारों ओर दीवार के साथ दीवार का, दरवाज़े के साथ ज़ंजीर का, धन्नियों के साथ कड़ों का और कोट के साथ बटन का परस्पर जकड़े रहना ही दृष्टिगोचर होता है।

शायद पाठकों ने समझ लिया होगा कि अब तक जो लिखा गया था वह पानी के ऊपर रहकर लिखा गया था, पर इस समय स्थल का रहनेवाला मैं स्थल पर फिर पहुँच गया हूँ। इस समय वहाँ की बातें यहाँ, पहले की बातें पीछे, लिखी जाती हैं—अतएव इस समय जो कुछ लिखूँगा उसकी भूल-चूक के लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं हो सकता।

इस समय मध्याह्न है। मेरे सामने एक डेस्क है, पैर पोंछने के टाट पर एक मोटा सा काला कुत्ता सो रहा है, बरामदे में एक ज़ंजीर में बँधा हुआ बन्दर अपनी पूँछ खुजला रहा है। दीवार पर बैठे तीन कौए अकारण काँव काँव कर रहे हैं। बीच बीच में वे ऊपर से नीचे कूद आते हैं और बन्दर के पास पड़े हुए भात में से एक चोंच उठाकर उड़ जाते हैं। घर के कोने में एक पुराना हार्मोनियम रक्खा हुआ है। उसमें एक दो मूसे घुसकर खट खट कर रहे हैं। कलकत्ते के एक मकान के सूखे कठिन कमरे के भीतर बैठा हुआ मैं गङ्गा का आवाहन कर रहा हूँ। तप से क्षीण जह्नु ऋषि की पाकस्थली की अपेक्षा यहाँ अधिक स्थान है। मैं यह भी जानता हूँ कि इस प्रकृति-राज्य में कोई भी सङ्कुचित स्थान नहीं है। देखो, बीज बहुत छोटा होता है परन्तु उसमें बड़े बड़े वन छिपे रहते हैं और एक जीव में उसकी भावी वंश-परम्परा रहती है। मैं जो यह स्टीफ़न साहब की एक बोतल ब्लू-ब्लैक स्याही ख़रीद लाया हूँ उसके प्रत्येक बूँद में कितने ही पाठकों की निद्रा मादर-टिंचर के आकार में वर्तमान है। यह बोतल की स्याही यदि किसी अच्छे योग्य मनुष्य के हाथ में जाती तो उस समय मैं इसे देखकर सोचता कि

जिस प्रकार सृष्टि के पूर्ववर्ती अन्धकार में यह विचित्र प्रकाशमय जगत् छिपा हुआ था उसी प्रकार इस बोतल के अन्धकार में भी कितनी ही प्रकाशमयी नई सृष्टियाँ छिपी हुई हैं। एक बोतल स्याही देखने से तो इतनी बातें मन में उठती हैं। फिर स्टीफ़न साहब के स्याही के कारख़ाने के पास खड़े होकर सोचने से तो शायद दिमाग़ ही सही नहीं रह सकता। कितनी ही पुस्तक-पुस्तिकाएँ, कितने ही पम्फ़्लेट, कितने ही यश, कितने ही कलङ्क, कितने ही ज्ञान, कितने ही प्रलाप, कितने ही फाँसी के हुक्म, कितने ही युद्ध की घोषणाएँ और कितने ही प्रेमियों की प्रणय-वार्ताएँ इस काली स्याही के प्रवाह में प्रवाहित हो रही हैं। यह प्रवाह संसार को प्लावित करता हुआ बहता जाता है। मानों स्टीफ़न साहब का समूचा स्याही का कारख़ाना ही उलट पड़ा है—अब ब्लाटिंग पेपर की बात याद आती है।—अच्छा, अब इस प्रवाह को लौटाना चाहिए। आओ, अब गङ्गा के प्रवाह की ओर आओ।

सच्ची घटना और उपन्यास में भेद है। अभी इस बात का परिचय लीजिए। हम लोगों के जहाज़ को भारी पीपे का सामना करना पड़ा, तो भी वह डूबा नहीं। डूबते हुए मनुष्यों का उद्धार करने के लिए वीरता दिखाने की भी आवश्यकता नहीं हुई। प्रथम परिच्छेद में पानी में डूबकर छब्बीसवें परिच्छेद में कोई सूखे में बचकर निकला नहीं। जहाज़ के डूबने से भी हम नहीं डूबे, इसका मुझे आनन्द है, पर उसे लिखने में आनन्द नहीं आता। अवश्य ही पाठकों को निराश होना पड़ेगा। पर मैं क्या करूँ, मैं डूबा नहीं, इसमें मेरा दोष नहीं है। यह काम बिलकुल मेरे भाग्य

का है। अतएव मेरी यही प्रार्थना है कि मुझ पर कोई पाठक क्रोध न करें।

यह सच है कि मैं मरा नहीं, पर यमराज के भैंसे ने एक ठोकर मार ही दी। अतएव उस ठोकर की बात सदा स्मरण रहेगी। उस समय थोड़ी देर तक सभी लोग एक दूसरे का मुँह ताकते रहे— किसी के भी मुँह से एक शब्द तक नहीं निकला। सभी के मुँह पर वही एक भाव था, सब लोगों ने चूँ करना तक भी उचित नहीं समझा। मेरी भाभी एक बड़ी कुर्सी पर एक विलक्षण प्रकार से बैठी रहीं। उनके दोनों छोटे छोटे बच्चे दोनों ओर से आकर मुझसे लिपट गये। भैया थोड़ी देर तक अपनी बड़ी बड़ी मूँछों पर ताव देते रहे, पर वे भी कुछ सिद्धान्त स्थिर न कर सके। जहाज़ के मालिक बहुत ख़फ़ा होकर बोले—"सब दोष मल्लाह का है।" मल्लाह ने कहा—"नहीं हुज़ूर, इसमें पतवार वाले आदमी का दोष है।" उसने कहा—"नहीं साहब, मेरा दोष क्या है, सब पतवार का दोष है।" पर पतवार बेचारा क्या कहे, वह चुपचाप ज्यों का त्यों नीचा मुँह किये पानी में डूबा रहा। गङ्गा ने उसे आश्रय देकर उसकी लाज रक्खी।

यहीं जहाज़ का लङ्गर डाल दिया गया। देखते देखते यात्रियों का उत्साह भी कम होगया। प्रातःकाल यात्रियों के चेहरे पर जो भाव था, उनकी कल्पना में जो एञ्जिन को भी नीचा दिखाने-वाली गति और आवाज़ का चढ़ा सुर था वह सन्ध्या के समय न देख पड़ा। हम लोगों का उत्साह लङ्गर के साथ साथ सात हाथ जल के भीतर उतर गया। आनन्द की बात केवल यही एक

थी कि हम लोगों को भी इतनी दूर उतरना नहीं पड़ा। पर सहसा उसी की संभावना के सम्बन्ध में ख़याल पैदा हो आया। इस विषय में हम ज्यों ज्यों गहरा विचार करने लगे त्यों त्यों और भी हम लोगों के मन में गहरे जाने की संभावना उदय होने लगी। इसी समय सूर्यदेव भी अस्त हो गये। बरीसाल जाने के मार्ग की अपेक्षा वहाँ न जाने का मार्ग ही सीधा और समीप है—यही सोचते सोचते भैया जहाज़ की छत पर टहलने लगे। वहीं एक लपेटे हुए मोटे रस्से पर बैठ कर अँधेरे में मैं हँसी-मज़ाक़ का दीपक जलाने का प्रयत्न करने लगा, पर बरसात में सीली हुई दिया-सलाई की तरह वह हँसी-मज़ाक़ का मसाला बेकार सा हो गया। बहुत देर तक रगड़ने पर बीच बीच में थोड़ी थोड़ी चमक पैदा हो जाती थी। जब 'सरोजिनी' जहाज़ अपने यात्रियों के साथ गङ्गा-गर्भ में पङ्कमय विश्रामशय्या पर मुक्ति-लाभ कर रहा है तब हम समाचार-पत्रों के (Sad accident) के कालम में किसी पैराग्राफ़ की तीन चार पंक्तियों में कैसे निर्वाण-मुक्ति पा सकेंगे—यही बात बार बार हमारे हृदय में उठने लगी। इस संवाद को पढ़नेवाले अनायास ही, एक चम्मच गरम चाय के साथ, कैसे पी जायँगे—इसी बात की हम कल्पना करने लगे। बन्धुगण इस लेखक के विषय में कहेंगे—आह, इतना बड़ा भारी आदमी चला गया, इसके समान और दूसरे मनुष्य का होना कठिन है। और, लेखक की पूज्य भाभी के विषय में लोग कहेंगे कि उनमें बहुत से दोष भी थे और गुण भी। वह चाहे जैसी ही रही हों पर घर तो सँभाले थीं! इत्यादि इत्यादि। चक्की से जैसे सफ़ेद पीसा हुआ

मैदा निकलता है उसी प्रकार भाभी के दोनों ओठों से हँसी की छटा निकलने लगी।

आकाश में तारागण का प्रकाश हुआ और दक्षिण पवन चलने लगा। खलासी लोग नमाज़ भी पढ़ चुके। एक पागल खलासी अपना एकतारा लेकर बजाने और बड़े उत्साह से सिर हिला हिलाकर गाने लगा। छत पर, बिछौने पर, जिसने जहाँ जगह पाई वह वहीं लेट रहा। थोड़ा थोड़ा साँस लेने का और अधिक नाक का शब्द सुन पड़ने लगा। बातचीत बिलकुल बन्द थी। उस समय मालूम होता था कि एक बहुत बड़ा दुःस्वप्न-पक्षी हम लोगों पर पंख फैलाये हुए है और अण्डे के समान हम लोगों को से रहा है। मुझसे नहीं रहा गया। मैंने निश्चय किया कि "मधुरेण समापयेत्" होना चाहिए। यदि आज ही हम लोगों की जन्मपत्री समाप्त हो जाय, यदि यह जहाज़ वैतरणी नदी के उस पार ही जाकर ठहरे, तो यह सब होने के पहले एक बार ख़ूब बाजा बजा लेना चाहिए। यदि चित्रगुप्त की सभा में जाना ही है तो मुँह लटका कर अरसिक की तरह जाना उचित नहीं। और एक बात है। यदि वहाँ अन्धकार है तो फिर यहीं से अपने साथ और अन्धकार ले जाने की आवश्यकता ही क्या है। तब रानीगंज तक कोयला ढोकर ले जाने का परिश्रम क्यों उठाया जाता है? अच्छा बजाओ। इसी समय मेरे भाई के लड़के ने सितार छेड़ा, झन झन करके ईमन-कल्याण बजने लगा।

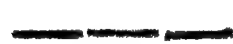
दूसरे दिन खोज करने पर मालूम हुआ कि जहाज़ की बहुत सी चीज़ों का नाश हो गया है। उन वस्तुओं के न रहने पर भी

जहाज़ चल रहा है; पर यात्रियों की आवश्यकता समझ कर नहीं, अपनी इच्छा के अनुसार ही चलता है। कलकत्ते से जहाज़ का ज़रूरी सामान ले आने के लिए आदमी भेजा गया है। अभी कुछ दिनों तक जहाज़ को यहीं रुकना पड़ेगा।

गंगा के बीच में बिना ठहरे उनकी सुन्दर शोभा का आनन्द वैसा नहीं मिल सकता। क्योंकि नदी की प्रधान सुन्दरता उसका प्रवाह है। जल की स्वाभाविक चञ्चलता, ज्वार-भाटे का आना-जाना, तरङ्गों का उठना और गिरना, जल में आकाश की छाया का सुन्दर दृश्य, इत्यादि बातों का आनन्द गंगा के बीच में बिना ठहरे नहीं मिल सकता। इसके सिवा जहाज़ का फुफकारना, अग्नि का ताप, खलासियों का शोर-गुल, मायावशी-भूत-दानव के समान चमकीली आँखोंवाले एंजिन का सनिःश्वास हुङ्कार और दोनों घूम रहे सहस्रबाहु पहियों का क्रोध के साथ फेना उगलना आदि बातें गंगा के प्रति एक भयानक अत्याचार के समान मालूम पड़ती हैं। और भी तो एक बात है, गंगा की सुन्दरता की उपेक्षा करके दौड़ दौड़ आगे निकल जाना उन्नीसवीं सदी के सभ्यों का काम हो सकता है, पर वह रसिक से नहीं सहा जा सकता। आफ़िस जाने के समय जैसे मुँह में भात भर लेना अन्न का अपमान है वैसे ही यह गंगा का अपमान है। यह मानों गंगा-यात्रा का एक संक्षिप्त-संस्करण है और महाभारत के सूचीपत्र को निगल जाना है।

हमारा जहाज़ गले में लोहे की ज़ंजीर पहने खड़ा हो रहा। नदी बड़े वेग से बहती जा रही है। कहीं तरंग-माला, कहीं शान्ति,

कहीं तंगी और कहीं चौड़ाई देख पड़ती है। कहीं जल ही जल है, किनारे की भूमि देख ही नहीं पड़ती। हम लोगों के सामने वह किनारा मेघों की एक काली रेखा के समान देख पड़ता है। चारों ओर मछुओं की नावें और पालवाली नावें हैं। बड़े बड़े जहाज़ प्राचीन पृथिवी के बृहत्काय जलजन्तुओं के समान रेंगते हुए आगे बढ़ रहे हैं। इस समय दिन ढल चला है। औरतें गंगा के जल में हाथ-पैर और शरीर धोने आ रही हैं। धूप भी कम होगई है। बाँस, खजूर, आम आदि के बागों के भीतर से कहीं कहीं गाँव देख पड़ते हैं। किनारे की भूमि पर एक बछड़ा गर्दन और पूँछ ऊँची करके एक बड़े स्टीमर के साथ दौड़ रहा है। बहुत से मनुष्य किनारे पर खड़े ताली पीट रहे हैं। वे जो चमड़ा पहन कर पृथिवी पर आये थे उसके सिवा और कुछ नहीं पहने थे। धीरे धीरे अन्धकार हो आया। किनारे की झोपड़ियों में दीपक जल उठे। सारे दिन की ख़ुमारी समाप्त कर हम लोगों ने निद्रा की शरण ली।



योरप की यात्रा

उस समय सूर्य अस्ताचल को जा रहे थे। जहाज़ की छत पर पतवार के पास खड़े होकर मैं भारतवर्ष के किनारे की ओर देखने लगा। समुद्र का जल हरा है, समुद्र के तीर की रेखा नीली है। आकाश में मेघ छाये हुए हैं। सन्ध्या रात्रि की ओर और जहाज़ समुद्र के मध्य की ओर धीरे धीरे आगे बढ़ रहे हैं। बाईं ओर बम्बई के अपोलो बन्दर की एक लंबी रेखा अभी तक देख पड़ती

है। देखने से मालूम होता है कि हमारे पिता-पितामह आदि की वृद्धा माता बहुत दूर तक समुद्र में भी व्याकुलता के साथ हाथ फैलाकर पुकार रही हैं कि रात के समय अपार समुद्र में अनिश्चित के उद्देश से कहाँ जा रहा है! अब भी लौट आ।

धीरे धीरे बम्बई बन्दर बहुत पीछे छूट गया। सन्ध्या-काल का मेघों से घिरा हुआ अन्धकार समुद्र की अनन्त शय्या पर लेट रहा। आकाश में तारागण न थे। कहीं कहीं बहुत दूर पर लाइट-हाउसों में प्रकाश चमक उठा। समुद्र के सिर की ओर वह काँपती हुई दीप-शिखा, समुद्र में बहे जा रहे अपने पुत्रों की ओर लगी हुई, भूमिमाता की आशङ्का से आकुल दृष्टि सी जान पड़ती थी।

उस समय हृदय के भीतर यह गीत प्रतिध्वनित होने लगा,— "साधेर तरणी आमार के दिलो तरंगे" (हमारी प्रिय नाव को किसने तरंगों में डाल दिया है?)

जहाज़ बम्बई बन्दर को नाँघ गया।

भासिलो तरी सन्ध्यावेला, भाविलाम ए जल-खेला,
मधुर वहिबे वायु भेसे जावो रंगे।

(सन्ध्या के समय हमारी नाव समुद्र में चली, हमने सोचा कि यह जलक्रीड़ा है। धीरे धीरे वायु चलेगा और आनन्द होगा।)

परन्तु इस सी-सिकनेस (समुद्री रोग) का किसने ख़याल किया था।

समुद्र का जल हरे से नीला हो गया और तरङ्गों ने जहाज़ के साथ टकरा कर भारी हलचल मचा दी। मैंने देखा कि वह समुद्र के लिए तो जलक्रीड़ा है, पर हम लोगों के लिए नहीं।

मैंने सोचा कि अब अपनी कोठरी में जाकर कंबल ओढ़ कर लेट जाना चाहिए। शीघ्र ही एक केबिन में गया और कन्धे पर का कम्बल एक बिछौने पर रखकर किवाड़े बन्द कर लिये। वहाँ घोर अन्धकार था। मैंने समझा कि लैम्प बुझाकर भैया अपने बिछौने पर सो गये हैं। अपना शारीरिक कष्ट सुना कर उनका हृदय-स्नेह उत्पन्न करने के लिए मैंने कहा—दादा, आप क्या सो गये? उसी समय एक अपरिचित और कर्कश शब्द से एक मनुष्य ने कहा—"हू इज़ देट!" मैंने कहा, अरे! यह तो भैया नहीं हैं; फिर बड़ी नम्रता से पश्चात्ताप प्रकट करके कहा—"महाशय! क्षमा कीजिए, मैं भूल कर यहां चला आया हूँ।" फिर उसी स्वर में उत्तर मिला—"आल राइट।" अपना कम्बल कन्धे पर रख कर धीरे धीरे मैं वहाँ से बाहर जाने लगा। परन्तु अँधेरे में दरवाज़े का पता नहीं लगा। मैं इधर उधर घूमने लगा और मेरे धक्के से बक्स, ट्रंक, लाठी, बिछौना, आदि विचित्र पदार्थ खड़ खड़ शब्द करने लगे। मैं हाथों से दरवाज़ा टटोलता फिर रहा था। मूस-दानी में पड़ने से मूसों की कैसी दशा होती है, इसका अनुभव इस समय कुछ कुछ किया जा सकता था, पर समुद्री-रोग ने इसको कुछ और अधिक भयानक बना दिया जिससे मामला बेढब हो गया।

न मालूम यह सोया हुआ मनुष्य क्या समझता होगा। अँधेरे में दूसरे के केबिन में घुस जाना और निकलने का नाम तक न लेना; और दस मिनट तक सब वस्तुओं को टटोल कर खड़ खड़ करते घूमना—क्या यह किसी अच्छे घर के भले आदमी का काम

समझा जा सकता है ! मन व्याकुल हो उठा, शरीर पसीने पसीने हो गया, मतली का भी ज़ोर बढ़ने लगा। बहुत देर ढूँढ़ने ढाँढ़ने के बाद सहसा द्वार का पता चला—अकस्मात् द्वार खोलने की श्वेत काँच की बनी चिकनी मूठ हाथ में लगी। उस समय मालूम हुआ कि ऐसी प्रिय वस्तु का स्पर्श बहुत दिनों से नहीं हुआ। किवाड़ खोल कर मैं बाहर गया और आशङ्कित होकर उसके बाद के दूसरे केबिन के द्वार पर पहुँचा। वहाँ लैम्प जल रहा था। मैंने देखा कि मेज़ पर उतारे हुए गाउन, पेटी, कोट आदि स्त्रियों के पहनने के कपड़े रक्खे हैं। और कुछ अधिक देख पड़ने के पहले ही मैं वहाँ से भागा। प्रचलित कहावत के अनुसार तीन बार तक की भूल माफ़ की जाती है अथवा तीन बार तक मनुष्यों को भूल करने का अधिकार है। परन्तु तीसरी बार परीक्षा करने का मुझे साहस नहीं रहा; और परीक्षा करने की शक्ति भी नहीं थी। बिना विलम्ब मैं जहाज़ की छत पर चला गया। वहाँ जहाज़ के कठघरे के सहारे मैं खड़ा हो गया और विह्वल-चित्त की घबराहट को शान्त करने लगा। इसके बाद बहुत लाञ्छना सहे हुए अपराधी के समान एक बेञ्च पर अपना कम्बल समेट कर रक्खा और उस पर सिर रख कर मैं लेट गया।

पर यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। यह कम्बल किसका है ! मेरा तो नहीं मालूम होता। मालूम होता है, जिस सोये हुए भले आदमी के कमरे में रात को मैं घुस कर दस मिनट तक सब सामान खर-भराता रहा था, यह उसीका कम्बल है। एक बार इच्छा हुई कि धीरे धीरे उसके कमरे में जाऊँ और यह कम्बल रख कर अपना

कम्बल उठा लाऊँ। पर ऐसा करने का साहस नहीं हुआ। यदि वे सोये हुए सज्जन फिर जाग पड़ें तो? यदि फिर उनसे क्षमा-प्रार्थना करने की आवश्यकता हुई तो क्या वे विश्वास-पूर्वक क्षमा कर देंगे? यदि वे क्षमा कर ही दें तो भी एक ही रात में दो बार क्षमा चाहना क्या एक सो रहे विदेशी मनुष्य की ख्रीष्टीय सहनशीलता पर आघात करना नहीं कहा जायगा? इसके सिवा एक और बड़े भारी भय से हृदय काँप उठा। यदि भूल से उस कमरे में चला जाऊँ जिसमें दूसरी बार गया था और वहाँ उन सज्जन का कम्बल रख आऊँ और वहाँ से कोई वस्त्र उठा लाऊँ तब तो बड़ा ही अनर्थ हो। ऐसा होने पर मैं किससे क्षमा माँगूँगा! पहले कमरे में रहने वाले उन सज्जन से क्या कहूँगा, और उस कुलीन महिला को ही क्या कह कर समझाऊँगा। इस प्रकार की अनेक चिन्ताओं के कारण मैं वहीं पड़ा रहा। चुरुट की तीव्र गन्ध से बसा हुआ वह कम्बल भी मेरे ही पास रहा।

२३ अगस्त। प्रातःकाल मेरे स्वदेशी मित्र रात भर सुख की नींद सोने के बाद बड़ी प्रसन्नता से डेक (जहाज़ की छत) पर उपस्थित हुए। उनके दोनों हाथ पकड़ कर मैंने कहा—भाई, मेरी तो ऐसी ऐसी दशा हुई। सुन कर साथी महाशय मेरी बुद्धि को दोष देने लगे और हँसते हुए उन्होंने एक-दो ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया जिन्हें सुनने का अवसर कालेज छोड़ने के पीछे नहीं प्राप्त हुआ था। सारी रात का दुःख और फिर प्रातःकाल यह अपमान, सब चुपचाप सहना ही पड़ा। अन्त में साथी महाशय को दया आई, और मेरे केबिन के नौकर को उन्होंने बुला दिया।

उस नौकर के सामने भी रात की सब बातें एक एक करके कहनी पड़ीं। पहले वह कुछ भी नहीं समझ सका, केवल हम लोगों के मुँह की ओर ताकता रहा। उस बेचारे का दोष ही क्या था। उसने शायद अपने जीवन भर में इस प्रकार की घटना देखी-सुनी न होगी। अतएव सुनते ही उसका समझ लेना सचमुच उसके लिए कठिन था। अन्त को मैं और मेरे साथी ने मिलकर साफ़ साफ़ कह कर उसे समझाया। जब उसने समझ लिया तब समुद्र की ओर एक बार मुँह फेर कर वह मुसकुराया और वहाँ से चला गया। कम्बल की कथा यहीं समाप्त हुई।

समुद्री रोग धीरे धीरे बढ़ने लगा। उसका कष्ट स्थल पर रहने वालों को नहीं समझाया जा सकता। शरीर में भारतवर्ष के अन्न का एक कण भी नहीं रहने पाया। मालूम होता है, योरप में घुसने के पहले ही समुद्र शरीर से भारतवर्ष के चिह्न को भी निकाल बाहर करना चाहता है। आज चार दिन से हम केबिन में पड़े हुए हैं।

२६ अगस्त। शनिवार से लेकर आज मङ्गल तक के दिन बीत गये। संसार का कोई व्यवहार रुका हुआ नहीं है। सूर्य चार बार उदय हुए और तीन बार अस्त। इस पृथिवी के कितने ही प्राणियों ने दतून से लेकर देशोद्धार के विचित्र कार्य तक के करने में बड़ी व्यग्रता से इन तीन दिनों को बिताया होगा। जीवन-संग्राम, प्राकृतिक निर्वाचन, आत्मरक्षा, वंशरक्षा आदि बड़े बड़े कार्य प्रबल-वेग से जीव-राज्य में हो रहे हैं। केवल मैं ही एक शय्या पर जीवन्मृत के समान पड़ा हुआ हूँ। आजकल के कवि कभी

मुहूर्त्त को अनन्त और अनन्त को मुहूर्त्त के नाम से पुकारते हैं और अपनी प्रचलित भाषा को अनेक प्रकार की कसरत करने के लिए विवश करते हैं। पर मेरी समझ में नहीं आता कि मैं अपने इन चार दिनों को एक बड़ा मुहूर्त्त कहूँ या इन चार दिनों के एक एक मुहूर्त्त को एक एक युग कहूँ।

जो हो, पर इसमें तो सन्देह नहीं कि ये चार दिन बड़े कष्ट से बीते। मनुष्य एक उन्नत जीव है। इसको बड़े बड़े कष्टों का जो सामना करना पड़ता है उसका कारण भी कोई बड़ा होना चाहिए। मनुष्य के इतने बड़े कष्ट का कारण नैतिक या आध्यात्मिक कोई दोष होना चाहिए। परन्तु जब देखता हूँ कि जल की तरङ्गों से जीवात्मा व्याकुल हो गया है, उसकी पीड़ा की सीमा नहीं है, तब यह बात बड़ी ही अनुचित मालूम होती है; और यह बात मनुष्यों के लिए अपमान की भी है। पर जगत् के नियमों को दोष देना उचित नहीं, क्योंकि उनसे किसी को कुछ भी कष्ट नहीं होता; और, न जगत् के नियमों में किसी प्रकार का कुछ परिवर्तन होने ही की आशा है।

रोग-कष्ट की शय्या पर बेहोश पड़ा हूँ। कभी कभी डेक पर से पियानो का मृदु-मधुर सङ्गीत सुनाई पड़ता है। उस समय मालूम होता है कि इस मेरे तंग शयन-कारागार के चारों ओर आनन्द का स्रोत प्रवाहित हो रहा है। उसी समय दूरवर्ती भारतवर्ष का स्मरण हो आता है और साथ ही उसकी पूर्व सीमा पर स्थित सङ्गीतमुखर अपने घर का दृश्य आँखों के आगे आ जाता है। सुख-स्वास्थ्य और सौन्दर्य से पूर्ण यह संसार बड़ी दूर की एक छाया के समान मालूम

होता है । बारबार यही बात हृदय में उठती है कि यह लम्बा मरु-मार्ग नाँघ कर कब मैं वहाँ के जीवन-महोत्सव में सम्मिलित हो सकूँगा । मङ्गलवार के प्रातःकाल शरीर में प्राण के सिवा भौतिक पदार्थ कुछ भी न था । बाहरी सभी पदार्थ निकल गये । उस समय मेरे साथी आये और बहुत धीरज देकर मुझको जहाज़ की छत पर ले गये । वहाँ जाकर एक आराम-कुरसी पर बैठ कर फिर मैं मनुष्य और पृथ्वी के संसर्ग में आकर नवजीवन का आनन्द भोगने लगा ।

मैं जहाज़ के यात्रियों का वर्णन करना नहीं चाहता । उनको स्वप्न में भी यह ख़याल नहीं कि स्याही-भरी क़लम की नोक उनके ऊपर अपना तीक्ष्ण लक्ष्य स्थापित कर सकती है । वे बड़े आनन्द से डेक पर घूम रहे हैं, पियानो बजा रहे हैं, बाज़ी लगा कर हार-जीत के खेल खेल रहे हैं, और कोई चुरुट पीने के कमरे में बैठे ताश खेल रहे हैं । पर उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । उस जहाज़ में हम तीन बङ्गाली हैं । तीनों तीन आराम-कुरसी लिये जहाज़ के एक किनारे पर अपना पूरा अधिकार जमाये हुए हैं, और औरों की ओर अत्यन्त उदासीन दृष्टि से देखा करते हैं ।

जहाज़ के दिन बहुत बड़े होते हैं । मैं अपने अन्य दोनों साथियों के सामने अपनी कुरसी खींच ले गया और परस्पर के स्वभाव, चरित्र, जीवन-वृत्तान्त तथा सृष्टि के समस्त स्थावर-जङ्गम और स्थूल-सूक्ष्म सत्ता के सम्बन्ध में जिसको जो कहना था उसने वह कह डाला । मेरे साथी मित्र चुरुट के धुएँ तथा अनेक प्रकार की उड़ती हुई कल्पनाओं के संयोग से एक विलक्षण धूम्र-लोक की सृष्टि करते

रहे। यदि किसी प्रकार वह धूम्रमय संसार एक बड़ी रबड़ की थैली में भर कर रक्खा जा सकता, तो निःसन्देह उसी का बेलून बनाकर उस पर सारी पृथ्वी को चढ़ाकर एकदम आकाश की सैर करा लाई जा सकती।

मेरे साथी एक ओर जैसे काव्याकाश में उड़ने के लिए प्रयत्न करते थे, वैसे ही दूसरी ओर उनमें पूर्ण रूप से वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति पाई जाती थी। परन्तु दुःख की बात है कि उनकी वह अनुसन्धान की प्रवृत्ति प्रायः चुरुट के धुएँ के पीछे ही चला करती है। उनकी तम्बाकू रखने की थैली, सिगरेट का कागज़ और दिया-सलाई की डिबिया दम-दम भर पर खो जाती है। साथी महाशय उन्हें ढूँढ़ते हैं वहाँ जहाँ उनके मिलने की कोई सम्भावना नहीं, पर ये मिलती हैं वहाँ जहाँ से मिलनी चाहिएँ। पुराणों में लिखा है कि इन्द्र का सबसे प्रधान कार्य है, यज्ञ करनेवालों के मार्ग में विघ्न उपस्थित करना और उनके यज्ञ को नष्ट कर देना। जो लोग तपस्या करते हैं इन्द्र उनके पास अप्सरा भेजकर उनकी तपस्या भी नष्ट कर देते हैं। मैं समझता हूँ कि मेरे साथी की बुद्धि को सदा डावाँ-डोल किये रहने के लिए पर-श्री-कातर इन्द्र ने अपनी किसी चतुर अप्सरा को भेजा है और वह तम्बाकू की थैली बन कर सदा उन की जेब में रहती है। दिल्लगीबाज़ स्त्री के समान उनकी सिगरेट बार बार छिपती है और फिर अपने को पकड़ा देती है; और इसी तरह दिन-रात उनके चित्त को डावाँडोल बनाये रहती है। मैंने अपने साथी को बार बार यह कह कर सावधान कर दिया है कि यदि तुम्हारी मुक्ति में कोई बाधा है तो यह सिगरेट है। मृत्यु के समय महर्षि

भरत का चित्त एक मृग के बच्चे में लग गया था, अतएव उनको दूसरे जन्म में हरिण का बच्चा होना पड़ा था। मेरे हृदय में यह शङ्का सदा बनी रहती है कि मेरे यह साथी, दूसरे जन्म में, बरमा के किसी किसान की झोंपड़ी के सामने एक बहुत बड़ा तम्बाकू का खेत होकर जन्म लेंगे। मेरे साथी इन शास्त्रीय बातों पर बिना प्रमाण के विश्वास ही नहीं करते, बल्कि तर्क-वितर्क करके मेरे भी सरल विश्वास को मिटा देना चाहते हैं। वे तो मुझे भी सिगरेट पिलाने का बहुत प्रयत्न करते हैं, पर अभी तक वे सफलता नहीं प्राप्त कर सके।

२७–२८ अगस्त। देवता और असुर दोनों ने मिलकर समुद्र मथा था, तथा समुद्र के भीतर जो कुछ था उसे निकाल लिया था। समुद्र न तो देवताओं का कुछ कर सका और न असुरों का। पर वह अभागे दुर्बल मनुष्यों से उसका बदला चुका रहा है। मालूम नहीं मन्दर पर्वत कहाँ है, और शेषनाग तो उसी समय से पाताल में विश्राम कर रहे हैं। पर उस समय के मन्थन से समुद्र जो घूमने लगा था वह आज तक वैसे ही घूम रहा है। इस बात का अनुभव उदरधारी मनुष्य मात्र कर सकते हैं। जो इसका अनुभव नहीं कर सकता वह या तो देव-वंश का है या असुर-वंश का। मेरे साथी भी शायद दूसरे दल के हैं, अर्थात् वे भी इस बात का अनुभव नहीं करते।

इससे मन ही मन मुझे बड़ा कष्ट हुआ था। मैं जिस समय बिछौने पर पड़ा पड़ा पूर्वोक्त शास्त्रीय वर्णन का अनुभव करता हुआ उसकी सत्यता को निरन्तर अपने शरीर से प्रमाणित कर रहा था, उस समय मेरे साथी मज़े में भोजन और आमोद-प्रमोद आदि में

लगे हुए थे। यह बात मुझे बहुत ही अनुचित और बुरी मालूम पड़ती थी। मैं पड़े पड़े यही सोचता था कि ऐसे भी आदमी हैं जिनके विषय में शास्त्रवाक्य और ब्रह्मवाक्य भी नहीं घटते। प्राचीन समुद्र-मन्थन के समय मेरे यह साथी भी समुद्र के किसी भाग में वर्तमान होते तो अवश्य ही लक्ष्मी, चन्द्रमा आदि के समान नीरोग सुस्थ अलौकिक शरीर से समुद्र के ऊपर निकल आते। पर मैं यह कहना नहीं चाहता कि मथनेवाले देवता और असुर दोनों में से ये किसके हिस्से में पड़ते।

समुद्री-रोग से अब पीछा छुट गया है। आज मैं डेक पर बैठा हूँ। शरीर का कष्ट प्रायः दूर हो गया है। समुद्र और अपने साथी के विषय में जो मेरा शास्त्रीय मत और अशास्त्रीय मनोमालिन्य था वह दूर होगया है। यहाँ तक कि इधर मैं उनका कुछ अधिक पक्षपाती भी बन गया हूँ।

इधर कई दिनों से दिन-रात डेक पर ही पड़ा रहता हूँ। घड़ी भर के लिए भी बन्धु-वियोग नहीं हुआ।

२८ अगस्त। आज रात को अदन पहुँचेंगे। वहाँ कल प्रातः-काल जहाज़ बदलना पड़ेगा। समुद्र में कहीं कहीं एक-दो पहाड़ों की रेखा देख पड़ती है।

उजेली रात है। जहाज़ अदन बन्दर पर पहुँच कर ठहर गया। भोजन के बाद एकान्त में बातचीत करने के लिए हम दोनों मित्र डेक के एक किनारे, अपनी अपनी आराम-कुरसी पास पास रखकर, आनन्द से बैठे हैं। समुद्र तरङ्ग-हीन स्थिर है। चन्द्रमा का प्रकाश तट की पर्वत-माला पर फैला है। हम लोगों की आँखें

आलस्य के मारे कुछ कुछ बन्द हैं। यह दृश्य स्वप्न की झलक के समान मालूम होता है।

इसी समय सुना गया कि दूसरे जहाज़ पर चलना होगा और वह जहाज़ आज रात ही को यहाँ से छूटेगा। शीघ्रता-पूर्वक केबिन में जाकर वहाँ चारों ओर बिखरे हुए सामान को एकत्रित करके किसी तरह चमड़े के बक्सों में रक्खा। बक्स सामान से ठसा-ठस भर गये। इससे उनमें ताला बन्द करना कठिन होगया। जब चार पाँच आदमी उन बक्सों पर चढ़ कर बड़े निर्दय भाव से नृत्य करने लगे तब उनके बोझ से बक्सों के दबने पर ताला बन्द हो सका। जहाज़ के नौकरों को इनाम दिया। फिर छोटे-बड़े-मँझोले अनेक प्रकार के आकारवाले बक्स, ट्रङ्क आदि के साथ नाव पर चढ़कर हम लोग नये जहाज़ "मैसिलिया" की ओर चले।

थोड़ी ही दूर पर मस्तूल ऊपर उठाये "मैसिलिया" खड़ा है। दीपकों के प्रकाश से उसके केबिन जगमगा रहे हैं। उसकी खिड़कियों की क़तारें खुली हुई हैं। मालूम होता है, वह प्राचीन युग का कोई सहस्र-नयन जल-जन्तु समुद्र में खड़ा है। सहसा बैण्ड बजने लगा। निस्तब्ध उज्ज्वल आधी रात को सङ्गीत की ध्वनि सुनकर मन में यह धारणा दृढ़ होने लगी कि अरब देश के पास आधी रात को आरब्योपन्यास की ऐसी कोई माया-घटित घटना होनेवाली है।

"मैसिलिया" आस्ट्रेलिया से यात्री लेकर आया है। कौतूहल-वश उसके स्त्री-पुरुष यात्री डेक पर चढ़कर नये यात्रियों के समागम को बड़े कौतुक से देख रहे हैं। परन्तु इस दल में नवीनता के

कारण हमीं तीन जन सबसे अधिक दर्शनीय थे। बड़े परिश्रम से अपना सामान यथास्थान रखकर जब हम ऊपर डेक पर गये तब एक हज़ार मनुष्यों की दृष्टियाँ एक दम हम लोगों पर पड़ीं। यदि उन दृष्टियों का कोई चिह्न हो सकता तो अवश्य ही हम लोगों के शरीर काले नीले दागों से भर जाते। जहाज़ बहुत बड़ा है। उसकी संगीतशाला और भोजनगृह की दीवारों में संगमर्मर पत्थर जड़े हैं। बिजली का प्रकाश चारों ओर फैल रहा है, बैण्ड बज रहा है। मानों कोई महोत्सव हो रहा है।

बड़ी रात रहते हो जहाज़ वहाँ से चल दिया।

३० अगस्त। इस जहाज़ पर डेक पर दोमंज़िले के समान एक और डेक था। वह छोटा था और उसपर भीड़ भी कम थी। वहाँ हम लोगों ने अपना डेरा डाला।

हमारे साथी चुप और उदास हैं। मेरी भी वही दशा है। समुद्र-तीर के पहाड़ धूप से मुरझाये और धुँधले देख पड़ते हैं। मानों मध्याह्न के आलस्य की छाया पड़ कर अस्पष्ट सी हो गई है।

कभी मैं कुछ सोचता हूँ, कभी कुछ लिखता हूँ और कभी लड़कों का खेल देखता हूँ। इस जहाज़ में बहुत से छोटे छोटे लड़के और लड़कियाँ हैं। जहाज़ के समस्त मनुष्यों के बीच चञ्चलता उन्हीं लड़के और लड़कियों में देखी जाती है। उन बच्चों ने अपने जूते और मोज़े खोल कर रख दिये हैं और हमारे डेक पर कौले-सन्तरे लुढ़का कर खेल रहे हैं। उनकी तीन दासियाँ वहीं बेञ्च पर बैठी हैं। नीचे मुँह किये चुपचाप कुछ सिलाई का काम कर रही हैं। बीच बीच में सिर उठाकर यात्रियों की अवस्था भी देखती जाती हैं।

बहुत दूर पर समुद्र में एक-आध जहाज़ देख पड़ता है। समुद्र में बीच बीच ऊपर कठिन-काले जले-तपे जन-शून्य पहाड़ देख पड़ते हैं। अन्यमनस्क पहरुए के समान समुद्र के बीच में खड़े होकर उदासीन भाव से मानों वे ताक रहे हैं। सामने से कौन आता है और कौन जाता है, इस ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं।

इसी प्रकार धीरे धीरे सूर्यास्त का समय आगया। संसार में यदि "कैसल आफ़ इण्डोलेंस" (आलस्य का क़िला) कोई है तो यह जहाज़ ही है; ख़ास कर गरमी के दिनों में और प्रशान्त-लोहित-सागर में। चञ्चल अँगरेज़ों के लड़के भी दिनभर आराम-कुरसी पर पड़े अपनी टोपी से मुँह ढँके दिन में भी सोते रहते हैं। यदि कोई चलता है, यदि किसी में गति है तो वह जहाज़ में। और, उसके आस पास की टक्कर से चञ्चल समुद्र का नीला जल अलस-आपत्ति का क्षीण शब्द करता हुआ इधर उधर हट जाता है।

सूर्य अस्त हो गये। आकाश और जल में सुन्दर रंग देख पड़ा। समुद्र निस्तब्ध है, उसके जल में एक रेखा भी नहीं है। दिगन्त-विस्तृत समुद्र की जलराशि यौवन-पूर्ण शरीर के समान ठोस और सुडौल देख पड़ती है। यह अखण्ड परिपूर्णता आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली है। मानों यह विशाल समुद्र वहाँ आकर ठहर गया है। वहाँ जैसे आगे जाने का मार्ग नहीं है, परिवर्तन नहीं है। वह स्थान जैसे सदा के लिए चञ्चलता का परम परिणाम तथा अन्तिम निर्वाण है। सूर्यास्त के समय चीलें जैसे आकाश की नीलिमा में जाकर अपने पंख फैला कर चलना बन्द कर देती हैं, ठीक वैसे ही सदा-चञ्चल रहनेवाला समुद्र भी शान्ति

की अन्तिम सीमा में आकर एक क्षण के लिए पश्चिम अस्ताचल की ओर मुँह करके खड़ा हुआ है। समुद्र के जल में जो यह सुन्दर वर्ण का विकास देख पड़ता है वह आकाश की छाया है या समुद्र का प्रकाश, इसका ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। जैसे माहेन्द्रयोग के समय आकाश की नीरव निर्निमेष नीली दृष्टि के पड़ने से एकाएक समुद्र की भारी गंभीरता के भीतर से एक अलौकिक प्रतिभा की दीप्ति ने स्फूर्ति पाकर उसे अपूर्व महिमा से मण्डित कर दिया है।

सन्ध्या हो गई। टन टन् टन् कर के घण्टा बजा। सभी अपने कपड़े-लत्ते उतार कर सन्ध्या के भोजन के लिए तैयार होने लगे। आधे घण्टे के बाद फिर घण्टा बजा। झुंड के झुंड स्त्री-पुरुष भोजन-शाला में जाकर उपस्थित हुए। हम तीनों बङ्गालियों ने अलग एक टेबल पर अपना अधिकार जमाया। हम लोगों के सामने ही एक दूसरी टेबल पर दो औरतें भोजन के लिए बैठीं; एक उपासक-दल उनको चारों ओर से घेरे हुए था।

मैंने देखा कि, उनमें एक युवती अपने यौवन की शोभा बहुत अधिक खोले हुए हँस हँस कर भोजन, और लोगों से बातें भी, कर रही है। उसके शुभ्र गाल और चिकने गले, छाती और बाहुओं पर सारी बिजली की रोशनी और पुरुषमण्डल की दृष्टि पड़ रही है। मानों एक खुली हुई दीप-शिखा को देख कर लोगों की दृष्टियाँ काले काले पतङ्गों के समान उस पर झुक पड़ी हैं। बहुत तो घूम घूम कर उसे देख रहे हैं और उसी बात को लेकर वहाँ सब जगह हँसी-मज़ाक़ हो रहा है। बहुत से सज्जन तो उस युवती की पोशाक

को "इण्डेकोरस" कह रहे हैं। पर विदेशियों के लिए उस स्त्री को निर्लज्ज और अप्रतिष्ठित समझना अनुचित है। क्योंकि नृत्य-शाला में इसी वेश में, या इससे भी अधिक खुले वेश में, किसी स्त्री के जाने पर किसी को कुछ भी विस्मय नहीं होता।

परन्तु विदेशी समाज-नीति के विषय में विशेष उत्साह के साथ कुछ कहना अच्छा नहीं है। हमारे देश में व्याह तथा इसी प्रकार के किसी किसी उत्सव के उपलक्ष में औरतें बिना किसी संकोच के जैसी निर्लज्जता दिखाती हैं वैसी निर्लज्जता यदि और कहीं दिखातीं तो सभी लोग उनको बुरा समझते।

३१ अगस्त। आज रविवार है। प्रातःकाल उठ कर हम ऊपर डेक पर गये और वहीं कुरसी पर बैठ कर समुद्र की हवा खाने लगे। नीचे उसी समय ख्रिष्टानों की उपासना प्रारम्भ हुई। यह तो मुझे मालूम था कि इनमें से बहुत से योंहीं शुष्क भाव से, फ़ोनो-ग्राफ़ बाजे के समान, अभ्यस्त मन्त्र पढ़ते और गान गाते हैं; इनके हृदय में भक्ति-भाव नहीं है; पर इस दृश्य को देख कर सचमुच आश्चर्य होता था कि ये क्षुद्र चञ्चल मनुष्य अगाध और अपार समुद्र में निश्चल खड़े होकर उस अनन्त रहस्य के प्रति अपने क्षुद्र हृदय की भक्ति प्रकट कर रहे हैं।

बीच में कभी कभी अट्टहास भी सुनाई दे रहा है। अनुसन्धान से मालूम हुआ कि वह युवती, जो रात को हमारे सामने भोजन करती थी और जिसे देखकर प्रायः सभी तर्क-वितर्क करते थे, उपासना में सम्मिलित नहीं हुई है। वह डेक पर ही बैठी है और अपने एक उपासक युवक के साथ प्रेमालाप कर रही है। वे दोनों

बीच बीच में खिलखिला कर हँसने लगते हैं और फिर धीरे धीरे धर्म-सङ्गीत गाने में भी शामिल हो जाते हैं। इससे मेरे हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि इस उपासक-सम्प्रदाय में—इस भक्त-मण्डली में—पेटी-कोट पहने शैतान आकर घुस गया है और वह अपनी मनोमोहिनी मूर्त्ति पर लोगों को लुभा रहा है तथा मनुष्यों की उपासना का उपहास करता है।

१ सितम्बर। सन्ध्या के बाद भोजन करके हम लोग डेक पर अपने अपने स्थान पर गये। धीरे धीरे शीतल वायु चल रहा है। मेरे साथी तो सो गये और भैया चुरुट पीने लगे। इसी समय नीचे के डेक पर नाचना-गाना शुरू हुआ। एक एक स्त्री पुरुष मिल कर नाचने-गाने लगे।

उस समय पूर्व दिशा में कृष्णपक्ष का पूर्णचन्द्र धीरे धीरे उदय होने लगा। तीर-रेखा-शून्य जल-मय महामरुप्रदेश की पूर्वी सीमा पर चन्द्रमा की पीली किरणें पड़ कर अनादि अन्त-शून्य एक प्रकार के विषाद से पूर्ण हो उठी हैं। चन्द्रमा के उदय-स्थान के ठीक नीचे से लेकर हमारे जहाज़ तक अन्धकार-पूर्ण समुद्र के बीच लम्बा चौड़ा प्रकाश-पथ झिलमिलाने लगा। ज्योत्स्नामयी सन्ध्या किसी एक अलौकिक डण्ठल के सहारे सफ़ेद रजनी-गन्धा के फूल के समान अपनी प्रशान्त सुन्दरता को चारों ओर विकसित करने लगी। इधर मनुष्य आपस में एक दूसरे को पकड़ कर पागल के समान बड़े आनन्द से कूद रहे हैं, हाँफ रहे हैं और अपने आपे से बाहर हो गये हैं। उनके समस्त शरीर का रक्त उछल उठा है और वह उनके मस्तक में घूम रहा है—आदि-सृष्टि की भाप के

समान वह चारों ओर बड़े वेग से दौड़ रहा है। लोक-लोकान्तर के नक्षत्र स्थिर होकर वहीं देख रहे हैं और दूर दूर की तरङ्गें क्षोण चन्द्रमा के प्रकाश में अनन्त काल की पुरानी सामगाथा को एक साथ एक स्वर से गा रही हैं।

३ सितम्बर। दस बजने के समय स्वेज़ नहर के मुहाने पर आकर हमारा जहाज़ खड़ा हुआ। वहाँ की सुन्दरता का वर्णन करना कठिन है। चारों ओर विचित्र रङ्ग का तमाशा देख पड़ता है। पहाड़ पर धूप, छाँह और नीली भाप देख पड़ती है। घने नीलेरङ्ग के समुद्र के किनारे वालुका-मय तट की पीली रेखा नज़र आती है। उस पर धूप पड़ने से उधर देखना कठिन हो रहा है।

आज दिन भर से जहाज़ नहर में धीरे धीरे जा रहा है। दोनों ओर बालू ही बालू दिखाई देती है, वृक्षों का नाम नहीं है। कहीं कहीं छोटे छोटे ईंटों के घर, और बड़े यत्न से बढ़ाये गये वृक्ष, देखने में बहुत ही सुन्दर मालूम होते हैं।

बहुत रात बीतने पर आधे चन्द्रमा का उदय हुआ। चन्द्रमा का प्रकाश मलिन है, इससे दोनों किनारों पर कुछ भी साफ़ साफ़ नहीं देख पड़ता। रात को दो तीन बजने के समय जहाज़ सैयद बन्दर पर पहुँचा। वहीं उसने लङ्गर डाल दिया।

४ सितम्बर। इस समय हम लोग भूमध्य सागर में हैं। अब हम लोग योरप की सीमा में पहुँच गये। हवा भी अधिक ठण्डी मालूम होती है और समुद्र का रङ्ग भी गाढ़ा नीला है। आज रात को डेक के ऊपर नहीं सो सके।

६ सितम्बर। भोजन के कमरे में खुली खिड़की के पास बैठकर

मैं आज घर को पत्र लिख रहा हूँ। एक बार सिर उठा कर बाईं ओर देखा तो "आयोनियन" द्वीप साफ़ साफ़ देख पड़ा। पहाड़ों की गोद में ठीक समुद्र के किनारे मनुष्य का बनाया हुआ एक बड़ा ही घना ममाखी का छत्ता सा मालूम होता है। यही है ज़न्थे (Zanthe) नाम का नगर। दूर से देखने पर मालूम होता है कि पर्वत अपनी भारी अंजलि में श्वेत पुष्प लेकर समुद्र को पुष्पाञ्जलि देने की तैयारी कर रहा है।

डेक पर जाकर जो मैंने देखा तो मालूम हुआ कि दूर तक पर्वत-माला चली गई है और उसीके बीच से तंग समुद्री मार्ग से हम लोगों का जहाज़ चला जा रहा है। आकाश मेघों से पूर्ण होगया है। बिजली चमक रही है। आँधी आने के पूरे लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। हमारे सब से ऊपर वाले डेक पर का चँदोवा खोल दिया गया। पर्वत पर सघन मेघ घिर आये। केवल थोड़ी दूर के एक पहाड़ पर, बादल के बीच के छेद से, सन्ध्या का रक्त-वर्ण प्रकाश एक लंबी लाल रङ्ग की इशारा कर रही उँगली की तरह आकर पड़ रहा है। और सब आनेवाली आँधी की छाया से छिप गया है। पर आँधी नहीं आई। एक बार कुछ वेग से हवा चली और ज़ोर से पानी आया। बस, इतने ही से और सब अनर्थ दूर होगये। भू-मध्य-सागर के आकाश की अवस्था निश्चित रूप से नहीं बतलाई जा सकती। मैंने सुना कि जिस मार्ग से हम लोगों का जहाज़ जा रहा है उस मार्ग से और जहाज़ नहीं आते-जाते। यह मार्ग बड़ा ही भयानक है।

रात्रिभोजन के पश्चात् यात्रियों ने कप्तान के स्वास्थ्य का प्याला

पिया और गुण-गान किया। कल जहाज़ ब्रिंडिसी पहुँचेगा। रात ही को सामान आदि बाँध कर तैयार हो जाना चाहिए।

७ सितम्बर। आज प्रातःकाल हम लोग ब्रिंडिसी पहुँचे। वहाँ मेल-गाड़ी खड़ी थी। हम लोग जाकर गाड़ी में बैठ गये।

गाड़ी खुल गई। उस समय टप् टप् करके पानी पड़ना शुरू हो गया था। भोजन के बाद गाड़ी के कोने में खिड़की के पास आकर हम लोग बैठ गये।

पहले दोनों ओर अंगूर के खेत मिले। उसके अनन्तर जलपाई के बाग़। जलपाई के वृक्ष नाटे, टेढ़े-मेढ़े, गाँठ-गठीले हैं। इनके पत्ते ऊपर की ओर उठे हैं। प्रकृति के हाथ के काम में जैसा एक सीधा-सादापन देखा जाता है वैसा भाव इन वृक्षों में नहीं है। इनमें ठीक उसके विपरीत भाव है। ये निपट दरिद्र शोभा-हीन वृक्ष हैं। ये बड़े कष्ट से अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट उठा कर अष्टावक्र के समान खड़े हैं। कोई कोई टेढ़े होकर ऐसे झुक गये हैं कि सहारे के लिए उनके नीचे पत्थर के ढोके रख दिये गये हैं।

बाईं ओर जोता खेत है। टूटे हुए सफ़ेद पत्थर के टुकड़े जोती हुई ज़मीन में पड़े हुए हैं। दाहनी ओर समुद्र है। समुद्र के ठीक किनारे ही छोटे छोटे नगर देख पड़ते हैं। प्रत्येक नगरी में गिरजे की ऊँची चोटी उसके मुकुट के समान दूर ही से देख पड़ती है। स्वच्छ सुन्दर छोटी नगरी युवती के समान मालूम पड़ती है। उसका प्रतिबिम्ब समुद्र में पड़ा है। मालूम होता है, वह अपना मुँह समुद्र-दर्पण में देखकर हँस रही है। नगर के आगे फिर खेत हैं। भुट्टों के खेत, अंगूर के खेत, फलों के खेत और जलपाई के वन हैं।

पत्थर के टुकड़ों के बेड़ से खेत घिरे हुए हैं। बीच बीच में पक्के कुएँ हैं और कहीं कहीं एक आध घर।

सूर्यास्त का समय हो आया। मैं आगे अंगूरों का गुच्छा रक्खे अंगूर खा रहा हूँ। ऐसे मीठे स्वादिष्ट और सुगन्धित अंगूर मैंने पहले कभी नहीं खाये थे। माथे पर रंगीन रूमाल बाँधे हुए अंगूर बेचनेवाली इस इटली की युवती को देख कर मेरे मन में यही आता है कि इटली की स्त्रियाँ यहाँ के अंगूरों के गुच्छों के समान हैं। ये भी उसी तरह सुडौल, सुन्दर और यौवन-रस से परिपूर्ण हैं। इनके मुँह का रंग भी अंगूर के समान है। ये अधिक गोरी नहीं होतीं।

इस समय हम लोग समुद्र के ऊँचे किनारे से होकर जा रहे हैं। हम लोगों के ठीक नीचे दाहनी ओर समुद्र है। ऊँची नीची ज़मीन ढालू होती हुई समुद्र-तीर तक चली गई है। चार पाँच नावें तीर पर लाई गई हैं। उन पर से 'पाल' हटा लिये गये हैं। नीचे के मार्ग से गधों पर चढ़े लोग आ-जा रहे हैं। समुद्र के तीर पर गाय-बैल चर रहे हैं। वे क्या खाते हैं, यह तो उन्हींको मालूम होगा। कहीं कहीं सूखे तृण केवल दीख पड़ते हैं।

८ सितम्बर। कल एड्रियाटिक के समतल श्री-हीन किनारे से होकर हम लोग आये थे और आज लम्बार्डी की शस्य-श्यामला भूमि से होकर हमारी गाड़ी जा रही है। चारों ओर अंगूर, जलपाई, भुट्टे और शहतूत के खेत हैं। कल मैंने अंगूर की छोटी छोटी लताएँ देखी थीं, और आज देख रहा हूँ कि अंगूर की बड़ी बड़ी लताएँ सारे खेत में लकड़ियों के ऊपर फैली हुई हैं। बीच बीच में अंगूर के गुच्छे देखने में बड़े सुहावने मालूम पड़ते हैं।

अब पर्वत-माला दीख पड़ो। पहाड़ ऊपर से नीचे तक अंगूर की लताओं से ढँके हुए हैं। उन्हीं के बीच में बस्ती भी है।

रेल की लाइन के पास ही एक अंगूर का खेत है। उसमें एक छोटा सा घर है। वहीं एक हाथ से द्वार पकड़ कर और दूसरा हाथ कमर पर रख कर एक इटली की युवती रमणी खड़ी है और वह अपनी काली काली आँखों से हमारी गाड़ी का चलना देख रही है। उससे थोड़ी दूर पर एक बालिका एक बड़े सींग वाले बैल की रस्सी पकड़े खड़ी है और निश्चिन्त होकर उसे चरा रही है। यह देखने से मुझे बंगाल के नवीन दम्पति का चित्र स्मरण हो आया। एक भारी चश्मा लगाये दाढ़ी-मूछों वाला ग्रेजुएट है, और उसकी रस्सी पकड़े हुए है एक बारह तेरह वर्ष की बुलाक-धारिणी वधू। यह पशु ख़ूब वश में है और चरता-फिरता है। और बीच बीच में आँखें फाड़ फाड़ कर अपनी मालकिन की ओर भी देखता जाता है।

टूयरिन स्टेशन पर हम लोग पहुँच गये। इस देश के सामान्य पुलिसमैन की पोशाक देखकर अवाक् होना पड़ता है। कलँगीदार टोपी, ज़री के कपड़े, कमर से लटकती हुई तलवार आदि देखने से मालूम होता है कि यह सम्राट् का बड़ा लड़का ही है।

दाहने-बायें दोनों ओर बर्फ़ से ढकी हुई नीली पर्वतमाला है और बाईं ओर सघन छायावाला वन। जहाँ वन का ताँता टूट गया है वहीं अन्न के खेत, वृक्ष तथा पर्वतों का एक विलक्षण दृश्य देख पड़ता है। पर्वत के शिखर पर एक पुराना क़िला है और पर्वत के नीचे छोटे छोटे गाँव हैं। ज्यों ज्यों गाड़ी आगे जाती है त्यों त्यों

वन और पर्वत अधिक देख पड़ते हैं। बीच बीच में जो गाँव मिलते हैं वे वैसे स्वच्छ तथा नये ढङ्ग के नहीं हैं; मैले और पुराने ढङ्ग के हैं। कहीं कहीं गिरजों की चोटियाँ अवश्य देख पड़ती हैं, पर निरन्तर धुआँ उगलनेवाले कल-कारखाने नहीं हैं।

अब हम लोग धीरे धीरे पहाड़ पर चढ़ रहे हैं। पर्वत के मार्ग टेढ़े मेढ़े चले गये हैं। ढालू पहाड़ पर जोते हुए खेत सीढ़ी के समान मालूम होते हैं। एक नदी तङ्ग पथरीले पहाड़ी मार्ग से बह कर निकली है। उसका जल स्वच्छ और फेन-युक्त है।

गाड़ी में बत्ती जला दी गई। इस समय प्रसिद्ध माउन्ट सेनिस नामक रेलवे की सुरङ्ग के भीतर होकर हमारी गाड़ी का चलना होगा। इस सुरङ्ग को पार करने में गाड़ी को आधे घंटे के लगभग समय लगा।

यह है फ़ांस। दक्खिन ओर से एक फेने से परिपूर्ण जल का प्रवाह बह रहा है। यह प्रवाह भी फ्रेञ्च जाति के समान शीघ्रगामी, चञ्चल, हास्यप्रिय और मिष्ट-भाषी है।

फ़ांस के प्रवेश-द्वार पर पहुँचने पर एक कर्मचारी गाड़ी में आया। उसने हम से पूछा—आप लोगों के पास कोई महसूली सामान है? हम लोगों ने कहा—नहीं। हम लोगों के साथी एक अँगरेज़ यात्री ने कहा—I don't parlez-vous francais.

वह प्रवाह हम लोगों की दाहिनी ओर जा रहा है। उसके पूर्व की ओर पहाड़ और "फ़ार" जङ्गल है। वेग से बहनेवाली नदी टेढ़ी मेढ़ी होकर फेना उगल कर फूलती सी, नाचती हुई, कलकल शब्द कर रही, मार्ग में पड़े हुए पत्थरों को आगे ठेलती रेलगाड़ी

के साथ दौड़ने का प्रयत्न कर रही है। बीच बीच में पुल की लोहे की ज़ञ्जीर मुट्ठी से नदी की कमर नापती हुई सी मालूम पड़ती है। एक स्थान पर नदी का मार्ग बहुत ही तङ्ग होगया है। दोनों किनारे के वृक्षों की क़तारें आपस में मिल कर नदी के प्रवाह को रोकने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही हैं। ऊपर से झरना आकर नदी के प्रवाह में मिल रहा है। नदी के पूर्व तीर पर एक टेढ़ी मेढ़ी पगडंडी चली गई है। यहाँ आकर नदी से हम लोग बिछड़ गये। अकस्मात् वह दक्षिण की ओर से आकर उत्तर की पर्वत-माला में लीन होगई।

हरी भरी घास से परिपूर्ण पर्वत-माला के बीच में कहीं कहीं ऊँचे पर्वत खड़े हैं। उन पर्वतों पर घास-फूस कुछ नहीं है। केवल रेखाङ्कित पत्थर देख पड़ते हैं। मानों वे पहाड़ नंगे खड़े हैं। कहीं कहीं उनका कुछ भाग वृक्षों से ढँका हुआ है। मालूम होता है, किसी युद्ध में किसी प्रचण्ड दैत्य ने अपने पैने नखों के नकोटे मार कर उनकी बहुत सी खाल नोच ली है।

अकस्मात् वही नदी फिर दाहनी ओर देख पड़ी और फिर बाईं ओर चली गई। वह कभी दाहनी ओर और कभी बाईं ओर देख पड़ती है, और कभी छिप जाती है। बड़ी दिल्लगी है। सम्भव है, आगे जाकर किसी पर्वत की ओट में से हँसती हुई सामने आकर वह फ़िर खड़ी हो जाय।

अब अंगूर आदि के खेत बहुत कम हो गये हैं। अब केवल लम्बे सीधे पाप्लर पेड़ों की क़तारें और अन्न के खेत ही मिलते हैं। भुट्टा, तम्बाकू तथा साग-सब्ज़ी आदि के ही खेत इधर अधिक हैं। मालूम होता है, केवल बाग़ के बाद बाग़ ही आरहे हैं। पर्वत

की इस पथरीली भूमि में मनुष्यों ने बड़े परिश्रम से प्रकृति को वश में कर लिया है। यहाँ की थोड़ी थोड़ी भूमि में भी मनुष्यों के प्रबल प्रयत्न के चिह्न पाये जाते हैं। इस देश के लोग अपने देश को प्राणों से भी अधिक चाहें तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ के निवासियों ने अपने प्रयत्न से इस देश को अपना बना लिया है। यहाँ मनुष्य और प्रकृति के बीच में बहुत दिनों से एक प्रकार का समझौता चला आता है। इन दोनों में परस्पर लेन-देन का व्यवहार चला आता है। ये आपस में ख़ूब परिचित हैं और इनका सम्बन्ध भी घनिष्ठ है। भारतवर्ष में प्रकृति उदासीन रूप से खड़ी है और वैराग्य-वृद्ध मनुष्यों का उधर कुछ भी ध्यान नहीं है। परन्तु योरप में यह बात नहीं है। योरपवाले अपने देश की भूमि को ही अपनी साधना का क्षेत्र समझते हैं। ये सदा अपनी भूमि का आदर करते हैं। इसके लिए यदि ये प्राण न देंगे तो फिर प्राण देने की वस्तु कौन सी होगी! इस भूमि के प्रति तिल मात्र भी यदि कोई हस्तक्षेप करे तो वह इन्हें सह्य नहीं हो सकता।

किन्तु यह कैसा सुन्दर चित्र है! पर्वत की गोद में नदी के तीर पर झील के समीप फले हुए पापुर और विलो वृक्षों की क़तार है। निष्कण्टक निरापद नीरोग फल-शस्य-पूर्ण प्रकृति प्रतिक्षण मनुष्यों से आदर पा रही है और आप उससे दुगना मनुष्यों का आदर करती है। मनुष्य के ऐसे प्राणी के रहने का यही तो उत्तम स्थान है। मनुष्य का प्रेम और उसकी शक्ति यदि अपने चारों ओर को सुन्दर, संयत और समुज्वल न बना सके तो उसमें और वृक्षों के छेदों तथा गिरि-गुहाओं में रहनेवाले वन-जन्तुओं में क्या अन्तर है?

९ सितम्बर। रास्ते में पेरिस उतर जाने के लिए हम लोगों में सलाह हो रही है। रात को दो बजने के समय हम लोग जगा दिये गये। यहाँ गाड़ी बदलनी पड़ेगी। सामान बाँध कर हम लोग गाड़ी से उतर गये। विकट जाड़ा है। थोड़ी ही दूर पर हम लोगों के लिए गाड़ी खड़ी है। उसमें एक एञ्जिन, एक फ़र्स्ट क्लास और एक ब्रेकवान है। इसके सिवा उस गाड़ी में और कोई डब्बा नहीं है। जानेवालों में हम लोग तीन भारतवासी हैं। तीन बजने के समय पेरिस के जन-शून्य स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। आँख मलते हुए एक दो मनुष्य हाथ में रोशनी लिये खड़े थे। बड़े परिश्रम से सोये हुए कस्टम-हाउस (चुंगीघर) के कर्मचारियों को उठाया। उनकी जाँच से छुटकारा पाकर हम लोगों ने किराये की एक गाड़ी की। इस समय पेरिस नगरी अपने समस्त द्वार बन्द करके तथा सन्नाटे से भरी सड़कों पर दीपमाला को जलता हुआ छोड़ कर सो रही है। हम लोग होटल में गये। वहाँ हम लोगों ने अपने शयन-गृह में प्रवेश किया। शयन-गृह की सफ़ाई और ढङ्ग देखने ही योग्य है। बिजली की रोशनी हो रही है। बिल्लौर पत्थर जड़ा हुआ है। कार्पेट बिछा हुआ है। दीवारें चित्रित हैं। नीला पर्दा पड़ा हुआ है। हंस के पर के समान श्वेत और कोमल शय्या है।

कपड़े उतार कर हम लोग सोने का प्रबन्ध करने लगे। उस समय मालूम हुआ कि हम लोगों के सामान के साथ किसी का ओवरकोट आ गया है। हम तीनों ही आदमी एक दूसरे के सामान को पहचानते नहीं हैं। अतएव कोई अनजानी वस्तु जब हाथ में पड़ती है उस समय, हम तीनों ही उस वस्तु को अपने सामान में

यह समझ कर रख लेते हैं कि यह हम लोगों में से किसी न किसी की होगी ही। अन्त को जब अपना अपना सामान अलग अलग किया जाता है उस समय जो वस्तु अधिक होती है तब मालूम होता है कि यह वस्तु दूसरे की है। परन्तु तब क्या हो सकता है। उस समय उस वस्तु को उसके मालिक के पास भेजने का कोई उपाय हाथ में नहीं रहता। यह ओवरकोट हम लोग रेलगाड़ी से लाये हैं। जिसका कोट है वह बेचारा विश्वास-पूर्वक ख़ूब सो रहा था। वह गाड़ी इस समय समुद्र के तीर पर कैले नगर के समीप पहुँची होगी। जिसका यह ओवर-कोट है वह कौन है; इस विशाल बृटिश राज्य में उसका क्या पता है; यह सब हम लोगों को कुछ भी नहीं मालूम। इधर हम लोग उसका ओवर-कोट और पाप का भार कन्धे पर रख कर घूम रहे हैं; प्रायश्चित्त करने की राह भी बन्द है। मालूम होता है, एक बार जहाज़ में जिसका कम्बल उठा कर मैं ले आया था उसीका यह ओवरकोट भी है। क्योंकि रेलगाड़ी में वह हम लोगों के पास ही की बैठक पर सोया था। वह बेचारा बूढ़ा शीत-पीड़ित और बाई के रोग से दुखी है। वह एंग्लो-इण्डियन पुलिस का अध्यक्ष है। पुलिस का काम करने से मनुष्य-चरित्र पर उसका सहज ही अविश्वास हो गया होगा और जब वह देखेगा कि एक ही यात्रा में एक ही प्रकार की घटना एक ही मनुष्य के द्वारा रात में दो दो बार हो गई तब उसके हृदय में मनुष्यों के प्रति कैसे भावों का उदय होगा! क्या वह कभी हमको सुशील और सच्चरित्र समझ सकेगा? प्रातःकाल बृटिश-चैनेल पार होने के समय जब वह शीत से व्या-

कुल होगा उस समय उसका मनुष्यों पर से रहा सहा विश्वास भी जाता रहेगा ।

प्रातःकाल हम तीनों जने पेरिस घूमने के लिए पैदल चले । बड़ी बड़ी सड़कें, दूकानें, बाग़, महल, पत्थर की मूर्त्तियाँ, फुहारे, मनुष्य, गाड़ी, घोड़ा आदि के बीच से घूमते-घामते हम लोग एक होटल में उपस्थित हुए । विशाल स्फटिक-गृह के एक किनारे टेबल पर बैठ कर हम लोगों ने थोड़ा सा भोजन किया और उसका बहुत अधिक मूल्य दिया । इसके उपरान्त ईफल-स्तम्भ देखने के लिए हम लोग आगे बढ़े । यह लोहे का स्तम्भ चार पायों के ऊपर एक बड़े बाग़ के बीच में खड़ा है । कल के हिंडोले में बैठ कर हम लोग इसके चौथे खण्ड पर गये । वहाँ से सारे पेरिस नगर को एक बड़े नक्शे के समान फैला हुआ देखा ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार शीघ्रता से इधर उधर आँखों से चाट लेने में पेरिस के देखने का स्वाद नहीं मिल सकता । यह तो धनियों की कन्याओं के बन्द पालकी में गङ्गा-स्नान करने जाने के समान है । किनारे पर एक डुबकी लगाई और चल दी ।

१० सितम्बर । हम लोग लन्दन की ओर चले । सन्ध्या के समय लन्दन पहुँच कर दो एक होटल हम लोगों ने देखे । पर कहीं स्थान नहीं मिला । अन्त को हम लोगों ने एक प्रतिष्ठित सज्जन के घर अपने रहने का प्रबन्ध किया ।

११ सितम्बर । प्रातःकाल अपने पुराने मित्रों को ढूँढ़ने के लिए हम लोग बाहर हुए ।

पहले हम लोग अपने एक पूर्व-परिचित घर पर उपस्थित हुए और जाकर उसका द्वार खटखटाया। जिस दासी ने आकर द्वार खोला उसे मैं नहीं पहचानता। उससे मैंने पूछा कि मेरे मित्र घर में हैं कि नहीं? उसने उत्तर दिया कि अब वे इस घर में नहीं रहते। मैंने फिर पूछा कि वे अब कहाँ रहते हैं। उसने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानती। आप लोग आकर इस कमरे में बैठें, मैं ऊपर से जाकर पूछ आती हूँ। पहले जिस कमरे में हम भोजन करते थे उसमें जाकर देखा, सभी उलट पलट गया है। वहाँ टेबल पर समाचार-पत्र और पुस्तकें रक्खी हुई हैं। वह कमरा इस समय अतिथियों के बैठने के लिए प्रतीक्षा-गृह बना है। थोड़ी देर के बाद उस दासी ने पता लिखा हुआ एक कार्ड लाकर हम लोगों को दिया। मेरे मित्र इस समय लन्दन के बाहर किसी अपरिचित स्थान में रहते हैं। निराश होकर हम लोग उस अपने पूर्व-परिचित घर से बाहर निकले।

इस समय मन में यह कल्पना उठी मानों मृत्यु के बहुत दिनों के बाद हम फिर पृथिवी पर लौट आये हैं। मैं जिस घर में पहले की यात्रा में रहा था उस मकान के समीप आकर दरवान से पूछा—अमुक महाशय इस घर में रहते हैं? उत्तर मिला—"नहीं। बहुत दिन हुए, वे तो यहाँ से चले गये।" चले गये? वे भी चले गये! मैंने समझा था कि केवल मैं ही चला गया था, पृथिवी सहित और सब यहीं है। पर अब तो मालूम होता है कि मेरे चले जाने के बाद सभी यथासमय यहाँ से चले गये। अब उन जान-पहचान के मनुष्यों को ढूँढ़ निकालना बड़ा कठिन है। अब उन

लोगों से मिलने के लिए इस संसार में कोई भी निश्चित स्थान नहीं है। खड़े खड़े मैं यही सब सोच रहा था। उसी समय मकान के मालिक बाहर निकल आये। उन्होंने पूछा—"तुम लोग कौन हो ?" मैंने प्रणाम करके उत्तर दिया कि हम विदेशी हैं। मैं इस समय इस बात को कैसे कह सकता था कि एक समय यह मकान मेरा या हम लोगों का था। एक बार इच्छा हुई कि भीतर जाकर उस बाग़ को देख आऊँ। मेरे लगाये वे वृक्ष कितने बड़े हुए हैं। और ऊपर वाला दक्षिण-मुँह का कोठा, और वह कमरा, जिसके सामने बरामदे में टूटे हुए टब में कई जीर्ण वृक्ष लगे हुए थे—यह सब जाकर देख आऊँ। वे पेड़ इतने बेकार थे कि शायद आज तक ज्यों के त्यों पड़े होंगे; उन्हें वहाँ से हटाने की ओर किसी का ध्यान न गया होगा।

और अधिक देर तक कल्पना करने का अवसर नहीं मिला। लन्दन में सुरंग की राह से नीचे नीचे जो रेलगाड़ी दौड़ती है उसी पर चढ़ कर, जहाँ ठहरे थे वहाँ, लौट आने का विचार हम लोगों ने किया। परन्तु पीछे मालूम हुआ कि इस संसार में सभी प्रयत्न सफल नहीं होते। हम दोनों भाई एक गाड़ी में निश्चिन्त बैठे थे। इतने में हैमरस्मिथ नाम के एक दूर के स्टेशन पर गाड़ी जाकर खड़ी हुई। उस समय हम लोगों के निर्भय हृदय में कुछ भय का सञ्चार हुआ। एक मनुष्य से पूछने पर मालूम हुआ कि हम लोगों को जिधर जाना है यह गाड़ी उधर नहीं जाती। तीन चार स्टेशन लौट कर दूसरी गाड़ी पर चढ़ना चाहिए। तब हम लोगों ने वैसा ही किया। अन्त को हम लोग उस स्टेशन पर पहुँचे जहाँ

पहुँचना चाहिए। गाड़ी से उतर कर हम लोग अपना निवास-स्थान ढूँढ़ने लगे। बहुत ढूँढ़ने के पीछे हम लोग लगभग साढ़े तीन बजे अपने डेरे पर पहुँचे और ठंडा भोजन किया। आज सारे दिन की यात्रा से यह ज्ञान उत्पन्न हुआ कि हम दोनों भाइयों में लिविंगस्टन या स्टैनली के समान भौगोलिक-तत्त्व के आविष्कार की शक्ति नहीं है। यदि हम लोग इस संसार में अपनी अक्षय-कीर्ति चाहते हों तो किसी दूसरी विद्या की ओर हम लोगों को मन लगाना चाहिए।

१२ सितम्बर। हमारे साथी मित्र में एक बड़ा भारी गुण यह था कि वे मार्ग नहीं भूलते थे। अतएव हमने लन्दन देखने के लिए उन्हीं को अपना पण्डा बनाया। अब हम जहाँ जाते हैं, उनको अपने साथ अवश्य ले लेते हैं और वे जहाँ जाते हैं तो भी हम लोग उनका साथ किसी प्रकार नहीं छोड़ते; किन्तु एक आशङ्का यह है कि इस प्रकार की वियोग-शून्य मित्रता इस पृथिवी पर सदा आदर नहीं पाती। इस संसार में, फूल में काँटे, चन्द्रमा में कलङ्क और मित्रता में वियोग है।

आज हम लोग अपने साथी को साथ लेकर नगर देखने के लिए निकले। नेशनल गैलरी में चित्र देखने के लिए गये और डरते डरते चित्रों को देखा। किसी भी चित्र को पूरे तौर से पसन्द करने में खटका यह था कि किसी चित्रकला के अच्छे विज्ञ पुरुष को यह चित्र शायद नापसन्द हो; और जो चित्र बिलकुल नापसन्द थे, उनके बारे में भी मैं कुछ कह नहीं सकता। शायद योरप के चित्रकला-रसिकों को वे ही रुचते हों।

१८ सितम्बर । यहाँ मार्ग में घूमने में आनन्द है । क्योंकि मार्ग में निकलने से सुन्दर मुख देखने को मिलेंगे ही । यदि श्रीयुत् देशानुराग महाशय से हो सके तो मुझे क्षमा करें, सच तो यह है कि अँगरेज़-रमणियाँ सुन्दरी होती हैं । मेरे शुभचिन्तक मेरे लिए शङ्कित और चिन्तित हो सकते हैं, बहुत सम्भव है कि मित्रगण मेरी हँसी उड़ावें, तथापि मुझे यह बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि सुन्दर मुखड़ा मुझे सुन्दर ही लगता है । यदि ऐसा न होता तो विधाता का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जाता । सुन्दरता और मधुर हास्य, ये मनुष्यों की अद्भुत शक्तियाँ हैं । भाग्य-वश वह हँसी इस देश में मैं अधिकता के साथ देख पाता हूँ । प्रायः मार्ग में नीली आँखोंवाली कोई स्त्री जब सामने मिल जाती है तब वह मेरी ओर देखती और बड़े ज़ोर से हँसने लगती है । उस समय यही इच्छा होती है कि उसे बुला कर कहूँ—सुन्दरी, हँसी मुझे भी भली मालूम होती है, पर इतनी नहीं । और, तुम्हारे मुख पर चाहे हँसी की रेखा कितनी ही भली क्यों न मालूम हो, पर उसका भी कोई युक्ति-सङ्गत कारण होना चाहिए । क्योंकि मनुष्य केवल सुन्दर ही नहीं है, किन्तु बुद्धिमान् भी है । हे नीलकमल-नयनी, मैं तो अँगरेज़ों के ऐसे असभ्य वस्त्र और कुरुचिपूर्ण लम्बी टोपी नहीं पहनता, फिर तुम क्या देखकर हँस रही हो ? मैं सुन्दर हूँ या कुरूप हूँ, इस विषय में कुछ कहना अनुचित है । तथापि यह बात तो मैं बड़े साहस के साथ कह सकता हूँ कि विधाता ने कुरूपता की क़लम से मेरा मुख-मण्डल नहीं अंकित किया है । हाँ, यदि काले रङ्ग और लम्बे लम्बे बालों को देख कर तुम हँस रही हो, तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि

प्रकृति की भिन्नता के अनुसार हास्यरस के सम्बन्ध में अद्भुत रुचि-भेद देख पड़ता है। तुम लोग जिसको "ह्यूमर" कहती हो, मेरी समझ में उसका काले रंग के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मैंने देखा है कि तुम्हारे देश में लोग मुँह में स्याही पोतकर हबशी का स्वाँग बनाते हैं और उसे एक कौतूहल की सामग्री समझते हैं; पर हे सुनहरे बालोंवाली, वह मुझे बहुत ही बर्बर हृदय-हीन का काम जान पड़ता है।

६ अक्तूबर। अभी तक हमारे प्रवास का समय व्यतीत नहीं हुआ। परन्तु मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता। कहते लज्जा मालूम होती है, मुझे यहाँ रहना अच्छा नहीं मालूम होता। यह अहङ्कार की बात नहीं है, किन्तु लज्जा की बात है। पर इसे मैं अपने स्वभाव का ही दोष समझता हूँ।

जब मैं इसका कारण ढूँढ़ता हूँ तब मालूम होता है कि योरप के विषय में हम लोगों की जो धारणा है वह वहाँ का साहित्य पढ़ने से हुई है। अतएव जो योरप हम लोगों की धारणा में वर्तमान है वह 'आईडियल' योरप है। समाज के भीतर बिना घुसे उसका परिचय नहीं हो सकता। तीन महीने, छः महीने अथवा चार छः वर्ष रहने से हम लोग योरोपीय सभ्यता का केवल बाहरी हाथ-पैर हिलाना देख सकते हैं। बड़े बड़े मकान, बड़े बड़े कार-खाने और आमोद-प्रमोद के अनेक स्थान ये सब बाहरी दिखावे हैं। लोग चलते हैं, फिरते हैं, आते हैं, जाते हैं, जिधर देखो उधर भीड़ लगी हुई है, बड़ी चहल-पहल है। ये सब बातें देखने में कितनी ही विचित्र, कितनी ही आश्चर्यप्रद, क्यों न हों तथापि इनके देखने

से दर्शक केवल श्रान्त ही होता है। केवल विस्मय का आनन्द चित्त को परिपूर्ण नहीं कर सकता: वह मन को इधर उधर भटकाता ही है।

अन्त को यही कहने की इच्छा होती है कि अच्छी बात है भाई, मैं माने लेता हूँ कि तुम एक बहुत बड़े शहर हो, बहुत बड़े देश हो, तुम्हारी शक्ति और ऐश्वर्य की सीमा नहीं है। इसके लिए प्रमाण देने की भी आवश्यकता नहीं। तथापि यहाँ से घर लौट जाने में ही मेरी जान बचेगी। वहाँ मैं सबको जानता-पहचानता हूँ, वहाँ मैं बाहरी दिखावे के भीतर घुस कर मनुष्यत्व का उपभोग कर सकता हूँ। वहाँ मैं अनायास आनन्द का उपभोग कर सकता हूँ। वहाँ मैं बिना प्रयास के विचार कर सकता हूँ, प्रेम कर सकता हूँ। जहाँ यथार्थ मनुष्य है वहाँ यदि बे-रोक-टोक मेरा प्रवेश हो सकता तो यहाँ भी रहना प्रवास नहीं मालूम होता।

इस समय 'कथामाला' की एक कहानी याद आती है—

एक चतुर गीदड़ ने एक बगले को भोजन करने के लिए अपने यहाँ न्योता दिया। समय पर बगला उपस्थित हुआ। जाकर उसने देखा कि बड़े बड़े थाल मीठे चाटने के पदार्थों से भरे हुए हैं। कुशल-प्रश्न के बाद गीदड़ ने कहा—आओ भाई, अब भोजन प्रारम्भ कर दिया जाय। गीदड़ इतना कह कर बड़े प्रेम से थाल में रक्खे हुए पदार्थों को चाटने लगा। बगला बेचारा क्या करे? वह बार बार चोंच से ठोकर मारता है पर निष्फल, उसके मुँह में कुछ भी नहीं जाता। अन्त को बगले ने व्यर्थ प्रयत्न करना छोड़

दिया। अपनी स्वाभाविक अटल गम्भीरता धारण करके वह सरोवर-तीर के ध्यान में मग्न हुआ। गीदड़ बीच बीच में उसकी ओर देखता था और कहता था—"क्यों भाई, खाते क्यों नहीं ? व्यर्थ ही हमने आपको कष्ट दिया, आपके योग्य तैयारी नहीं हुई।" बगला भी सिर हिला हिलाकर उत्तर देता था—"ओह यह क्या बात है। भोजन बहुत ही सुन्दर बना है, पर न मालूम क्यों आज मुझे भूख नहीं है।" दूसरे दिन बगले ने गीदड़ को निमन्त्रण दिया। गीदड़ ने बगले के घर जाकर देखा कि लम्बे और छोटे मुँह वाले बर्तनों में भोजन की उत्तम उत्तम चीज़ें रक्खी हुई हैं। देखते ही खाने की इच्छा होती है पर गीदड़ बेचारा करे क्या ! उसका मुँह तो उन बर्तनों में जाता ही नहीं। शीघ्र ही बगला भोजन करने लगा। गीदड़ बाहर ही से पात्र चाटने तथा इधर उधर गिरा हुआ खाने लगा। अन्त को वह भूखा ही अपने घर लौट गया।

जातीय भोज में विदेशियों की भी यही दशा होती है। भोजन की वस्तुएँ तो दोनों के लिए योग्य हैं, परन्तु पात्र में भेद है। अँगरेज़ यदि गीदड़ हैं तो उनके बड़े बड़े चाँदी के थालों में पायस रक्खा हुआ है, और हम लोगों को केवल देखकर ही भूखे लौट आना पड़ता है। और, यदि बेचारे हम लोग बगले हों तो हमारे पत्थर के पात्र में क्या रक्खा हुआ है, यह गीदड़ देख भी नहीं सकते। केवल दूर ही से उसकी गन्ध सूँघ कर लौट जा सकते हैं।

प्रत्येक जाति का प्राचीन इतिहास और उसका आचार-व्यवहार आदि उसके लिए तो सुविधा-जनक अवश्य है, पर दूसरों

के लिए उसमें बाधा है । अतएव अँगरेज़-समाज यद्यपि बाहर से खुला हुआ है तथापि केवल आँखों से शोभा देखने के सिवा हम लोग उससे और कुछ लाभ नहीं उठा सकते । हम लोगों को वहाँ से भूखे ही लौटना पड़ता है । सब जातियों का भोजन केवल साहित्य-क्षेत्र में हो सकता है । जिनकी लम्बी चोंच है उनको भी वहाँ से निराश नहीं होना पड़ता और जिनकी चञ्चल जीभ है वे भी तृप्त होते हैं ।

यह कारण किसी को अच्छा लगे या न लगे, कोई इस कारण पर विश्वास करे या न करे, पर यह बिल्कुल सच है कि यहाँ के मनुष्यों के साथ "हाउ डू यू डू" कहने से, मुँह फैला कर ताकने से, मार्ग में और नदी के तीर पर घूमने से, थियेटर देखने से, दूकानें देखने से, कल-कारखाने आदि के निरीक्षण से,—अधिक क्या कहा जाय, यहाँ की स्त्रियों का सुन्दर मुँह देखने से भी,—मुझको श्रान्ति मालूम पड़ती है, शान्ति नहीं ।

अतएव मैंने घर लौट जाने के लिए अपना विचार पक्का कर लिया है ।

७ अक्तूबर । टेम्स नामक जहाज़ में मैंने अपने लिए एक केबिन ठीक कर लिया है । जहाज़ यहाँ से परसों चलेगा ।

९ अक्तूबर । मैं यथासमय जहाज़ पर उपस्थित हुआ । अब की वार मैं अकेला ही हूँ । मेरे साथी अभी विलायत ही में रहेंगे । मैंने अपने केबिन में जाकर देखा कि उसमें चार मनुष्यों के रहने का स्थान है और एक किसी दूसरे सज्जन का सामान एक कोने में रक्खा हुआ है । उस सज्जन के बक्स-ट्रंकों पर उसके नाम के

साथ ही साथ यह भी लिखा था—"बंगाल सिविल-सर्विस"। एक साथी के मिल जाने से मेरे हृदय में अत्यन्त आनन्द होना चाहिए था, परन्तु वह नहीं हुआ। मैंने सोचा कि भारत की धूप में झुलसे हुए, सूखी हड्डी वाले, चिरचिरे स्वभाव के पक्के ऐंग्लोइण्डियन के साथ मैं एक केबिन में कैद कर दिया गया हूँ ! जिनके बीच में सौ हाथ का अन्तर भी यथेष्ट नहीं, उन दो आदमियों का एक कमरे में कैसे गुज़ारा होगा ? गाल पर हाथ रक्खे बैठा बैठा मैं यही सोच रहा था, इसी समय एक सुन्दर आयरिश (आयर्लैण्ड का वासी) युवक मेरे सामने उपस्थित हुआ। उसने हँस कर प्रातःकाल का प्रणाम किया। थोड़ी ही देर में मेरी सब शङ्काएँ जाती रहीं। अभी सिविल-सर्विस की परीक्षा पास कर यह युवक भारतवर्ष को जा रहा है। इस नवयुवक के हृदय में अभी इँगलेण्डवासी अँगरेज़ों की स्वाभाविक सहृदयता और सज्जनता ज्यों की त्यों वर्तमान है।

१० अक्तूबर। प्रातःकाल की शोभा बड़ी सुहावनी है। समुद्र स्थिर है, आकाश भी स्वच्छ है। सूर्योदय हो गया है। प्रातःकाल के कुहासे में हम लोगों के दाहने ओर के तीर का थोड़ा थोड़ा चिह्न मालूम पड़ता है। धीरे धीरे कुहासे का पर्दा भी उठता जाता है। धीरे धीरे आकाश साफ़ हो रहा है। ह्वाइट द्वीप का पहाड़ी किनारा और वेन्टनर नाम का नगर अब साफ़ साफ़ देख पड़ने लगा।

इस जहाज़ में बड़ी भीड़ है। कहीं एकान्त स्थान में कुरसी ले जाकर बैठने और लिखने को यहाँ जगह नहीं है। अतएव जो कुछ सामने आता जाता है वही देख रहा हूँ।

प्राय: हमारे देश के लोग अँगरेज़-रमणियों की आँखों की दिल्लगी उड़ाते हैं। बिल्ली की आँखों से इनकी आँखों की तुलना करते हैं। पर यह अकसर देखा जाता है कि हमारे देश के लोग भी जब विलायत आते हैं तब वे हरिण-नयन की बातें भूल जाते हैं। अभ्यास ही इसका कारण है। यदि अभ्यास शिथिल हो जाय तो वही मनुष्य, जो किसी समय एक वस्तु की हँसी उड़ाता था, दूसरे समय उसी वस्तु के सामने सिर झुकाता है। यह कोई असम्भव बात नहीं है, इसे मानना ही पड़ेगा। जब तक दूर हैं तब तक तो कुछ नहीं, पर सामने उपस्थित होने पर अँगरेज़-रमणियों की आँखें हम लोगों के अभ्यास के पर्दे को फाड़ कर हृदय में घुस जाती हैं। अँगरेज़-स्त्रियों की आँखें मेघ-शून्य नील आकाश के समान स्वच्छ, हीरे के समान चमकीली और सघन पलकों से ढँकी हुई होती हैं। उनमें आवेश का नाम नहीं होता। मैं और किसी के बारे में यहाँ कुछ कहना नहीं चाहता। पर एक मुग्ध हृदय की बातें बिना कहे नहीं रहा जाता। वह नील नेत्रों के भी अधीन है और हरिण के से नयनों की भी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं कर सकता। उस मूर्ख के लिए जैसे बन्धन काले केश-कलाप हैं वैसे ही सुनहरे केश भी।

संगीत के विषय में भी यही देखा जाता है। पहले जिस अँगरेज़ी संगीत की हँसी उड़ाने में आनन्द प्राप्त होता था, इस समय उसी संगीत को मन लगा कर सुनने में पहले से भी अधिक आनन्द मिलता है। अधिक अभ्यास होजाने के कारण इस समय अँगरेज़ी संगीत का इतना स्वाद मिल गया है कि अन्त को यही

समझ पड़ा कि यदि इस संगीत की चर्चा की जाय, इसमें अधिक अभ्यास बढ़ाया जाय, तो इसमें भी पूरा पूरा रस पाया जा सकता है । हम लोगों को अपने देश का संगीत मधुर और सरस मालूम होता है, इसके कहने की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । और, अँगरेज़ी संगीत तथा भारतीय संगीत में पूरा पूरा जाति-भेद वर्तमान है, यह बात भी नहीं छिपाई जा सकती ।

आज बहुत रात बीते पर, अकेले डेक पर, जहाज़ के कठघरे के सहारे खड़ा होकर मैं समुद्र की ओर देखता हुआ अन्यमनस्क भाव से धीरे धीरे एक देशी रागिनी गुनगुना रहा था। गीत समाप्त होने पर मालूम हुआ कि बहुत दिनों से अँगरेज़ी गाना गाने के कारण मन श्रान्त और अतृप्त हो रहा था। आज यह बँगला गीत मुझे, प्यासे को जल के समान, मालूम पड़ा। मुझे जान पड़ा कि वह गाने का सुर समुद्र में अन्धकार के ऊपर जैसे फैल गया; और वैसा सुर और कहीं भी शायद नहीं पाया जा सकता । अँगरेज़ी गान और हम लोगों के गान में यह एक बहुत बड़ा भेद है कि अँगरेज़ी गाना जनसमूह में गाने योग्य है और हम लोगों का गाना निर्जन स्थान का है । हम लोगों का संगीत अनिर्वचनीय और अनिर्दिष्ट विषाद का संगीत है । कान्हरा, टोड़ी आदि बड़ी बड़ी रागिनियों में जो एक स्वाभाविक कातरता और गंभीरता है वह किसी व्यक्ति-विशेष के हृदय से उत्पन्न नहीं हुई । वह तो सारे जगत् की है ।

१७ अक्तूबर । दो-पहर के समय हमारा जहाज़ माल्टा द्वीप में पहुँचा । दुर्भेद्य खाई से नगर सुरक्षित है । बड़े बड़े महल हैं । पर इस शहर में वृक्ष आदि नहीं देख पड़ते । मालूम होता है कि

इस देश की हरी भरी पृथिवी का एक भाग जैसे किसी रोग के कारण कठिन हो गया है। दूर से देखते ही वहाँ ठहरने की इच्छा जाती रहती है। किन्तु अन्त को अपने नये मित्र के अनुरोध से मैं भी उनके साथ वहाँ उतर पड़ा। समुद्र के तीर से एक सुरंग है। वह सुरंग बहुत दूर तक ऊपर की ओर चली गई है। उसी मार्ग से हम लोग ऊपर गये। बहुत से गाइड (नगर-परिदर्शक) हम लोगों के पास आ गये। मेरे साथी बड़ी चेष्टा करके उन लोगों को हटाने में समर्थ हुए। परन्तु उनमें का एक गाइड हम लोगों के साथ रह ही गया। बहुत मना करने पर भी वह हम लोगों का साथ छोड़कर नहीं गया। मेरे साथी बार बार उससे कहते थे कि हम तुमको नहीं चाहते, हम एक पैसा भी तुमको न देंगे। इतना कहने पर भी वह सन्ध्या के सात बजे तक हम लोगों के साथ ही रहा। परन्तु जब मेरे मित्र ने उसे डाँटा तब बेचारा निराश होकर चला गया। मैं उसको कुछ देना चाहता था पर पास में गिन्नियों के सिवा और कुछ भी न था। वह मनुष्य ग़रीब है, इसमें सन्देह नहीं; पर यदि वह अँगरेज़ होता तो ऐसा कभी न करता। सच्ची बात तो यह है कि परिचित दोष यदि बड़े हों तो भी उधर मनुष्य विशेष ध्यान नहीं देते; परन्तु अपरिचित सामान्य दोष को भी मनुष्य बड़ा भारी समझता है। अतएव एक दूसरी जाति के मनुष्य को कुछ भी अधिकार नहीं है कि वह किसी अन्य जाति के मनुष्य के गुण-दोषों का विचार करे।

माल्टा शहर देखने से जान पड़ता है कि वह अर्ध-गठित और विकृत योरप का एक नगर है। मार्ग में पत्थर बिछे हुए हैं। रास्ते

ऊँचे और नीचे हैं। मार्ग में चारों ओर से दुर्गन्ध आती है और कूड़े के ढेर लगे हैं। रात को होटल में जाकर हमने भोजन किया। होटल में मूल्य तो बहुत अधिक देना पड़ा, पर खाने की चीज़ें बड़ी ही ख़राब मिलीं। भोजन के बाद हम लोग जहाज़ की ओर चले। रास्ते में एक जगह बैण्ड बज रहा था। वहाँ खड़े होकर हम लोग बैण्ड सुनने लगे। रात को दस बजने के बाद हम लोग जहाज़ पर आये। लौटने के समय नाववाला हम लोगों से उचित किराये से कुछ अधिक किराया लेना चाहता था। मेरे साथी साहब यह देखकर उस पर बड़े क्रोधित हुए। इस पर लन्दन की एक ऐसी ही बात मुझ को स्मरण हो आई। हम लोग जिस दिन पहले पहल लन्दन में उपस्थित हुए उसी दिन मेरे भैया और मैं दोनों किराये की गाड़ी पर बाहर घूमने निकले। गाड़ीवाले ने पाँच शिलिंग की जगह हम लोगों से बारह शिलिंग ठग कर ले लिये।

१९ अक्तूबर। आज प्रातःकाल जहाज़ जिस समय ब्रिंडिसी पहुँचा उस समय थोड़ा थोड़ा पानी बरसता था। इसी पानी बरसने के समय गानेवालों का एक दल हार्प्-सारंगी-मैण्डलीन आदि लेकर जहाज़ के सामने 'बन्दर' की राह पर खड़ा हो कर गाने-बजाने लगा।

पानी बन्द होने पर अपने साथी को लेकर मैं ब्रिंडिसी देखने के लिए गया। नगर के बाहर एक मैदान में हम लोग जाकर पहुँचे। अभी तक आकाश में बादल घिरे हुए हैं। परन्तु पहाड़ पर चढ़ने का मार्ग सूख गया है। रास्ते के दोनों ओर नाले में थोड़ा थोड़ा जल बह रहा है। रास्ते के पास ही नंगे पैर दो इटालियन लड़के पेड़

पर चढ़े "फ़िग" फल खा रहे थे। उन लड़कों ने हमारी ओर इशारा करके पूछा—खाओगे क्या ? हम लोगों ने उत्तर दिया—नहीं। थोड़ी देर के बाद "आलिव" फल से लदी हुई एक डाल लेकर वे हमारे पास आये और हम लोगों से उन्होंने फिर पूछा—क्या आलिव-फल खाओगे ? हम लोगों ने फल खाना नामंजूर किया। फिर उन लोगों ने इशारे से ही चुरुट माँगा। हमारे साथी ने चुरुट दिये। चुरुट पीते पीते वे दोनों लड़के हम लोगों के साथ चले। उन लड़कों की भाषा हम लोग नहीं जानते थे और हमारी भाषा उन लोगों को भी मालूम नहीं थी। इस कारण इशारों से ही हम लोग आपस में अपने अपने भाव प्रकट करने लगे। वह निर्जन रास्ता पहले बहुत दूर तक ऊँचा चढ़ता गया, और फिर ऊपर जाकर समतल खेत के रूप में दिखाई दिया। बीच बीच में छोटे छोटे मकान मिलते थे। उनकी खिड़कियों पर कुछ फल सूखने के लिए रक्खे थे। उस बड़े मार्ग से इधर उधर टेढ़े मेढ़े छोटे छोटे मार्ग गये थे और थोड़ी दूर आगे जाकर वे लुप्त हो गये थे।

लौटने के समय हम लोगों ने एक क़ब्रिस्तान देखा। हम उसके भीतर गये। यहाँ की क़बरें एक दूसरे ही ढङ्ग से बनाई जाती हैं। बहुत सी क़बरों पर छोटे छोटे घर बने हुए थे। उन घरों में पर्दा लगा रहता है तथा अनेक रङ्गों से चारों ओर चित्र बनाये जाते हैं। इस प्रकार क़बर के ऊपर का घर ख़ूब सजाया जाता है। मानों मृत्यु के खेलने के लिए यह घर बनाया गया है। इस प्रकार की क़बर बनाना एक प्रकार का लड़कपन है। इस देश के लोग मृत्यु का यथार्थ आदर करना नहीं जानते।

क़ब्रिस्तान में एक सीढ़ी है जिससे नीचे के घर में जाना होता है। हम लोग उसी सीढ़ी से नीचे गये। वहाँ कई हज़ार मृत मनुष्यों की खोपड़ियाँ बड़ी व्यवस्था से ढेर की ढेर रक्खी हैं। तैमूरलङ्ग जब विश्व-विजय के लिए निकला था उस समय उसने भी ऐसा ही उत्कट और भीषण दृश्य देखा था। इन मुण्डमालाओं के देखने से हमें उस कङ्काल की आकृति का ज्ञान हुआ जो रात-दिन हम लोगों के साथ साथ रहता है। इस समस्त संसार पर जीवन और सुन्दरता एक चित्रित पर्दा डाले हुए है। यदि किसी दिन कोई क्रोधी देवता अकस्मात् सुन्दर चमड़े का पर्दा सारे संसार पर से हटा ले तो उस समय कैसा दृश्य होगा! उस समय देख पड़ेगा कि लाल ओठों के नीचे छिपी हुई सूखे श्वेत दाँतों की पंक्ति विकट हँसी हँस रही है। अच्छा जाने दो, यह पुरानी बात है: पुराना विषय है! इन नर-मुण्डों के आधार पर नीति-वेत्ता पण्डितों ने बड़े भयानक मत प्रकट किये हैं। परन्तु मैं इतनी देर से देख रहा हूँ, मुझे कुछ भी भय नहीं मालूम होता। इन नर-मुण्डों को देखने से मन में केवल यही बात आई कि जिस प्रकार सीता-कुण्ड से निकले हुए जल-बिन्दुओं से गरम भाप निकल जाती है, उसी प्रकार कितने ही युगों की चिन्ता, दुराशा, अनिद्रा, सिर की पीड़ा आदि कितने ही रोग इन मस्तकों से—इन हड्डियों के गोलकों से—निकल गये हैं। साथ ही साथ यह बात भी स्मरण आई कि कितने ही डाक्टर सिर के बाल न उड़ने के लिए औषधों का आविष्कार करते हैं और वे अपने आविष्कृत औषध का गुण-गान करते करते मर जाते हैं परन्तु इन मस्तकों का तो उधर ध्यान नहीं है, ये तो अपने में बाल उगाने के

लिए उन औषधों का व्यवहार नहीं करते। इसी प्रकार दन्तमञ्जन बनानेवाले भी विज्ञापन में अपने मञ्जन की लम्बी चौड़ी तारीफ़ हाँकते हैं; पर ये दन्त-पङ्क्तियाँ उन मञ्जनों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देतीं। ये तो अपने लिए मञ्जन नहीं मँगातीं।

जो हो, पर इस समय मेरे इस मस्तक के भीतर घर के पत्र की प्रतीक्षा विचर रही है। यदि घर का पत्र मिल जाय तो अवश्य ही इसमें थोड़ी बहुत प्रसन्नता पैदा होगी। यदि पत्र नहीं मिला तो इस अस्थि-कोटर—मस्तक—में दुःख नाम का एक पदार्थ उत्पन्न होगा, उस समय यह मालूम होने लगेगा कि मुझे यथार्थ ही कष्ट हो रहा है।

२३ अक्तूबर। स्वेज़ नहर के बीच से हम लोग जा रहे हैं। जहाज़ बहुत ही धीरे धीरे चलता है।

आज का दिन प्रकाश-मय और कुछ गर्म है। हम एक प्रकार के मीठे आलस्य के अधीन हो रहे हैं। योरप जाने से जो भाव उदित हुए थे वे इस समय बिलकुल ही नष्ट हो गये हैं। इस समय तो मेरी आँखों के सामने, मेरा वही धूप से तपा हुआ, थका और दरिद्र भारतवर्ष—मेरा वही भारतवर्ष के एक छोर पर स्थित, पृथिवी से अपरिचित, नदियों के कल कल शब्द से गूँज रहा बङ्गाल प्रान्त—मेरे उस कर्म-हीन बाल्यकाल, चिन्ता से जर्जर यौवन और निश्चेष्ट तथा निरुद्यम जीवन का स्मरण सूर्य की किरणों के प्रकाश में, तपे हुए वायु के झोंके में दूर की मरीचिका की तरह, झूल रहा है।

डेक पर बैठे बैठे मैं एक कहानियों की पुस्तक पढ़ रहा था।

बीच में एक बार उठकर जो मैंने देखा तो मालूम हुआ कि समुद्र के दोनों ओर मटमैले रङ्ग की बालू है तथा जल के समीप झाड़ और सूखे तृण खड़े हैं। हम लोगों के दाहनी ओर बालू के मैदान में अरबों का एक काफ़िला ऊँटों पर बोझ लादे चला जा रहा है। कड़ी धूप और तपी हुई मरु-भूमि में अरबों के नीले कपड़े और सफ़ेद पगड़ियाँ देख पड़ती हैं। कोई, एक स्थान पर, बालू के टीले की छाया में पैर फैला कर सोया हुआ है। कोई नमाज़ पढ़ता है और कोई ऊँटों की रस्सी पकड़ कर उन्हें आगे की ओर खींच रहा है। ऊँट आगे बढ़ना नहीं चाहता परन्तु वह बल-पूर्वक आगे बढ़ाया जा रहा है। सब मिला कर देखने से कड़ी धूप में अरब की मरु-भूमि का चित्र सा आँखों के सामने खिंच गया।

२४ अक्तूबर। हमारे जहाज़ की अमुक मिस देखने से टूटी हुई नाट्यशाला का एक अंश जान पड़ती है। टूटी हुई नाट्यशाला में न तो अभिनय ही होता है और न वह रहने ही के योग्य होती है। यह स्त्री है बड़ी तेज़। मालूम होता है, जवानी में इसने अनेक मनुष्यों पर तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग किया है। यद्यपि यह इस समय भी नाक-भौं चढ़ा कर बातें करती है, और तुरत के पैदा हुए बिलैया के बच्चे के समान क्रीड़ा-चतुर है, तथापि कोई भी युवक इसके साथ एक दो बातें करने के लिए मौक़ा नहीं ढूँढ़ता। नाच के समय इसको कोई भी नहीं बुलाता, और न भोजन के समय ही आदर-पूर्वक कोई इसके लिए भोजन परोसता है। इस की चञ्चलता शोभा-हीन है, तेज़ी ज्योति-रहित है; और प्रौढ़ता के साथ साथ स्त्रियों के मुँह पर जो एक प्रकार का स्नेह-मय प्रसन्न

और गम्भीर मातृभाव झलकता है वह भी इसमें नहीं। फिर इसे पूछे तो कौन पूछे ?

इधर अमुक मिस और अमुक मिस को देखो। दोनों कुमारियाँ पुरुषों को कैसे खेल खिला रही हैं। उन्हें और कोई काम नहीं है, किसी बात की चिन्ता नहीं है और कोई सुख भी नहीं है। उनके न मन है और न आत्मा। है केवल आँखों में चञ्चलता और मुँह में हँसी, बातचीत और उत्तर-प्रत्युत्तर।

२६ अक्तूबर। जहाज़ के एक दिन का वर्णन करना उचित जान पड़ता है।

प्रातःकाल डेक धोया गया है। वह इस समय भी गीला है। दो क़तारों में डेक की कुरसियाँ एक पर एक करके रक्खी गई हैं। नङ्गे पैर रात के कपड़े पहने पुरुष-गण, कोई अपने साथियों के साथ और कोई अकेले ही, बीच के मार्ग में घूम रहे हैं। क्रमशः जब आठ बजे और धीरे धीरे स्त्रियों का दल ऊपर जाने लगा, तब इन विलक्षण वेश-धारी पुरुषों का दल वहाँ से हटा।

स्नान करने के घर के सामने बड़ी भीड़ है। स्नान करने के घर केवल तीन ही हैं। हम सब लोग द्वार ही पर खड़े हैं और तौलिया तथा स्पञ्ज लिये किवाड़ खुलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। स्नानगृह में दस मिनट से अधिक रहने का नियम किसी के लिए भी नहीं है।

स्नान के पीछे वस्त्र आदि पहन कर मैं डेक पर गया। वहाँ प्रातःकालीन वायु-सेवन के लिए स्त्री-पुरुषों की भीड़ लगी है। स्त्रियों से टोपी उठा कर और परिचित मित्रों से सिर हिला हिला

कर लोग प्रातःकाल का प्रणाम कर रहे हैं; और, गरमी के अधिक-कम होने के बारे में अपना अपना मत प्रकट कर रहे हैं।

नव का घंटा बजा। भोजन भी तैयार हो गया। खाने की इच्छा रखनेवाले स्त्री-पुरुष डेक पर से नीचे उतर कर भोजन-गृह में जाने लगे। डेक पर कोई भी नहीं रह गया। केवल कुरसियाँ अपने मालिकों की राह देख रही हैं।

भोजन-गृह बहुत बड़ा है। बीच में दो बड़ी बड़ी टेबलें रक्खी हुई हैं और उनके दोनों ओर और भी छोटी छोटी कई टेबलें रक्खी हुई हैं। दाहनी ओर की एक छोटी टेबल पर जाकर हम सात आदमी दिन में तीन बार भोजन करते हैं। मांस-रोटी-फल-मूल-मिठाई-मदिरा और हँसी-मज़ाक़ तथा बातचीत से उस घर का कोना कोना परिपूर्ण हो उठता है।

भोजन समाप्त हो गया। भोजन-गृह से निकल कर लोग फिर ऊपर डेक पर जाने लगे। डेक पर जा कर अपनी अपनी कुरसी ढूँढ़ कर यथास्थान रखने में लोग व्यस्त हो गये। पर ढूँढ़ कर कुरसियों का पा लेना सहज न था। प्रातःकाल डेक धोने के समय किसकी कुरसी कहाँ रक्खी गई है, इसका कुछ ठीक ठिकाना नहीं।

किसी प्रकार कुरसी मिल भी गई तो उसके लिए स्थान नियत कर लेना और भी महाकठिन काम है। जहाँ हवा आती है, जहाँ धूप कम लगती है, जिसको जहाँ बैठने का अभ्यास है या जो जहाँ बैठना पसन्द करता है वह वहीं अपनी कुरसी रखने के अनेक प्रयत्न करता है। एक बार कुरसी रख देने पर दिन भर की चिन्ता जाती रहती है।

इसके पीछे वहाँ दूसरा दृश्य उपस्थित हुआ। किसी स्त्री की कुरसी नहीं मिली; वह उदास मुँह लिये दुखी होकर इधर उधर देखने लगी। किसी स्त्री ने अपनी कुरसी तो ढूँढ़ ली पर वह अपनी कुरसी जहाँ रखना चाहती थी वहाँ नहीं रख सकी। उस समय पुरुष-दल में से कोई उठा और रमणी-सहायता के व्रत में तथा कुरसी उठाने के कार्य में लग गया। कार्य सिद्ध होने पर उसको पारितोषिक के रूप में मधुर धन्यवाद मिला।

तदनन्तर सब अपनी अपनी कुरसियों पर बैठ गये। धूम-पान करनेवाले चुरुट पीने के कमरे में अथवा डेक के पीछे की ओर जाकर बैठे और बड़े प्रेम से चुरुट पीने लगे। स्त्रियों में कोई तो उपन्यास पढ़ती है और कोई कोई सिलाई का काम कर रही हैं। बीच बीच में कोई युवक थोड़ी देर के लिए आकर उनके पास बैठ जाता है और भ्रमर के समान कान में कुछ गुन गुन करके चलता बनता है।

भोजन के कुछ पच जाने पर एक दल में "कायट्स" खेल शुरू होगया। दो बल्लियाँ दस दस हाथ के फ़ासले पर खड़ी की गईं। एक एक स्त्री और एक एक पुरुष आमने सामने खड़े हुए। वे पारी पारी से अपने अपने स्थान पर खड़े रहकर 'उबके' के समान रस्सी के फंदे दूसरी ओर की बल्ली में डालने की चेष्टा करने लगे। जो पक्ष पहले इक्कीस बार सफलता प्राप्त कर लेगा उसी की जीत समझी जायगी। खेलनेवाली स्त्रियाँ कभी जीतने की खुशी से और कभी निराश होकर चिल्ला उठती हैं। कोई खड़ा खड़ा देख रहा है, कोई गिनती कर रहा है, कोई खेल में शामिल हो रहा है और कोई कोई पढ़ने में और बातचीत करने में लगा हुआ है।

एक बजने के समय और एक घंटा बजा। यह दूसरी बार भोजन की सूचना देता है। भोजन करके सब लोग डेक पर चले आये। दो बार भोजन करने के कारण तथा धूप के कारण बड़ा आलस्य मालूम होने लगा। समुद्र शान्त है, आकाश नीला और निर्मल है। धीरे धीरे हवा चल रही है। कुरसी पर बैठ कर उपन्यास पढ़ते पढ़ते बहुत सी नीली आँखें निद्रा के अधीन हो गईं। केवल एक दो आदमी शतरज, बैकगैमन या ड्राफ्ट खेल रहे हैं। कितने ही युवक तो इतने कर्मनिष्ठ और उत्साही हैं कि वे दिन भर कायट्स खेलने ही में लगे रहे। कोई कोई स्त्री कागज़-कलम लिये एकाग्र हो कर पत्र लिख रही है और कोई कारीगर और दिल्लगीबाज़ स्त्री सोये हुए अपने साथियों का चित्र खींचने की चेष्टा कर रही है।

धीरे धीरे सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगे। गरमी भी कम होने लगी। उस समय धूप से घबराये हुए मनुष्य नीचे गये और वहाँ जाकर उन लोगों ने रोटी, मक्खन, मिठाई और चाय आदि खा-पी कर शरीर का आलस्य दूर किया। तदनन्तर फिर वे डेक पर उपस्थित हुए। फिर युगल-जोड़ियाँ बड़े उत्साह से घूमने लगीं। बातचीत में बीच बीच उनकी मृदु मधुर हँसी का शब्द भी सुन पड़ने लगा। दो-चार पाठिकाएँ उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद से किसी तरह अपने को अलग नहीं कर सकतीं—वे सन्ध्या के धुँधले प्रकाश में एकाग्रता के साथ नज़र गड़ाये नायक-नायिका का अन्तिम परिणाम जानने के लिए उत्सुक हो रही हैं।

दाहनी ओर का आकाश सुवर्ण के समान प्रकाशित हो रहा

है और समुद्र का जल अग्नि के समान प्रतीत हो रहा है। इसी समय सूर्य भी अस्ताचल को चले गये। बाईं ओर सूर्यास्त होने के पहले ही से चन्द्रोदय हो गया है। जहाज़ से पूर्व की ओर चन्द्रमा की किरणें समुद्र में पड़ कर विलक्षण शोभा धारण कर रही हैं। नील समुद्र पर पूर्णिमा की सन्ध्या अपना प्रकाश फैला रही है और हम लोगों को उस प्राचीन प्रकाश-मय भारतवर्ष का मार्ग बतला रही है।

जहाज़ के डेक पर और प्रत्येक कमरे में बिजली की रोशनी हो गई। छः बजने के समय सन्ध्या के भोजन के लिए घंटा बजा। आध घंटे के पीछे दूसरा घंटा बजा। सब लोग भोजन-गृह में गये और क़तार की क़तार स्त्री-पुरुष बैठ गये। कोई काले कपड़े पहने है, कोई रंगीन। और, किसी का शुभ्र वक्ष आधा खुला हुआ है। ऊपर क़तार की क़तार बिजली की रोशनी जगमगा रही है। धीमी बातचीत के साथ काँटे और चम्मच का ठन् ठन् ठन् ठन् शब्द हो रहा है और भोजन की विचित्र सामग्रियाँ नौकरों के हाथ से नीरव जल-प्रवाह की तरह आ-जा रही हैं

भोजन के बाद डेक पर जाकर लोग ठंढी हवा खाने लगे। कहीं अँधेरे में एक कोने पर कुरसी रख कर युवक-युवती आपस में बातें कर रहे हैं। कहीं दो साथी जहाज़ के बरामदे पर खड़े हो कर झुके हुए गुपचुप बातों में लगे हुए हैं। कोई कोई जोड़ी बात-चीत करती हुई डेक के प्रकाश और अन्धकार के बीच होकर जाती हुई कभी देख पड़ती है और कभी ग़ायब हो जाती है। कहीं पाँच-सात स्त्री-पुरुष और जहाज़ के कर्मचारी जमा होकर आमोद-प्रमोद कर रहे हैं। कभी कभी वे बड़े ज़ोर से हँसने लगते हैं। आलसी

मनुष्यों में से कोई बैठा है, कोई खड़ा है, और कोई आधा लेटा हुआ चुरुट पी रहा है। कोई चुरुट पीने के कमरे में अथवा भोजन-गृह में ताश खेल रहे हैं। वहीं ह्निस्की और सोडा की बोतलें रक्खी हुई हैं। इधर संगीतशाला में दो-चार संगीत-प्रेमी मनुष्य एकत्रित होकर गाते-बजाते हैं।

क्रमशः साढ़े दस बजे। स्त्रियाँ नीचे उतर गईं। डेक पर अन्धकार होगया। वहाँ की रोशनी बुझा दी गई। चारों ओर आधी रात के समय का सन्नाटा, चन्द्रमा का प्रकाश और समुद्र की कल-कल ध्वनि फैल गई।

२७ अक्तूबर। लाल समुद्र में गरमी धीरे धीरे बढ़ने लगी। डेक पर दिन भर स्त्रियाँ प्यासी हरिणी के समान व्याकुल होकर पड़ी रहती हैं। वे बड़े ही कष्ट से पंखा डुला रही हैं। बीच बीच में युवकगण युवतियों के समीप जाकर कुशल-प्रश्न पूछते हैं और वे आधी बन्द आँखों को किसी तरह खोलती हैं और बनावटी रूखी हँसी से तथा गर्दन के इशारे से अपने शरीर की शिथिलता जताती हैं। जितना ही अधिक वे भोजन करती तथा नीबू का शरबत पीती हैं उतना ही अधिक शरीर में शिथिलता और आलस्य बढ़ता है। निद्रा से आँखें बन्द हुई जाती हैं और शरीर की शिथिलता बढ़ती जाती है।

२८ अक्तूबर। आज हमारा जहाज़ अदन पहुँच गया।

२ नवम्बर। अब हम भारतवर्ष के समीप आ गये हैं। कल बम्बई पहुँच जाने की बात है।

आज का प्रातःकाल बड़ा ही सुहावना है। ठंढी हवा चल

रही है। फेने से भरा समुद्र मानों नाच रहा है। धूप निकल आई है। कोई खेलता है, कोई उपन्यास पढ़ता है, कोई बातचीत करता है और कोई संगीतशाला में बैठा गा रहा है। भोजनगृह में भोजन की तैयारी हो रही है। एक छोटे केबिन में एक बूढ़ा यात्री मरा पड़ा है।

सन्ध्या को आठ बजने के समय डिलन साहब की मृत्यु हुई। आज ही सन्ध्या को एक नाटक का खेला जाना निश्चित हुआ था।

३ नवम्बर। अन्त्येष्टि-संस्कार करने के बाद डिलन का मृत-शरीर समुद्र में फेंक दिया गया। आज का दिन हम लोगों की समुद्र-यात्रा का अन्तिम दिन है।

बहुत रात गये बम्बई बन्दर पर जहाज़ पहुँचा।

४ नवम्बर। जहाज़ से उतर कर भारतवर्ष की भूमि पर मैंने पैर रक्खा। आज का दिन साधारणतः बहुत ही आनन्द-मय मालूम होता है। हाँ, एक बात का झंझट अवश्य हो गया है। मैं अपना कैश-बक्स जहाज़ के केबिन ही पर भूल आया। इस कारण संसार के आनन्दमय स्वरूप में बहुत उलट-फेर हो गया। मैं होटल से शीघ्र ही जहाज़ पर गया और अपना कैश-बक्स उठा लाया। इसी बक्स के भूल जाने की सम्भावना से कल मन बेचैन हो गया था। मैंने अपने मन को समझाया कि बक्स भूला नहीं है। उस समय मन ने कहा, क्या पागल हो गये हो, क्या मुझको तुम इतना मूर्ख समझते हो। पर आज प्रातःकाल मैंने अपने मन का बड़ा तिरस्कार किया। वह बेचारा सिर नीचा किये चुपचाप रह गया। इसके बाद जब बक्स मिल गया तब मैं उसे पुचकारता होटल में

गया । स्नान करने के बाद बड़ा आनन्द मालूम होता है । हाँ, यहाँ इस घटना को लेकर मेरी बुद्धि पर कटाक्ष करके मेरा उपहास करनेवाले मेरे मित्र कोई भी उपस्थित नहीं हैं । यह एक सौभाग्य की बात है । आज ही रात को मैं कलकत्ता जानेवाली गाड़ी पर बैठा, यद्यपि मैं अपनी तकिया होटल ही में भूल आया हूँ तथापि सुख की नींद में विशेष विघ्न नहीं हुआ ।

पञ्चभूत

परिचय

रचना के सुभीते के लिए मैं अपने पाँच मनुष्यों को "पञ्च-भूत" नाम से लिखूँगा :—क्षिति, अप्, तेज, मरुत्, व्योम—के नाम से लिखूँगा ।

कोई बनावटी नाम रखने से मनुष्य को बदल डालना होता है । जैसे तलवार की म्यान है वैसा मनुष्यों का नाम भाषा में ठीक ठीक मिलना कठिन है । सब से कठिन तो यह है कि इन पञ्चभूतों के साथ पाँच मनुष्यों का मिलान कैसे किया जाय ?

मैं इनका ठीक ठीक मिलान करना भी नहीं चाहता । क्योंकि मैं किसी अदालत में हाज़िर नहीं होता । पाठकों की अदालत में लेखक के लिए केवल यही धर्म की शपथ होती है कि सत्य ही बोलेंगे । पर वह सत्य मैं कुछ बना कर कहूँगा ।

अब मैं इन पञ्चभूतों का परिचय अपने पाठकों को कराता हूँ । इनमें श्रीमती क्षिति सबसे भारी हैं । अधिकांश विषयों में

उनकी अटल अचल धारणा है। वे जिसको प्रत्यक्ष रूप से एक दृढ़ आकार में पाती हैं और आवश्यकता के अनुसार उसे अपने काम में भी ला सकती हैं, वही उनकी दृष्टि में सत्य पदार्थ है। वे कहती हैं—जो आवश्यक ज्ञान हैं उन्हीं का भार वहन करना यथेष्ट कठिन है। धीरे धीरे बोझ भारी होता जाता है और शिक्षा भी असाध्य होती जाती है। पहले के समय में जब ज्ञान-विज्ञान के अङ्ग-प्रत्यङ्ग इतने पुष्ट नहीं हुए थे और जिस समय लोगों को सीखने के लिए भी बहुत थोड़ी ही बातें थीं उस समय के लोग शौकीनी की शिक्षा भी ग्रहण करते थे। पर आज वह समय नहीं है। छोटे छोटे बच्चों को अलङ्कार, वेश-भूषा आदि पहनाया जा सकता है, इसमें कोई हानि नहीं है। उनको खाने-पीने के सिवा और काम ही क्या है? पर जिनकी अवस्था बड़ी होगई है, जिनको इधर उधर घूम फिर कर काम-काज करने पड़ते हैं, उनके पैर में नूपुर, हाथ में कङ्कण तथा सिर पर मोर-पुच्छ आदि सजाने से कैसे काम चल सकता है? उनको तो कछनी काछ कर और सिर की रक्षा का कोई उपाय करके वेग से आगे बढ़ना होगा। इसी कारण सभ्यता की उन्नति के साथ साथ अलङ्कारों का माहात्म्य घटता जाता है। उन्नति का अर्थ ही यह है कि जो आवश्यक है उसका ग्रहण किया जाय और जो अनावश्यक है उसका त्याग।

श्रीमती अप् (जिनको मैं नदी कहूँगा) क्षिति के तर्कों का कोई उचित उत्तर नहीं दे सकीं। वे बार बार यही कहने लगीं—"नहीं नहीं, यह बात कभी सत्य नहीं है। यह बात हमारे मन में नहीं बैठती।" वे बार बार "नहीं नहीं" कहती हैं। वे न तो

कोई बात कहती हैं और न कोई युक्ति ही बतलाती हैं, केवल बार बार यही कहती हैं—नहीं नहीं, यह बात ठीक नहीं है। हम अनावश्यक वस्तुओं से प्रेम करती हैं अतएव अनावश्यक वस्तु भी हमारी समझ से आवश्यक हो है। अनावश्यक वस्तुओं से हमारा कोई लाभ नहीं होता, तथापि उनपर हमारा स्नेह है। वे हमारे स्नेह, प्रेम, दया तथा स्वार्थ-त्याग की इच्छा को उत्तेजित करती हैं। पृथिवी को क्या उन प्रेम और स्नेह आदि की आवश्यकता नहीं है? श्रीमती नदी की बातों को सुन कर श्रीमती क्षिति गद्गद हो गईं। क्या वे युक्ति-पूर्ण उत्तर द्वारा श्रीमती नदी को परास्त कर सकती हैं?

श्रीयुत तेज (इनको मैं दीप्ति नाम से लिखूँगा) म्यान से निकाली तलवार के समान चमकते हुए उठे और उन्होंने अपने तीक्ष्ण और सुन्दर स्वर में क्षिति से कहा—छिः, तुम समझती हो कि इस संसार में सब काम अकेले मैं ही करती हूँ। तुम जिन पदार्थों को अनावश्यक समझ कर निकाल बाहर करना चाहती हो वे ही पदार्थ हम लोगों के लिए आवश्यक हो सकते हैं। तुम आचार-व्यवहार, बातचीत, विश्वास, शिक्षा तथा शरीर से भी अलङ्कार को हटा देना चाहती हो। क्योंकि सभ्यता के अधिक बढ़ जाने से स्थान और समय की बड़ी कमी हो गई है। पर इन अलङ्कारों को दूर कर देने से हम लोगों के बहुतेरे पुराने काम बन्द हो जायँगे। हम लोग कितने प्रयत्न, कितने आयास, कितनी शिष्टता, कितनी मधुरता आदि से अच्छे अवसर ढूँढ़ते हैं और अपना संसार चलाते हैं। हम लोग मीठी हँसी हँसते हैं,

विनय से बोलते हैं, लज्जा-पूर्वक काम करते हैं, और बड़े यत्न से जिसको जहाँ पहनने से शोभा होती है उसको वहीं पहनते हैं, इसीलिए हम लोगों को माता की आवश्यकता है, और तुम स्त्रियों का भी यही काम है। यदि सचमुच सभ्यता के गर्व से, आवश्यक ज्ञान-विज्ञान आदि को छोड़कर, और सब बातों की उपेक्षा कर दी जाय—वे बातें त्याग दी जायँ—तो इस समस्त जाति की क्या दुर्दशा होगी, इसकी कल्पना तुमने की है? उस समय यह समूची जाति अनाथ बालक के समान असहाय हो जायगी।

श्रीयुत वायु (इनको समीर नाम से लिखा जायगा) ने हँस कर इन सब बातों को उड़ा दिया। तदनन्तर उन्होंने कहा—श्रीमती क्षिति की बातें जाने दो। चारों ओर से बड़े ध्यान और विचारपूर्वक सत्य का अन्वेषण करने के समय उसके स्थिर मनोराज्य में एक भयानक भूकम्प उपस्थित होता है, और वह उसके बड़े यत्न से बनाये भवनों को तोड़ फोड़ देता है। अतएव उसको यह कहना ही चाहिए कि देवता से लेकर कीट पर्यन्त सभी मिट्टी से उत्पन्न हुए हैं। यदि कोई इस बात को न मानना चाहे तो उसको उचित है कि वह पृथिवी पर से दूर हो जाय।

श्रीयुत व्योम थोड़ी देर तक आँखें मूँद कर विचार करने के बाद बोले—यदि यथार्थ मनुष्य की बात कही जाय तो यह अवश्य कहना पड़ेगा कि जो अनावश्यक पदार्थ हैं वे ही मनुष्यों के लिए सब से अधिक आवश्यक हैं। जिन पदार्थों से मनुष्य को व्यवहार में सहायता मिलती है, जिनसे उसके काम निकलते हैं, पेट भरता है, उन्हीं पदार्थों से मनुष्य घृणा करता है। इसी कारण

भारत के महर्षियों ने क्षुधा, तृष्णा, शीत, ग्रीष्म आदि द्वन्द्वों की उपेक्षा का उपदेश देकर स्वाधीनता का प्रचार किया है। बाहरी पदार्थों को विशेष आवश्यक समझना जीवात्मा का अपमान करना है। यदि सभ्यता के सर्वोच्च सिंहासन पर आवश्यकता का ही अभिषेक किया जाय और दूसरे किसी 'प्रधान' की सत्ता स्वीकार न की जाय तो वह सभ्यता सम्पूर्ण सर्वोच्च सभ्यता नहीं कही जा सकती। वह सभ्यता अधूरी है।

श्रीयुत व्योम की बातें किसी ने भी ध्यान-पूर्वक नहीं सुनीं। परन्तु व्योम के मन में कष्ट न हो, इस भय से श्रीमती नदी सुनने में सावधानता दिखा रही थीं। नदी के मन में व्योम की बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा था। नदी उसे पागल समझ कर उस पर दया करती थी। परन्तु व्योम की बातों को तेज नहीं सह सके। वे बीच ही में व्योम की बात काट देना चाहते थे। व्योम की बातों का यथार्थ भाव न समझ सकने के कारण तेज का उनपर आन्तरिक विद्वेष है।

परन्तु मैं श्रीयुत व्योम की बातों को उड़ा देना नहीं चाहता। मैंने उनसे कहा—प्राचीन ऋषियों ने तपस्या के द्वारा जो सुभीता अपने लिए किया था, विज्ञान उसी सुभीते का सर्व-साधारण में प्रचार करता है। वह उस सुभीते से लाभ उठाने का सर्व-साधारण को अवसर देता है। भूख, प्यास, जाड़ा, गर्मी तथा मनुष्य के प्रति जड़-पदार्थों के और भी जो अनेक प्रकार के अत्याचार हैं, उन्हीं अत्याचारों को दूर करना विज्ञान का उद्देश्य है। विज्ञान जड़-पदार्थों के भय से उनसे पीछा छुड़ा कर वन में जाने और वहाँ

अपने मनुष्यत्व को विकसित करने का उपदेश नहीं देता। किन्तु, वह जड़-पदार्थों को अपना दास बना कर उन्हें अपने वश में कर लेता है, उनपर मनुष्य का शासन स्थापित करता है। क्या यह मनुष्य का अपमान करना कहा जा सकता है? अतएव सदा के लिए जड़ के चंगुल से निकल कर स्वतन्त्र आध्यात्मिक सभ्यता प्राप्त करने के लिए इस बात की विशेष आवश्यकता है कि बीच में वैज्ञानिक साधना की जाय।

श्रीमती क्षिति अपने विरोधियों के मतों का खण्डन करने के लिए युक्ति दिखलाना आवश्यक नहीं समझतीं। इसी प्रकार व्योम भी एक बात कह कर चुप होगये। चाहे कोई कुछ भी क्यों न कहे पर उससे व्योम का विलक्षण धैर्य तनिक भी विचलित नहीं होता। वे चुपचाप हैं। मेरी बातों पर भी व्योम ने कुछ ध्यान नहीं दिया। क्षिति जहाँ थीं वहीं अचल बनी रहीं और व्योम भी अपनी गम्भीरता बनाये रखने में तत्पर रहे।

यही मैं और मेरे पञ्चभूत हैं। एक दिन श्रीमती दीप्ति ने मुझसे कहा—तुम डायरी क्यों नहीं लिखते?

स्त्रियों में कुछ अन्ध-संस्कार भी रहते हैं। श्रीमती दीप्ति के हृदय में भी यह संस्कार बड़ा प्रबल था कि मैं कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हूँ। वे अपने को एक अति उच्च व्यक्ति समझती थीं। मैंने भी उनके इस संस्कार को दूर करने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया।

वायु ने मेरी पीठ पर हाथ रख कर कहा,—"क्यों, लिखते क्यों नहीं, लिखो न।" क्षिति और व्योम दोनों चुप रहे।

मैंने कहा—डायरी लिखने में एक बहुत बड़ा दोष है। इससे—

दीप्ति ने घबरा कर कहा—दोष है, रहने दो, तुम लिखो।

नदी ने बड़े ही मधुर स्वर में कहा—क्या दोष है? भला मैं भी तो सुन लूँ।

मैंने कहा—डायरी लिखना एक प्रकार का कल्पना-मय जीवन है। पर जब वह लिख कर तैयार की जाती है तब उसका प्रभाव हमारे इस सत्य जीवन पर भी अवश्य ही पड़ता है। एक मनुष्य विचार-पूर्वक अनेक कार्यों द्वारा इस संसार में एक मार्ग तैयार कर रहा है, जिसकी छाया संसार पर पड़ रही है। साथ ही वह डायरी भी लिखता जाय, तो संसार में एक और दूसरा जीवन भी उत्पन्न हो जायगा।

क्षिति ने कहा—डायरी को तुम दूसरा जीवन क्यों कहते हो, यह बात मैं अभी तक नहीं समझ सकी।

मैंने कहा—मेरे कहने का यही प्रयोजन है कि तुम्हारा जीवन एक ओर मार्ग बनाता जा रहा है। यदि तुम उसीके साथ क़लम से एक दूसरी रेखा बना दोगी तो उससे ऐसी अवस्था उत्पन्न होने की सम्भावना है कि जब इस बात का निर्णय करना कठिन हो जायगा कि क्या यह रेखा तुम्हारे जीवन के साथ उत्पन्न हुई है, और यह तुम्हारे जीवन के बीच से होकर निकल गई है, अथवा तुम्हारा जीवन ही इस रेखा को बीच से काटता हुआ निकल गया है। जीवन स्वभाव से ही रहस्य-मय है। जीवन में कई बार आत्मा के विरुद्ध, इच्छा के विरुद्ध तथा और भी परस्पर-विरुद्ध अनेक कार्य करने पड़ते हैं। इस तरह जीवन बहुत प्रकार की बातों के

सम्मिलन से पूर्ण होता है। पर लिखने के लिए एक मार्ग नियत रहता है। अतएव लेख के द्वारा सब विरोधों का परिहार, सब अव्यवस्थाओं की व्यवस्था नहीं की जा सकती। वह केवल कुछ ही बातें प्रकाशित करता है। एक कोई घटना हुई। लेख में उसके युक्ति-संगत सिद्धान्त का ही उल्लेख करना पड़ेगा। वह सिद्धान्त सच्चा सिद्धान्त नहीं होगा; लेख के नियमानुसार वह बनाया हुआ ही होता है। जीवन को भी उसी बनावटी सिद्धान्त का अनुसरण करना पड़ेगा।

अपनी बातों को साफ़ साफ़ समझा देने के लिए मैं व्याकुल हो रहा था। यह देख कर दया-पूर्वक नदी बोली कि जो तुम कहना चाहते हो वह मैं समझ गई हूँ। स्वभाव से ही हम लोगों के अधीश्वर अपनी गुप्त कर्मशाला में बैठ कर किसी अपूर्व नियम के अनुसार हम लोगों का जीवन बनाते हैं। परन्तु डायरी लिखने से जीवन-निर्माण का भार दो मनुष्यों के अधीन हो जाता है। कितनी ही डायरियाँ जीवन के अनुसार बनती हैं और कितने ही जीवन डायरी के अनुसार बनते हैं।

नदी जिस सहनशीलता या धैर्य के साथ ध्यान-पूर्वक मेरी बातें सुन रही थी, उसे देख कर जान पड़ता था कि यह हमारी बातों को सुनने का प्रयत्न कर रही है। पर उसी समय यह भी भासित हो गया कि इसने बहुत पहले ही मेरी बात को समझ लिया है।

मैंने कहा—हाँ, यही बात है।

दीप्ति ने कहा—इसमें हानि क्या है?

इसके उत्तर में मुझे बहुत कुछ कहना था। पर मैंने देखा कि

नदी न मालूम क्या कहने के लिए इधर उधर कर रही है, इसी समय यदि मेरी वक्तृता शुरू हो जाती तो अवश्य ही उसको रुक जाना पड़ता। अतएव मैंने चुप रहना ही उचित समझा। थोड़ी देर के बाद वह बोली—सुनो भाई, मैं तो इस विषय में यह समझती हूँ कि प्रतिदिन हम लोगों को जो अनुभव प्राप्त होता है वह यथार्थ रूप से लिखा नहीं जा सकता। लिखने से उसकी यथार्थता जाती रहती है। हम लोगों के सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि एक सामान्य कारण से भी बहुत बढ़ जाते हैं। कभी कभी तो ऐसा भी देखा जाता है कि जिसको हम लोग बराबर सहते रहते हैं वही एक दिन असह्य हो जाता है। जो अपराध नहीं है उसी को एक दिन हम लोग अपराध समझने लगते हैं। एक साधारण कारण से उत्पन्न हुआ दुःख भी कभी कभी हम लोगों के लिए बड़ा भारी दुःख हो जाता है। हम लोग उस छोटे से दुःख को भी बहुत महत्व देने लग जाते हैं। कभी कभी हम लोगों की तबियत अच्छी न रहने के कारण भी हम लोग दूसरों के साथ अन्याय विचार कर बैठते हैं। उसमें जो अपरिमित होता है, जो सचमुच अन्याय और असत्य होता है वही धीरे धीरे हम लोगों के मन से हट जाता है। इस प्रकार की कितनी ही जीवन की अधिकताएँ दूर हो जाती हैं, शेष रहता है केवल जीवन का साधारण भाव। उसी पर हम लोगों का पूर्ण और सच्चा अधिकार है। इसके सिवा और भी अनेक बातें अर्ध-व्यक्त आकार से हम लोगों के हृदय में पैदा होती और लीन होजाती हैं। पर उन सबका प्रकाशित किया जाना आवश्यक नहीं। क्योंकि वैसा करने से मन की सुकुमारता में

धब्बा लगने का भय है। डायरी लिखने के लिए हम लोग अपने जीवन की तुच्छता को बनावटी उपायों द्वारा बहुत बड़ा बना लेते हैं और बहुत सी कच्ची बातों को प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं। पर उसका फल यह होता है कि या तो वे बातें नष्ट ही हो जाती हैं या विकृत हो जाती हैं।

सहसा नदी को चेतना हुई। वह बहुत देर से बोल रही है और वह भी ओजस्विता के साथ। इस कारण उसका मुखमण्डल भी लाल हो गया है। उसने मुँह फेर कर कहा—न मालूम मैं ठीक कह सकी हूँ कि नहीं। मुझे यह भी नहीं मालूम कि मैंने यह बात ठीक ठीक समझी है कि नहीं।

दीप्ति कभी किसी बात में रत्ती भर इधर उधर नहीं करती। वह एक प्रबल उत्तर देने के लिए उद्यत हुई। यह देख कर मैंने कहा—तुमने ठीक समझा है। मैं भी यही बातें कहनेवाला था। पर मैं इस प्रकार अच्छी तरह कह सकता या नहीं, इस विषय में मुझे भी सन्देह है। श्रीमती दीप्ति की यह बात स्मरण रखना चाहिए कि जिस घर में हम लोग जाते हैं, समय पाकर, उसे हम लोगों को छोड़ना पड़ता है। कमाने में खर्च भी करना पड़ता है। जीवन के बहुत से अंशों को भूल कर, छोड़ कर, तथा नष्ट कर, हम लोगों को आगे बढ़ना पड़ता है। प्रत्येक बात, प्रत्येक घटना और प्रत्येक भाव को जो पकड़ कर रखना चाहता है वह महाअभागी है।

दीप्ति ने मुसकुरा कर, हाथ जोड़ कर, कहा—मुझसे यह बड़ा भारी अपराध हो गया कि मैंने आपसे डायरी लिखने के लिए कहा। क्षमा कीजिए, अब कभी ऐसा नहीं कहूँगी।

श्रीमान् वायु ने विचलित होकर कहा—ऐसी बात भी कही जाती है! इस संसार में अपराध स्वीकार करना बड़ी भूल की बात है। लोग समझते हैं कि अपना अपराध स्वयं स्वीकार कर लेने से विचारक की दृष्टि में अपराध की मात्रा कम हो जाती है। पर बात ऐसी नहीं है। दूसरे के दोषों का विचार करना तथा उसका तिरस्कार करना, इस संसार में सब सुखों से बढ़ कर सुख समझा जाता है। तुम अपने अपराध को—जितना चाहो,—बढ़ा कर कहो, पर कठोर-हृदय विचारक उन सब अपराधों को और भी मज़बूती से पकड़ कर सुख पाता है। मैं सोच रहा था कि मेरे लिए कौन मार्ग उत्तम है, मैं किस मार्ग का अनुसरण करूँ। इस समय मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं डायरी लिखा करूँगा।

मैंने कहा—डायरी लिखने के लिए मैं भी तैयार हूँ, पर उसमें मैं अपनी बात न लिखूँगा। ऐसी बात लिखूँगा जो हम सब लोगों की होगी। यही प्रतिदिन हम लोग जिन बातों की आलोचना करते हैं—

यह सुनकर नदी कुछ डर सी गई। वायु ने हाथ जोड़ कर और दुहाई देकर कहा—यदि तुम सब बातें लिखोगे तो मैं घर से सब बातें स्मरण करके आया करूँगा और प्रति दिन कह जाऊँगा। यदि किसी दिन बात कहते कहते कोई बात भूल जायगी तो फिर घर जाकर वह बात स्मरण कर आया करूँगा। इससे फल यह होगा कि बातें तो बहुत थोड़ी होंगी परन्तु परिश्रम बहुत अधिक बढ़ जायगा। यदि तुम बिल्कुल सच्ची ही बातें लिखोगे तो कहो मैं तुम्हारे साथ से नाम कटा कर चला जाऊँ।

मैंने कहा—अरे नहीं, मैं सत्य के अनुरोध की रक्षा करूँगा—

मित्र के अनुरोध का पालन करूँगा। तुम लोग किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। मैं तुम लोगों के मुख से बनाकर बातें कहलवाऊँगा।

क्षिति ने अपनी आँखें फाड़कर कहा—यह तो और भी भयानक बात है। मैं तो यह ठीक ठीक समझती हूँ कि तुम लोगों के हाथ जिस दिन क़लम जायगी उस दिन तुम सब कुयुक्ति-पूर्ण बातें मेरे मुँह से कहलाओगे और उनके अकाट्य उत्तर अपने मुँह से दोगे।

मैंने कहा—जिसके सामने मैं ज़बानी तर्क में हार जाता हूँ, उससे अवश्य ही उसका बदला लेख के द्वारा लूँगा। यह बात मैं पहले ही से स्पष्ट कहे देता हूँ कि तुमने जितना अत्याचार किया है और तुमसे जितनी हार मुझे सहनी पड़ी है उसका बदला अब चुकाऊँगा।

सब सहन करनेवाली क्षिति ने कहा—अच्छा, ऐसा ही सही।

व्योम ने कोई बात तो नहीं कही, पर वह कुछ मुसकुराये अवश्य। उस मुसकुराने का गम्भीर अर्थ आज तक मैं नहीं समझ सका।

सौन्दर्य का सम्बन्ध

वर्षा ऋतु में नदी चारों ओर फैल गई है, और उसका जल खेतों में भी आ गया है। आधे डूबे हुए धानों पर से हम लोगों की नाव सर सर करती चली जा रही है।

समीप ही ऊँची भूमि पर केला, कटहल, आम, बाँस और पीपल के बड़े बड़े पेड़ हैं। उन्हीं के बीच में एक चहार-दीवारी दीख पड़ती है। उसमें एक मकान है और उसके पास ही टीन से छाये हुए छोटे छोटे घर हैं।

वहाँ शहनाई और ढोलक आदि बज रहे हैं; जिनका शब्द यहाँ तक सुन पड़ता है। शहनाई बहुत ही बेसुरी बज रही है; शहनाईवाले बड़ी बेदर्दी के साथ एक गीत के अन्तरे की आवृत्ति बार बार कर रहे हैं। और ढोलक वाले? उनकी तो बात ही न पूछिए। मालूम होता है, वे एकाएक विना कारण ही पागल होकर ढोलक पीट रहे हैं और मानों वायु-जगत् में उलट पलट कर देना चाहते हैं।

नदी ने समझा कि पास ही किसी के यहाँ आज ब्याह होने वाला है। अतएव वह बड़ी उमङ्ग से खिड़की खोलकर वृक्षों से घिरे हुए स्थान की ओर बड़ी उत्सुकता के साथ देखने लगी।

घाट पर एक नाव बँधी हुई थी। उस पर मल्लाह बैठा था। मैंने उससे पूछा—क्योंरे, यह बाजा क्यों बजता है? उसने उत्तर दिया कि आज बाबू का पुण्याह है।

ब्याह नहीं, पुण्याह है, यह सुनकर नदी कुछ उदास हो गई। वह उस वृक्षों से घिरे हुए ग्राम के मार्ग में कहीं पर पालकी में वर-वेशधारी किशोरावस्था के किसी पुरुष अथवा लज्जा-मण्डिता रक्ताम्बर-धारिणी नव-वधू को देखना चाहती थी।

मैंने कहा—पुण्याह का अर्थ ज़मींदारी के वर्षारम्भ का पहला दिन है। आज सभी असामी, जिसकी जैसी इच्छा तथा हैसियत होगी उसीके अनुसार, कुछ रुपये लेकर बड़े ठाट बाट से बैठे हुए ज़मींदार के नायब के सामने उपस्थित होंगे। वे रुपये माल-गुज़ारी में वसूल नहीं दिये जाते। ऐसा नियम ही नहीं है। आज ज़मींदार की भेंट में रुपयों का देना केवल एक प्रकार का

आनन्द का काम है। इसका कारण एक ओर तो नीच लोभ है और दूसरी ओर किसी का ख़ौफ़ न होना है। जिस प्रकार प्रकृति-राज्य में तरु-लता आदि बड़े प्रेम, आनन्द और उत्साह से वसन्त को पुष्पाञ्जलि अर्पण करते हैं, और वसन्त सञ्चित कर रखने की इच्छा से उसकी गणना नहीं करता, वैसी ही बात यहाँ भी है।

दीप्ति ने कहा—रुपया वसूल किया जा रहा है, तो इसमें बाजा बजाने की क्या आवश्यकता है?

क्षिति ने कहा—जिस समय बकरे का बच्चा बलि देने के लिए ले जाया जाता है उस समय क्या उसको माला नहीं पहनाई जाती और बाजा नहीं बजाया जाता? आज मालगुज़ारी-देवी के आगे बलिदान का बाजा बज रहा है।

मैंने कहा—इस दृष्टि से देखा जाय तो ठीक हो सकता है। पर जो बलि देना आवश्यक ही समझा जाय तो बिलकुल पशु की तरह पशु-हत्या न कर उसमें, जहाँ तक हो सके, उच्च भाव लाने का प्रयत्न करना ही अच्छा है।

क्षिति ने कहा—मेरी तो यह राय है कि जिसका जो सच्चा भाव है उसी की रक्षा होनी चाहिए। कभी कभी नीच से नीच कामों में भी उच्च भाव और कभी कभी ऊँचे कामों में भी नीच भाव दिखाया जा सकता है।

मैंने कहा—भावों का सत्य और मिथ्या होना विशेष कर भावना पर निर्भर है। मैं इस वर्षा की भरी नदी को एक भाव से देखता हूँ और दूसरा दूसरे भाव से देखता है। मेरा भाव बाल भर भी मिथ्या है, यह बात मैं कभी नहीं मान सकता।

वायु ने कहा—बहुत से मनुष्य भावों के सत्य और मिथ्या होने का ज्ञान उनके परिमाण के अनुसार करते हैं। जो अधिक स्थूल है उसमें सत्यता का अंश भी अधिक है। सुन्दरता की अपेक्षा धूल सत्य है, स्नेह की अपेक्षा स्वार्थ सत्य है और प्रेम की अपेक्षा भूख सत्य है।

मैंने कहा—तथापि बहुत दिनों से मनुष्य वज़नी और स्थूल पदार्थों की सत्यता को अस्वीकार करने की चेष्टा कर रहा है। धूल को ढकता है, स्वार्थ को लज्जा का कारण मानता है और भूख को हृदय के भीतर निर्वासित कर रखता है। मलिनता पृथिवी का स्वाभाविक धर्म है। इसे तो आदि-सृष्टि का पदार्थ कहना चाहिए। धूल की अपेक्षा प्राचीन पदार्थ का मिलना भी यहाँ कठिन है। इस कारण वह तो सब की अपेक्षा अधिक सत्य हुई और जो हृदय की लक्ष्मी-गृहिणी अन्तर के अन्तःपुर से आकर धूल को नित्य हटाने का प्रयत्न करती है उसीको क्या असत्य समझ कर त्याग देना चाहिए ?

क्षिति ने कहा—क्यों भाई, तुम लोग इतना डरते क्यों हो ? मैं तुम लोगों के उस अन्तःपुर की दीवार को डेनामाइट के द्वारा उड़ाने के लिए नहीं आई हूँ। आप लोग ज़रा ठण्डे होकर बतावें कि, इस पुण्याह के दिन बेसुरी शहनाई बजाने से पृथ्वी का क्या संशोधन किया जा रहा है! इसमें तो संगीत भी नहीं है।

वायु ने कहा—वह और कुछ नहीं, केवल एक तरह का अलापना है और वर्ष भर के अनेक प्रकार के शब्दों की त्रुटियों को एक सुर में कहना है। स्वार्थ-मय संसार में समय समय पर गान की चर्चा होती रहने से थोड़ी देर के लिए यह पृथिवी सुशोभित हो

जाती है, अकस्मात् बाज़ार में घर की शोभा उपस्थित हो जाती है, मोल-तोल के ऊपर चन्द्र-किरणों के समान प्रेम की दृष्टि पड़ जाती है, और उससे उसकी कठोरता दूर हो जाती है। संसार में जो कुछ होता है वह चिल्लाने से ही होता है और जिसका होना आवश्यक है वह भी किसी दिन जन-समाज में उपस्थित होकर कोमल और मधुर स्वर में अलापता है। इस अलाप में उस समय के दूसरे अलाप भी अपनी शक्ति क्षीण कर के अपने को मिला देते हैं। पुण्याह उसी संगीत का दिन है।

मैंने कहा—सब उत्सवों में यही बात है। मनुष्य जिस प्रकार प्रति दिन काम करता है, किसी किसी दिन ठीक उसके विपरीत करने लग जाता है। प्रतिदिन वह कमाता है और एक दिन खर्च कर देता है। प्रतिदिन द्वार बन्द रखता है, एक दिन उसे खोल देता है। प्रतिदिन वह अपने को स्वामी समझता है और एक दिन वही सब की सेवा करने लग जाता है। वही शुभ दिन है। वही दिन आनन्द और उत्सव का दिन है। वह दिन समस्त वर्ष का आदर्श है। वह दिन फूलों की माला, स्फटिक का दीपक और एक प्रकार का उत्तम आभूषण है। वह दिन दूर ही से वंशी के सुर में कहता है कि आज के दिन का अलाप ही यथार्थ अलाप है और सब बेसुरा अलाप है। इससे मालूम होता है कि हम आपस में हृदय से मिलने के लिए आये थे, परन्तु अपनी दीनता के कारण वैसा न कर सके। जिस दिन हम लोग अपने आने का उद्देश पूरा कर सकते हैं वही दिन हम लोगों का यथार्थ दिन है। वही आनन्द का दिन है। वही उत्सव का दिन है।

वायु ने कहा—संसार में दीनता की सीमा नहीं है। दीनता के कारण यह मानव-जीवन जीर्ण-शीर्ण और शून्य प्रतीत होता है। मनुष्य का पद चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो, पर दोनों समय के लिए एक सेर अन्न की चिन्ता उसे करनी ही पड़ती है। थोड़ा सा वस्त्र चाहिए ही। यदि ये सब न मिलें तो उसका रहना भी असम्भव हो जाय। मनुष्य अपने को अविनाशी और अनन्त समझता है, पर तम्बाकू की डिबिया या सिगरेट का बक्स भूल जाने पर आकाश-पाताल एक करने लगता है। किसी भी प्रकार क्यों न हो, प्रति दिन के आहार-विहार की सामग्रियाँ उसे एकत्रित करनी ही पड़ेंगी। इसके लिए भी मनुष्य स्वयं लज्जित रहता है। इसी कारण वह सदा सूखे धूलिमय तथा मनुष्यों से परिपूर्ण बाज़ार की तुच्छता को छिपाने का प्रयत्न किया करता है। आहार-विहार, लेने-देने आदि के समयों में मनुष्य की आत्मा अपने सौन्दर्य को विकसित करने का प्रयत्न करती रहती है। वह अपनी आवश्यकता के साथ अपने महत्व का सुन्दर और सुव्यवस्थित सम्बन्ध जोड़ना चाहती है।

मैंने कहा—इसका उदाहरण यही पुण्याह की भेंट है। एक की भूमि है, और दूसरा उसका मूल्य देता है। इस सूखी व्यवस्था से लज्जित होकर मनुष्य की आत्मा अपनी सुन्दरता को प्रकट करना चाहती है, दोनों में एक आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर देना चाहती है: वह यह जता देना चाहती है कि यह व्यवस्था नहीं है, किन्तु इसमें एक प्रेम का बन्धन है, स्वाधीनता है। राजा प्रजा का सम्बन्ध भाव का सम्बन्ध है, और लेना-देना हृदय का कार्य है। मालगुज़ारी के रुपयों और राग-रागिनियों से कोई भी सम्बन्ध नहीं।

ख़ज़ानची का आफ़िस नौबत बजाने की जगह नहीं है। परन्तु जहाँ भाव का सम्बन्ध है वहाँ वंशी का सुर बज ही जाता है। रागिनी के द्वारा भाव प्रकाशित होता है। सौन्दर्य उसका संगी है। गाँव की वंशी इस बात को प्रकाशित करना चाहती है कि आज हमारा पुण्य-दिन है। आज राजा-प्रजा के मिलन का दिन है। ज़मींदार की कचहरी में भी मनुष्य का आत्मा अपने प्रवेश के लिए मार्ग बनाने का प्रयत्न करता है। वहाँ भी भाव के लिए एक सुन्दर और विशाल सिंहासन सजा सजाया रक्खा हुआ है।

नदी अपने मन में सोचते सोचते कहने लगी—मेरी समझ में इससे केवल संसार की सुन्दरता ही प्रकट नहीं होती, किन्तु दुःख का बोझ भी घटता है। इस संसार में उच्चता और नीचता जब हैं ही, जब प्रलय के बिना इनके नाश होने का और कोई उपाय नहीं है, तब यह आवश्यक है कि उच्चता और नीचता में परस्पर एक स्थायी सम्बन्ध हो, जिससे कि उच्चता का भार वहन करने में सुभीता हो। चरणों के लिए शरीर का भार ढोना कुछ भी कठिन नहीं है। क्योंकि उसके साथ उनका स्थायी सम्बन्ध है। पर बाहरी भार थोड़ा भी ले चलना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार उपमा के द्वारा अपनी बात अच्छी तरह समझाने पर नदी कुछ लज्जित सी हो गई। जैसे उससे कुछ अपराध बन पड़ा है। बहुत लोग दूसरे के भाव को चुरा कर उसे अपना कहने में इस तरह संकोच नहीं करते।

व्योम ने कहा—मनुष्य अपने पराजय होने की सम्भावना देख कर अपनी हीनता दूर करने के लिए किसी एक भाव से अपना

सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। मनुष्य केवल मनुष्य ही से भाव का सम्बन्ध नहीं स्थापित करता किन्तु उसकी तो सर्वत्र यही नीति रहती है। मनुष्य जब पहले पहल इस पृथिवी पर आया, और दावानल, कुहासा, आँधी आदि के रोकने का कुछ भी प्रबन्ध नहीं कर सका; जब शिव के नन्दी के समान पहाड़ों ने इसका मार्ग रोका और मार्ग रोक कर वे नीलाकाश को स्पर्श करते हुए बीच मार्ग में खड़े हो गये; और स्पर्श करने के अयोग्य—अपनी महिमा में अटल आकाश जब अपनी अमोघ इच्छा से कभी वृष्टि और कभी वज्र बरसाने लगा, तब मनुष्य ने उसे देवता मान लिया, और उसके साथ देवभाव का सम्बन्ध स्थापित कर लिया। नहीं तो अपनी निवास-भूमि प्रकृति के साथ मनुष्य के सम्बन्ध स्थापित होने का और कोई भी उपाय नहीं था। अज्ञात-शक्ति प्रकृति को जब उसने अपनी भक्ति से पूर्ण कर दिया तभी उसके आत्मा को गौरव के साथ प्रकृति में रहने का स्थान मिला।

क्षिति ने कहा—ठीक है, मनुष्य का आत्मा अपने गौरव की रक्षा करने के लिए बड़े बड़े उपायों को काम में लाता है। राजा जब स्वेच्छाचारी हो जाता है, किसी प्रकार भी उसके हाथ से प्रजा का छुटकारा होने की सम्भावना नहीं रहती, तब प्रजा उसको देवता मान कर अपनी हीनता के दुख को दूर करने की चेष्टा करती है। जब पुरुष सबल होता है और सब प्रकार से अपना अधिकार स्थापित कर लेता है, तब असहाय स्त्री उसको देवता मान लेती है और उसका स्वार्थ-मय और निष्ठुर अत्याचार—गौरव के साथ किसी प्रकार—सहन करती है तथापि यह बात अवश्य माननी चाहिए

कि यदि इस प्रकार मनुष्य में अपने अभावों को दूर करने की शक्ति न होती तो वह कभी का पशु हो गया होता।

कुछ दुखी होकर नदी ने कहा—यह बात नहीं है कि मनुष्य विवश होकर इस प्रकार आत्मप्रतारणा करता है। जहाँ हम लोगों की हार होने की सम्भावना नहीं है, हम लोग ही प्रबल हैं, वहाँ आत्मीयता स्थापित की जाती है। इसके उदाहरणों की भी कमी नहीं। गाय को हमारे देशवाले क्यों माता कहते और उसकी पूजा करते हैं? वह तो असहाय पशु है। हम लोग बली हैं, वह दुर्बल है; हम लोग मनुष्य हैं, वह पशु है। किन्तु हम लोग अपनी श्रेष्ठता को स्थिर रखने के लिए ही ऐसा करते हैं। उससे हम लोगों को जो कुछ फल भी मिलता है उसका कारण हम लोगों का प्रबल होना है; हम लोग समर्थ हैं और उसके पास कोई साधन नहीं है, इसी कारण हम लोग उससे लाभ उठाते हैं—इस बात को मानने के लिए हम लोगों का आत्मा तैयार नहीं। उस उपकारिणी धीर और शान्त गाय को हम लोग माता समझते हैं, इसी कारण उसका दूध भी पीते हैं और उससे विशेष तृप्त तथा प्रसन्न होते हैं। मनुष्य और पशु का यह भाव का सम्बन्ध है। ऐसे भाव का सम्बन्ध स्थापित करके ही उसकी सृष्टि-चेष्टा विश्राम-लाभ करती है।

व्योम ने बड़ी गम्भीरता से कहा—तुमने एक बहुत बड़ी बात कही है।

यह सुन कर नदी चौंक उठी। ऐसा कौन सा पाप उसने किया है, यह बात उसकी समझ में नहीं आई। इस अज्ञात-अपराध के लिए उसने मन ही मन क्षमा की प्रार्थना की।

व्योम ने कहा—यह तुमने जो आत्मा की सृजन-चेष्टा की बात कही उसके सम्बन्ध में और भी बहुत सी बातें हैं। जिस प्रकार मकरी बीच में रहती है और अपने चारों ओर जाल फैला देती है, उसी प्रकार हम लोगों का हृदयवासी आत्मा भी सदा अपने चारों ओर के पदार्थों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया करता है। वह सदा ही से भिन्न को समान, दूर को समीप और दूसरे को अपना बनाता रहता है। वह बैठे बैठे आत्मीयता और परता के बीच में सम्बन्ध स्थापित करता रहता है, इन दोनों के बीच में एक मार्ग तैयार करता है। जिसको हम लोग सौन्दर्य कहते हैं वह मन का अपना नया आविष्कार है। जड़ और आत्मा के बीच के सम्बन्ध का नाम सुन्दरता है। वह है बहुत ही छोटे आकार की वस्तु, पर हम लोग उसी से भोजन पाते हैं, उसी में वास करते हैं और कभी कभी उससे आघात भी पाते हैं। यदि उसको हम लोग अपनी वस्तु न समझते तो वह भी अन्यान्य वस्तुओं के समान एक बाहरी पदार्थ ही रहता। पर ऐसा नहीं है, आत्मा का काम ही है कि वह आत्मीयता स्थापन करे। वह जड़ और अपने बीच में सुन्दरता नाम का एक सम्बन्ध स्थापित कर देता है। आत्मा ने जड़ को सुन्दर समझा और वहाँ अपने रहने के लिए स्थान भी नियत कर लिया। उसी समय से जड़ ने भी आत्मा का आश्रय ग्रहण किया। वह दिन बड़े आनन्द का था। इस समय भी यह सम्बन्ध स्थापित करने का काम हो रहा है। कवि का प्रधान गौरव भी यही है। यही सृष्टिकर्त्ता का प्रशंसनीय कार्य है। पृथिवी में चारों ओर हमारा पुराना सम्बन्ध दृढ़ किया जा रहा है और नये नये

सम्बन्ध स्थापित किये जा रहे हैं। प्रतिदिन पर-पृथिवी अपने और जड़-पृथिवी आत्मा के रहने योग्य बनाई जा रही है। यह कहने की तो कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती कि सर्व-साधारण जिसको जड़ कहते और समझते हैं यहाँ भी उसी जड़ से मतलब है। जड़ को जड़ता-सम्बन्ध में यदि मैं अपना मतामत प्रकाशित करने बैठूँ तो इस सभा में मेरे सिवा और कोई चेतन नहीं मिल सकेगा।

व्योम की बातों पर विशेष ध्यान देकर वायु ने कहा—नदी ने केवल गाय का एक ही दृष्टान्त दिया है। पर हमारे देश में इस विषय के दृष्टान्तों की कमी नहीं है। एक दिन मैं ने देखा कि एक मनुष्य धूप से व्याकुल होकर नदी के किनारे आया और अपने सिर पर से ख़ाली किरोसिन के तेल का कनस्टर रख कर 'मैयारे' कहता हुआ जल में कूद पड़ा। मेरे मन पर इसका प्रभाव बहुत पड़ा। जो स्निग्ध सुन्दर गम्भीर जल-राशि मधुर कल-नाद करती हुई और दोनों तीर की भूमि को प्लावित करती हुई बहती है उसकी शीतल गोद में अपने तप्त शरीर को समर्पित करना और उसे मैया कहना इससे बढ़ कर हृदय का महान् और मधुर भाव दूसरा क्या हो सकता है? फल-शस्य-पूर्ण इस महान् पृथ्वी से लेकर हम लोगों के पिता-पितामह आदि के रहने के अपने घर तक जब सब सजीव आत्मीय के समान देख पड़ता है तब हम लोगों का जीवन सुन्दर और सुखमय प्रतीत होने लगता है। उसी समय संसार के साथ दृढ़ सम्बन्ध स्थापित होता है। जड़ से पशु और पशु से मनुष्य तक सभी एक दृढ़ और अविच्छिन्न सम्बन्ध से जकड़े हुए हैं। यह बात हम लोगों के लिए कोई नई नहीं है। क्योंकि विज्ञान के द्वारा यह

बात प्रकाशित होने के पहले ही हम लोगों को इस बात का ज्ञान हो गया था। पुरोहितजी जब तक नहीं आये और उन्होंने हम लोगों को जाति के अनुसार जब तक कोई व्यवस्था नहीं दी, उसके पहले ही हम लोगों ने अपना सब प्रबन्ध ठीक कर लिया।

हम लोगों की भाषा में "थैंक" शब्द का कोई प्रतिशब्द नहीं है। इस कारण योरप के कोई कोई पण्डित कहते हैं कि हम लोगों में कृतज्ञता नहीं है। पर हमारी दृष्टि में तो ठीक उसके विपरीत ही देख पड़ता है। कृतज्ञता मानने के लिए हमारा हृदय सदा ही व्याकुल रहता है। पशुओं से और जड़ पदार्थों तक से हम लोगों को जो कुछ मिलता है उसको हम स्नेह, दया और उपकार समझते हैं और उसका बदला चुकाने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं। जिस जाति के लठबन्द अपनी लाठी को, विद्यार्थी अपनी पुस्तक को और कारीगर अपने यन्त्र आदि को अपनी कृतज्ञता जताने के लिए मन ही मन सजीव बना लेते हैं, उस जाति के पास यदि एक शब्द न हुआ तो क्या? इससे क्या वह जाति अकृतज्ञ कही जा सकती है!

मैंने कहा—जी हाँ, कही जा सकती है, क्योंकि हम लोग कृतज्ञता की सीमा का उल्लंघन कर गये हैं। हम लोग आपस में निःसङ्कोच हो कर अधिक मात्रा में जो सहायता ग्रहण करते हैं उसका कारण अकृतज्ञता नहीं है; उसका कारण तो आपस में स्वतन्त्रता का अपेक्षाकृत अभाव ही है। भिक्षुक और दाता, अतिथि और गृहस्थ, आश्रित और आश्रय-दाता, स्वामी और भृत्य, इनका सम्बन्ध स्वाभाविक है। अतएव इनमें कृतज्ञता जताकर ऋण-मुक्त हो जाने की इच्छा नहीं उत्पन्न होती।

व्योम ने कहा—योरपवाले जैसी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं वैसी कृतज्ञता तो हम लोग देवता के सामने भी नहीं प्रकट करते। योरपवाले कहते हैं—"थैंक गाड", इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि ईश्वर ने सावधानी से जो हमारा उपकार किया है उस उपकार को स्वीकार न करना असभ्य-जनोचित कार्य होगा इस कारण ईश्वर के प्रति वे कृतज्ञता प्रकट करते हैं। पर हम लोग वैसा नहीं करते। हम लोग देवता के सामने कृतज्ञता नहीं प्रकट करते। इसका कारण यह है कि केवल कृतज्ञता प्रकट कर देना ही हम लोग देवता के उपकार का यथेष्ट बदला नहीं समझते। वैसा करना देवता को धोखा देना है। वैसा करनेवाले देवता से कहते हैं कि 'तुमने अपना काम कर दिया, और हम भी अपना काम किसी प्रकार टाले देते हैं।' पर हम लोगों की समझ से वैसा करना उचित नहीं है। गाढ़े प्रेम में एक प्रकार की अकृतज्ञता रहती है। प्रेम के प्रतिफलों का अन्त नहीं है। वह प्रेम की अकृतज्ञता स्वतन्त्रता की कृतज्ञता की अपेक्षा कहीं बड़ी और मधुर है। भक्त रामप्रसाद ने एक गान गाया है—

तोमाय मा मा बोले आर डाकिबो ना,
आमाय दियेछो, दितेछो कत यन्त्रणा।

(मैं अब तुम को माता कहकर नहीं पुकारूँगा। क्योंकि तुमने मुझे बहुत कष्ट दिये हैं और देती भी हो।)

इस उदार अकृतज्ञता का अनुवाद क्या योरप की किसी भाषा में हो सकता है?

क्षिति ने व्यङ्ग से कहा—योरप-वासियों के प्रति हम लोगों

की जो यह अकृतज्ञता है, इसका भी सम्भवतः कोई उदार ही कारण होगा। जड़-प्रकृति के साथ आत्मीयता-स्थापन के विषय में जो बातें हुई हैं वे भी सम्भवतः बहुत ही सुन्दर हैं। उनके विचार-पूर्ण होने में भी सन्देह नहीं। क्योंकि अभी तक मैं इस पर गंभीर विचार नहीं कर सकी। सभी यह कह रहे हैं कि प्रकृति के साथ हम लोगों ने ही अपना सम्बन्ध स्थापित किया है, और योरपवाले प्रकृति के साथ अपरिचित के समान व्यवहार करते हैं। पर मैं यह पूछती हूँ, कि यदि अँगरेज़ी के साहित्य का ज्ञान हम लोगों को न होता तो क्या आज की इस सभा में हम लोग ऐसी आलोचना कर सकते, और जिन्हें अँगरेज़ी के साहित्य का ज्ञान नहीं है वे क्या इन बातों को समझ सकते हैं?

मैंने कहा—इसका एक कारण है। प्रकृति के साथ हम लोगों का जैसे भाई-बहन का सम्बन्ध है और योरप-वासियों का स्त्री-पुरुष का। हम जन्म से ही आत्मीय हैं, हम स्वभाव से ही एक हैं। और अँगरेज़ बाहर से प्रकृति के भीतर प्रवेश करते हैं। वे पहले प्रकृति को जड़ समझते थे। एक दिन एकाएक यौवन-प्रारम्भ के समय उस पर उन लोगों की दृष्टि पड़ी, और उन्होंने प्रकृति की अपरिमेय अनिर्वचनीय और आध्यात्मिक सुन्दरता का आविष्कार किया। हम लोग आविष्कार करना नहीं जानते। क्योंकि आविष्कार करने के लिए सन्देह की आवश्यकता और प्रश्न करने की प्रवृत्ति चाहिए।

दूसरे आत्मा का सङ्घर्ष होने से ही आत्मा को अपने रूप का यथार्थ ज्ञान होता है। उसी समय मिलन का आध्यात्मिक भाव पूर्ण रूप से मालूम होता है। सम्मिलन के द्वारा अपनी सत्ता

नष्ट कर देने की अपेक्षा स्वतन्त्र रहना ही अच्छा है। किसी कवि ने कहा है कि ईश्वर ने अपने ही पितृ-भाग और मातृ-भाग से इस संसार में स्त्री-पुरुष की सृष्टि की है। अतएव वे विच्छिन्न टुकड़े आपस में मिलने के लिए बड़े आनन्द से आकृष्ट होते हैं। इस वियोग के बिना आपस में इतना घनिष्ठ परिचय न होता। एक हो जाने की अपेक्षा सम्मिलन में ही आध्यात्मिकता की अधिक मात्रा है।

हम लोग पृथिवी को और नदी को माता कहते हैं। वट और अश्वत्थ के वृक्षों की पूजा करते हैं। हम लोग पत्थर को सजीव समझते हैं। पर आत्मा के भीतर उसकी आध्यात्मिकता का अनुभव नहीं करते। हम लोग उन पत्थर आदि में अपनी किसी कल्पित मूर्त्ति का आरोप कर लेते हैं और उससे सुख-सम्पत्ति-सफलता पाने की आशा करते हैं। पर आध्यात्मिक सम्बन्ध स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं होता। वह सम्बन्ध केवल सौन्दर्य-मय तथा आनन्दमय है। इसमें किसी के लाभ-हानि का विचार नहीं रहता। स्नेह और सौन्दर्य की गंगा के प्रवाह से आत्मा जिस समय आनन्दित होता है उसी समय वह आध्यात्मिकता से पूर्ण होता है। पर जब वह किसी आकार में बाँध दिया जाता है और उससे इस लोक तथा परलोक में कल्याण की प्रार्थना की जाने लगती है तब उसकी आध्यात्मिकता चली जाती है और वह सौन्दर्य-हीन मोह तथा अन्ध अज्ञानता के रूप में परिणत हो जाता है। उस समय हम लोग देवता को पुतला बना देते हैं।

हे गंगे, मैं तुम से इस लोक के लिए सम्पत्ति तथा परलोक के लिए उत्तम गति की प्रार्थना नहीं करता। यह कुछ मुझको न चाहिए,

और यदि चाहूँ भी तो तुम्हारे द्वारा इनका मिलना असम्भव है। पर बाल्यावस्था से लेकर इस जीवन में जितने सूर्योदय और सूर्यास्त के समय, कृष्णपक्ष की क्षीण-प्रकाश रात्रि में, वर्षा के मेघ-श्यामल मध्याह्न में, जो एक प्रकार का अवर्णनीय आनन्द मेरे अन्तरात्मा को मिला है वह आनन्द मेरे जन्म-जन्मान्तर के लिए स्थायी हो; इस संसार में मैंने अपने जीवन में जो उत्तम सौन्दर्य एकत्रित किया है उस सौन्दर्य को मैं यहाँ से जाने के समय एक विकसित शत-दल-कमल के समान अपने हाथ में लिये जा सकूँ और यदि मेरे प्रिय के साथ मेरा साक्षात्कार हो तो मैं उसे उनके चरणों में अर्पण कर सकूँ। इसी से मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। यही मेरी इच्छा है।

स्त्री-पुरुष

श्रीयुत वायु ने एक प्रश्न किया। उन्होंने कहा—अँगरेज़ी के साहित्य में गद्य अथवा पद्य-काव्य में नायक और नायिका दोनों का माहात्म्य व्यक्त होते देखा जाता है। डिसडिमोना के निकट ओथेलो और इयागो दोनों में कोई भी हीन नहीं है। इसी प्रकार क्लियो-पेट्रा ने यद्यपि अपने कृष्ण और कुटिल बन्धन-जाल से एन्टोनी को छिपा रक्खा है तथापि एन्टोनी की उच्चता, लताओं से घिरे हुए भग्नजयस्तम्भ के समान, सर्व-साधारण में प्रकाशित हुई है। लमार्मूर की नायिका अपने दयनीय सरल और सुकुमार सौन्दर्य से हम लोगों के मन को अपनी ओर खींच सकती है अवश्य, परन्तु रेवनस्वूड के विषादाच्छन्न नायक की ओर लगी हुई हम लोगों की दृष्टि को हटा नहीं सकती। परन्तु बँगला साहित्य में नायिकाओं की ही प्रधानता देखी जाती है। कुन्दनन्दिनी और

सूर्यमुखी के सामने नगेन्द्र छिप गया है; रोहिणी और भ्रमर के निकट गोविन्दलाल की भी वही दशा हुई है; ज्योतिर्मयी कपाल-कुण्डला के समीप नवकुमार क्षीण उपग्रह के समान है। प्राचीन बँगला साहित्य में भी यही बात देखी जाती है। 'विद्या-सुन्दर' में यदि किसी का सजीव वर्णन किया गया है तो वह केवल विद्या और मालिन का। सुन्दर के चरित्र में पदार्थ का लेशमात्र नहीं है! कवि-कङ्कण-चण्डी में भी फुल्लरा और खुल्लना का ही प्रकाश देख पड़ता है। व्याध तो बीच में एक प्रकार के लम्बे खम्भे के समान खड़ा है और धनपति तथा उनके पुत्र की तो कोई आवश्यकता समझ ही नहीं पड़ती। वंगसाहित्य में नायक तो महादेव के समान धूल में पड़े हैं और नायिकाएँ उन पर बड़े आनन्द से विराज रही हैं। इसका कारण क्या है?

वायु के इस प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए नदी अत्यन्त व्याकुल हो उठी। परन्तु दीप्ति पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने उधर उपेक्षा की दृष्टि की और पास ही पड़ी हुई एक पुस्तक खोल कर पढ़ने लगी।

क्षिति ने कहा—तुमने बंकिम बाबू के उपन्यासों के विषय में जो कहा है सो ठीक नहीं, क्योंकि वे बातें मन से सम्बन्ध रखने-वाली हैं, कार्य से नहीं। मानसिक जगत् में स्त्रियों की प्रधानता है और कार्य-जगत् में पुरुषों का प्रभुत्व। जहाँ केवल मानसिक जगत् की बात है, वहाँ स्त्रियों के समान पुरुषों को उच्च आसन नहीं दिया जा सकता। पुरुषों के चरित्र का विकास पूर्ण रूप से कार्य-क्षेत्र ही में होता है।

अब दीप्ति से नहीं रहा गया। उसने पुस्तक हटा दी और अपनी उदासीनता का भाव भी छोड़ दिया। इसके बाद वह बोली—क्यों? दुर्गेशनन्दिनी में तो विमला का चरित्र कार्यों से ही प्रकाशित हुआ है। बतलाइए ऐसी निपुणता, तत्परता और अध्यवसाय उस उपन्यास में और कितने नायकों ने दिखाया है? आनन्दमठ उपन्यास भी तो कार्य-प्रधान ही है। उसमें सत्यानन्द, भवानन्द, जीवानन्द आदि सन्तान-सम्प्रदायवालों ने काम किया है सही पर वह कवि का केवल वर्णन है। उस उपन्यास में यदि किसी के चरित्र में यथार्थ कार्यकारिता प्रकाशित हुई है तो वह शान्ति का ही चरित्र है। देवी चौधरानी में मालिक का पद किसको मिला है? स्त्री ही को। परन्तु क्या वह मालिक का पद अन्तःपुर का है? नहीं।

वायु ने कहा—चिति, तर्कशास्त्र की सरल रेखा के अनुसार ही सब पदार्थों का उत्तम प्रकार से श्रेणी-विभाग नहीं किया जा सकता। शतरञ्ज की पटरी पर लाल पीले काले आदि रंगों से घर बनाये जा सकते हैं, क्योंकि वह निर्जीव पदार्थ है। पर मनुष्य-चरित्र उतना सहज नहीं है। तुम युक्तियों के द्वारा भाव-प्रधान, कर्म-प्रधान आदि अनेक प्रकार की जितनी चाहो अलङ्घनीय सीमा निश्चित कर सकती हो, परन्तु इस विशाल संसार के विचित्र कर्म-क्षेत्र में सभी बातें उलटी पलटी हो जाया करती हैं। समाज-रूपी लोहे के कराह के नीचे यदि जीवन की आग न जलती तो सम्भव था कि मनुष्यों में भी किसी प्रकार श्रेणी-विभाग किया जा सकता और वह श्रेणी-विभाग अटल भी रहता। पर जिस समय जीवन की ज्वाला प्रदीप्त हो उठती है उस समय

सभी बातें उलट पलट जाती हैं। उस समय नवीन नवीन विस्मय-जनक विचित्रताओं की सीमा नहीं रहती। साहित्य इसी परिवर्तनशील संसार का एक चञ्चल चित्र है। उसको समालोचना-शास्त्र का विशेषण देकर बाँधने की चेष्टा व्यर्थ है। मानसिक जगत् में स्त्रियों की ही प्रधानता है, यह बात निश्चित रूप से कोई नहीं कह सकता। ओथेलो भी एक मानस-भाव-प्रधान नाटक है। पर उसके नायक के हृदयावेग की प्रबलता देखते ही बनती है। किंग लियर में भी यही बात है।

यह सुनते ही व्योम अधीर हो उठा। उसने कहा—ओह, तुम लोग तो व्यर्थ इतना तर्क-वितर्क करते हो। यदि सावधान होकर विचार करो तो तुम लोगों को यह बात स्पष्ट जान पड़े कि कार्य-क्षेत्र ही में स्त्रियों की प्रधानता है। कार्य-क्षेत्र के सिवा स्त्रियों के लिए और स्थान कहाँ है? यथार्थ पुरुष योगी, उदासीन और निर्जन-वासी ही होता है। कैलडिया के मरुक्षेत्र में पड़ा पड़ा मेषपाल पुरुष ऊपर की ओर ताकता था और आधी रात को आकाश में तारागण का चलना-फिरना देखा करता था, तब उसे क्या सुख मिलता था? क्या कोई स्त्री भी इस प्रकार बिना काम के समय बिता सकती है? जो ज्ञान किसी भी काम के योग्य नहीं है उस ज्ञान के प्राप्त करने के लिए कौन स्त्री अपना जीवन व्यतीत करना अच्छा समझती है? जिस ज्ञान से संसार-मुक्त आत्मा का विशुद्ध आनन्द मिलता है उसको कौन स्त्री मूल्यवान् समझती है? क्षिति के कहने के अनुसार यदि मनुष्य यथार्थ कार्यशील होता तो आज उसके समाज की यह उन्नति न होती; तब ये नये नये आविष्कार

भी नहीं देख पड़ते। निर्जनता में ही ज्ञान का प्रकाश और भाव का आविर्भाव होता है। यथार्थ पुरुष सदा ही निर्लिप्त होकर निर्जन स्थान में रहता है। कर्मवीर नेपोलियन भी कभी अपने कार्यों में लिप्त नहीं रहता था। वह कहीं भी क्यों न रहे, अपने लिए निर्जन स्थान अवश्य बना लेता था। वह सदा ही अपने भावाकाश में निवास करता था। वह अपने विचारों में इस प्रकार लिप्त रहता था कि कार्य-क्षेत्र भी उसके लिए निर्जन ही के समान था। भीष्म-पितामह कुरुक्षेत्र के युद्ध के एक नायक थे। पर उस जन-समूह में रह कर भी वे सदा निर्जन में रहा करते थे। उनके समान निर्जन-वासी मनुष्य कोई नहीं था। मालूम नहीं, वे काम करते थे या ध्यान में मग्न रहते थे। स्त्रियाँ ही यथार्थ में काम करती हैं। कार्यों के कारण उन्हें एक घड़ी के लिए भी विश्राम नहीं मिलता। वे सदा कार्यों ही में लिप्त रहती हैं। वास्तव में वे ही जन-समूह में रहती हैं और संसार की रक्षा करती हैं। स्त्रियाँ ही यथार्थ रूप से कार्यों में सम्मिलित हो सकती हैं।

दीप्ति ने कहा—तुम्हारी सभी बातें अद्भुत हैं। तुम्हारी बातों को समझ लेना बड़ा ही कठिन है। स्त्रियाँ काम नहीं कर सकतीं, ऐसा तो मैं नहीं कहती। क्या तुम लोग स्त्रियों को काम करने देते हो?

व्योम ने कहा—स्त्रियाँ स्वयं ही कर्म-बन्धन में बँधी हुई हैं। जैसे अंगारा आप अपने को भस्म के रूप में परिणत करता है वैसे ही स्त्रियाँ भी अपने को अनेक कार्यों के सम्पादन के द्वारा कर्मों में फँसा लेती हैं। उनके चारों ओर कर्म फैला हुआ है। कर्म ही उनके रहने का स्थान है। वही उनका अन्तःपुर है। वहाँ से उन्हें

निकाल कर बाहर के कार्यों में लगा देने से क्या संसार के काम-काज की हानि होगी! क्या पुरुषों में वह शक्ति है कि वे उतने बड़े कामों को शीघ्रतापूर्वक कर सकें? पुरुषों में फुर्ती नहीं होती। उन्हें कोई भी काम करने में समय लगता है। क्योंकि पुरुष और चिन्ता के बीच में बहुत अन्तर है। वह अन्तर भी चिन्ता से परिपूर्ण है। स्त्री यदि संसार के बाहरी कामों में सम्मिलित हो तो निश्चित ही समस्त संसार जलकर राख हो जाय। इसी कारण इस प्रलय-कारिणी कार्य-शक्ति को संसार ने बाँध रक्खा है। इसी अग्नि की सहायता से सन्ध्या के समय घर में दीपक का प्रकाश होता है, शीत से पीड़ित मनुष्यों का जाड़ा छूटता और भूखों को भोजन मिलता है। यदि हम लोगों के साहित्य में इस सुन्दर अग्नि का प्रकाश फैला है तो इसके लिए इतने तर्क-वितर्क की क्या आवश्यकता है?

मैंने कहा—हमारे देश में स्त्रियों को प्रधानता दी जाने का प्रधान कारण यह है कि इस देश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ श्रेष्ठ हैं।

नदी का मुँह कुछ लाल हो आया। वह हँसने लगी। दीप्ति ने कहा—यह तो तुम बड़ाई करते हो।

मैंने समझा कि दीप्ति की यह इच्छा है कि वह प्रतिवाद के द्वारा अपनी जाति का गुण-गान करावे और उसे सुनकर स्वयं प्रसन्न हो। मैंने दीप्ति से वह बात भी कही और यह भी कहा कि स्त्रियाँ अपनी प्रशंसा सुनना बहुत अधिक चाहती हैं। दीप्ति सिर हिला कर कहने लगी—नहीं, कभी नहीं।

नदी ने धीरे से कहा—यह बात तो सच है। अप्रिय बातें

हम लोगों को बहुत अप्रिय मालूम होती हैं और प्रिय बातों को सुनकर हम लोग बहुत प्रसन्न होते हैं।

नदी यद्यपि स्त्री है तथापि वह सत्य बात स्वीकार करने में आगा-पीछा नहीं करती।

मैंने कहा—इसका एक कारण है। ग्रन्थकारों में कवि और गुणियों में गवैया स्तुति-मिष्टान्न को बहुत ही अधिक प्रिय समझते हैं। सच्ची बात यह है कि जिनका काम दूसरे को प्रसन्न करना है उनकी कृतकार्यता का चिह्न प्रशंसा ही है। अन्य कार्यों के फल के अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष चिह्न हैं। पर स्तुति पाने के सिवा मनोरञ्जन का दूसरा चिह्न नहीं है। इसी कारण गवैया जब ताल के पास आता है तब उसे सुननेवालों की मण्डली से प्रशंसा पाने की आशा लगी रहती है। इसी कारण अनादर को गुणीमात्र अप्रिय समझते हैं।

वायु ने कहा—केवल इतनी ही बात नहीं है। मनोरञ्जन करनेवालों का उत्साह-हीन होना भी उनके कार्य में एक बहुत बड़ी बाधा है। श्रोताओं को प्रसन्न देखने से ही गानेवाले अपने सब गुणों को प्रकाशित करते हैं। अतएव गुणियों के लिए प्रशंसा न केवल उनके कार्य का पुरस्कार है, किन्तु वह उनके सफल होने में भी प्रधान रूप से सहायता करती है।

मैंने कहा—स्त्रियों का भी प्रधान काम है आनन्द देना। अपने सारे अस्तित्व को कविता और गान के समान सुन्दर बनाने से ही स्त्रियाँ अपने जीवन के उद्देश्य में सफल हो सकती हैं। इसी कारण प्रशंसा से स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न होती हैं। गर्व के कारण स्त्रियाँ प्रशंसा

सुनना नहीं चाहतीं । उससे वे अपने जीवन को सार्थक समझती हैं । उनके कार्यों में त्रुटि और असम्पूर्णता दिखाने से उन्हें बड़ा कष्ट होता है । इसी कारण स्त्रियों के लिए लोकनिन्दा बहुत ही भयानक है ।

क्षिति ने कहा—कवित्व से सनी हुई तुम्हारी बातें बड़ी मज़ेदार हैं, सुनने में अच्छी लगती हैं। पर असल बात यह है कि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र बहुत ही सङ्कीर्ण है। बड़े देश में, बड़े समय में उनके लिए स्थान नहीं है। समयानुसार पति, पुत्र, आत्मीय तथा परोसी आदि को सन्तुष्ट और प्रसन्न रखना ही उनके कर्त्तव्य का उद्देश्य है। जिनके जीवन का कार्य-क्षेत्र विशाल और सदा के लिए विस्तीर्ण है; जिनके कार्यों का फलाफल शीघ्र दृष्टिगोचर नहीं होता; पास के मनुष्य तथा सामयिक निन्दा-स्तुति की जो कुछ परवा नहीं करते, उनकी आशा और कल्पना उन्हें अनादर, उपेक्षा और निन्दा को सहने का बल प्रदान करती है । लोक-निन्दा, लोक-स्तुति, सौभाग्यगर्व, मान-अभिमान से स्त्रियाँ जो विशेष विचलित हो जाती हैं इसका प्रधान कारण यह है कि उनको इस जीवन में नक़द कारबार करना पड़ता है । उनके कार्यों का फलाफल तत्काल ही प्राप्त होता है । तत्काल जो फल मिल जाय उसी पर उनका अधिकार है । इसी कारण वे बड़ी कड़ाई से अपना प्राप्य वसूल करना चाहती हैं। एक छदाम भी छोड़ना नहीं चाहतीं ।

यह सुनकर दीप्ति अप्रसन्न हुई । वह योरप और अमेरिका की प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशहितैषिणी स्त्रियों के उदाहरण ढूँढ़ने लगी । नदी ने कहा—विशालता और महत्ता सब समय एक वस्तु नहीं

हैं । हम लोगों का कार्य-क्षेत्र विशाल नहीं है, इस कारण हमारे कार्यों का गौरव भी कम है, इस बात को मानने के लिए मैं तैयार नहीं। पेशी, स्नायु, हड्डी और चर्म आदि का स्थान बड़ा होता है, पर मर्म बहुत थोड़े ही स्थान में रहता है । हम लोग समस्त मानव-समाज के उसी मर्म-स्थान में रहती हैं । पुरुष-जाति के देवतागण बैल, भैंसा आदि बलवान् पशुओं पर चढ़कर भ्रमण करते हैं, परन्तु स्त्री-देवियाँ हृदय-कमल में विराजती हैं । वे एक विकसित सुन्दरता के बीच अपनी पूर्ण महिमा में विराजमान हैं। इस पृथिवी में यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो नारी का ही जन्म हो । भिक्षुक न होकर मैं अन्नपूर्णा ही बनी रहूँ। एक बार विचार की दृष्टि से देखो, इस मनुष्य-समाज में प्रतिदिन कितने रोग, शोक, क्षुधा, श्रान्ति, आदि का सामना करना पड़ता है; हर घड़ी कर्म-चक्र के घूमने से ढेर की ढेर धूल आकर जम जाती है; हर एक घर की रक्षा कितनी प्रीति से की जाती है । यदि कोई प्रसन्न-मूर्त्ति, प्रसन्नमुखी, धीरा लोक-वत्सला देवी सिरहाने आकर बैठे और मनुष्य के तपे हुए मस्तक को अपने स्पर्श से शीतल करे, अपने कार्यदक्ष और सुन्दर हाथों से प्रतिक्षण उसकी मलिनता दूर करे और घर में जाकर सदा उसके कल्याण और शान्ति के लिए प्रयत्न करे, तो उस देवी के कार्य-स्थल के सङ्कीर्ण होने पर भी उसके कार्यों की महत्ता कौन स्वीकार नहीं कर सकता ? यदि उस लक्ष्मी की उज्वल मूर्त्ति हमारे हृदय में विराजित रहे तो अवश्य ही हमारा नारी-जन्म सफल हो ।

इसके बाद हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे । इस सन्नाटे से नदी बहुत ही लज्जित हुई । उसने मुझसे कहा—तुम

हमारे देश की स्त्रियों के लिए क्या कह रहे थे। बीच में दूसरी बात के उठ जाने से वह बात वहीं रुक गई।

मैंने कहा—मैं यही कह रहा था कि हमारे देश की स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा बहुत बड़ी हैं, श्रेष्ठ हैं।

क्षिति ने कहा—इसका प्रमाण क्या है?

मैंने कहा—प्रमाण तो सामने ही है। इसका प्रमाण घर-घर में विद्यमान है। इसका प्रमाण प्रत्येक हृदय ही है। पश्चिम में भ्रमण करने के समय मार्ग में बहुत सी नदियाँ मिलती हैं। उनमें सूखी बालू का भाग ही अधिक है। उसी बालू की राशि के एक प्रान्त से स्फटिक के समान स्वच्छ जलवाली नदी धीरे धीरे प्रवाहित हो रही है। उस दृश्य के देखने से मुझे अपने समाज की याद आती है। हम लोग निकम्मे निश्चल बालू की राशि के समान पड़े हैं; प्रत्येक श्वास में मृत्यु की ओर आगे बढ़ते जाते हैं। यदि अपना कीर्त्ति-स्तम्भ बनवाते हैं तो वह भी थोड़े दिनों के बाद ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। हम लोगों के बाईं ओर हमारी स्त्रियाँ विनम्र दासी के समान बहुत ही संकुचित हो कर छोटे छोटे कामों में लगी हुई हैं और अपनी स्वच्छ सुन्दरता प्रकाशित कर रही हैं। उनको एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं। उनकी गति, प्रीति तथा समस्त जीवन अपने निश्चित उद्देश्य की ओर सदा ही अग्रसर हो रहा है। हम लोगों का उद्देश्य नहीं, एकता नहीं; बहुत दिनों से कुचले जाने के कारण अब हम लोगों में मिलने की शक्ति भी नहीं है। जिस ओर जल का प्रवाह है, जिस ओर हमारी स्त्रियाँ हैं, उसी ओर सारी शोभा, छाया और सफलता है और जिस ओर हम लोग हैं उसी

ओर मरुभूमि की चमक-दमक, भारी शून्यता और दग्ध दासता है। क्यों वायु, तुम क्या कहते हो ?

नदी और दीप्ति की ओर देखकर हँसते हुए वायु ने कहा—आज की सभा में अपनी असारता स्वीकार करने में साक्षात् दो बाधाएँ हैं। मैं उनका नाम लेना नहीं चाहता। बंगाली पुरुषों का इस संसार में यदि कहीं आदर है तो वह उनके घर में। बंगाली अपने घर में मनुष्य नहीं समझे जाते, किन्तु वे देवता माने जाते हैं। हम लोग देवता नहीं हैं किन्तु तृण और मिट्टी के पुतले हैं, यह बात अपने भक्तों के सामने कहने की क्या कोई आवश्यकता है ? जिस अनजान और विश्वासी भक्त ने अपने हृदय-कुञ्ज के सब खिले हुए फूलों को सोने के थाल में सजा कर हमारे चरणों में समर्पित कर दिया है उन फूलों को हम किसे लौटा दें ? हम लोगों को देवसिंहासन पर बिठाकर सदा व्रत धारण करनेवाली ये सेविकाएँ अपने गुप्त, पर चिरस्थायी, प्रेम-दीपक को लेकर हम लोगों के गौरव-हीन मुख की आरती उतारती हैं, उत्सुक होकर हमारी प्रदक्षिणा करती हैं; उनके सामने यदि हम लोगों ने अपनी उच्चता प्रमाणित नहीं की, यदि चुपचाप बैठे रहकर उनकी पूजा ग्रहण न की, तो क्या वे इससे सुखी होंगी, या हमी लोग सम्मानित हो सकेंगे ? जब तक वे छोटी थीं तब तक गुड़ियों की पूजा—उन्हें सजीव सा समझ कर—करती रहीं, और बड़ी होने पर देवता समझ कर मनुष्य-पुतले की पूजा करती हैं। यदि उस समय उनके खेलने की गुड़िया तोड़ दी जाती तो क्या वे बालिकाएँ रोती नहीं ? इस समय यदि उनके पूजने का गुड्डा तोड़ दिया जाय तो क्या इससे स्त्रियां

को कष्ट न होगा ? जहाँ मनुष्यत्व का पूर्ण गौरव वर्तमान है वहाँ मनुष्य ढोंग के बिना भी पूजा जाता है, और जहाँ मनुष्यत्व नहीं है वहाँ बनावटी देव-भाव दिखाना पड़ता है। जिस मनुष्य की संसार में कहीं प्रतिष्ठा नहीं है वह क्या मनुष्य बना रहकर स्त्री से पूजित होने की आशा कर सकता है ? पर हम लोग तो सचमुच देवता हैं। इसी कारण सुन्दर और सुकुमार हृदय को हमने बिना किसी संकोच के अपने कीचड़-भरे चरणों का पाद-पीठ (पायंदाज़) बना लिया है।

दीप्ति ने कहा—जिसमें यथार्थ मनुष्यत्व है वह देवता बनकर पूजा लेने की इच्छा नहीं करता। वह ऐसा करना लज्जा की बात समझता है। और, यदि कोई उसकी पूजा करता है तो वह स्वयं पूजा के योग्य बनने का प्रयत्न करता है। परन्तु बङ्गदेश में वह बात नहीं है। यहाँ देखा जाता है कि पुरुष निर्लज्जता के साथ अपने देवता होने का ढिंढोरा पीटते हैं। जिसमें जितनी ही थोड़ी योग्यता होती है वह उतना ही अधिक ढिंढोरा पीटता है। आज-कल स्त्रियों को पति-पूजा, पति-माहात्म्य समझाने के लिए पुरुष बड़ी ही चेष्टा करते हैं। आज-कल पुरुषों को पूर्ण मात्रा में नैवेद्य नहीं दिया जाता, इस कारण वे शङ्कित से जान पड़ते हैं। पर यह जो स्त्रियों को पति-पूजा की विधि सिखाने का प्रयत्न किया जाता है इसकी अपेक्षा पुरुषों को देवता बनने की शिक्षा अधिक लाभकारी होती। पतिदेव की पूजा में आज-कल कमी हो रही है, इस कारण स्त्रियों का उपहास किया जाता है। यदि पुरुषों को थोड़ा भी ज्ञान होता तो वे अवश्य ही अपने इस कर्म से लज्जित होते।

बंगाली स्त्रियों ने पूर्वजन्म में न जाने कितने पुण्य किये थे कि उन्होंने इस देवलोक में जन्म लिया है। वाह, कैसी देवता की शोभा है ! कैसा देवता का माहात्म्य है ?

नदी के लिए ये बातें असह्य हो उठीं। उसने गम्भीरता से कहा—देखती हूँ कि तुम लोगों का सुर धीरे धीरे बहुत ही ऊँचा होता जा रहा है, जिससे स्त्रियों की प्रशंसा की मधुरता का नाश हो रहा है । यदि यह बात सच है कि तुम लोगों की जितनी प्रशंसा हम करती हैं उस प्रशंसा के योग्य तुम नहीं हो तो क्या तुम लोग भी हमारी उचित से अधिक प्रशंसा नहीं करते ? यदि तुम लोग देवता नहीं हो तो हम भी देवी नहीं हैं। यदि हम तुम दोनों परस्पर देवी-देवता बनें तो, इस विषय में, झगड़ा करने की आवश्यकता ही क्या है। और हममें भी तो सब गुण ही गुण नहीं हैं। यदि हम हृदय की महत्ता के कारण बड़ी हैं तो तुम भी मानसिक महत्ता के कारण बड़े हो सकते हो ।

मैंने कहा—अपने स्वाभाविक मधुर शब्दों में जो तुमने कहा वह बहुत ही समयोचित है । नहीं तो दीप्ति के वाग्बाणों के कारण सच्ची बात कहने के लिए कोई भी साहस नहीं कर सकता । देवी, तुम केवल कविता की ही देवी हो, और मन्दिरों के देवता हम हैं । देवता के लिए जो कुछ भोग है, जो कुछ महत्ता है, उसके अधिकारी हम लोग हैं। और, तुम लोगों के लिए तो मनु-संहिता में केवल ढाई श्लोक हैं। तुम लोग हमारी परम देवता हो, इस कारण सुख-सम्पत्ति आदि में तुम्हारे अधिकारों का निर्देश करना एक प्रकार का हास्यास्पद प्रयत्न है। समस्त पृथिवी हम लोगों के लिए

है और उसका अवशिष्ट भाग तुम लोगों के लिए। भोजन हमारा है और जूठन तुम लोगों की। प्रकृति की शोभा का दर्शन, खुली हवा और स्वास्थ्य के लिए भ्रमण हम लोगों के लिए है, और दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर भी घर ही के कोने में, रोगी की शय्या पर तथा खिड़की पर तुम लोगों का अधिकार है। हम लोग देवता हैं, इस कारण हमारी पूजा होती है, और तुम देवी हो इस कारण कुचली जाती हो। विचार की दृष्टि से देखने पर दोनों देवताओं में बड़ा भेद देख पड़ता है।

वायु ने कहा—बँगला-साहित्य में स्त्रियों की प्रधानता का कारण बंगाली-समाज में स्त्रियों का प्रधान होना ही है।

मैंने कहा—इस देश में पुरुषों को कोई काम नहीं है। यहाँ कोई काम है तो गृहस्थी ही है। उसका बनाना और बिगाड़ना केवल स्त्रियों के ही हाथ में है। अच्छी या बुरी, जो कुछ शक्ति है वह स्त्रियों के ही हाथ में है। इस देश की स्त्रियाँ बहुत दिनों से उस शक्ति का प्रयोग करती आती हैं। जैसे स्टीम-बोट, बहुत बड़ी और बहुत बोझ से भरी हुई दूसरी नाव को,—प्रवाह के अनुकूल या प्रतिकूल—जिधर चाहता है उधर ले जाता है, वैसे ही इस देश की स्त्रियाँ सामाजिक व्यवहार, बहुत बड़े परिवार सहित अपनी गृहस्थी और पति नाम के एक न चल सकनेवाले बोझ को लेकर चलती हैं। दूसरे देशों के पुरुष सन्धि-विग्रह, राज्य-शासन आदि पुरुषों के योग्य बड़े बड़े कामों में सदा लगे रहते हैं। इस कारण उनकी प्रकृति स्त्री-प्रकृति से जुदा हो गई है। पर इस देश के पुरुष वैसे नहीं हैं। वे घर में पलते हैं, माता के द्वारा उनका लालन होता है और स्त्री

उनका संचालन करती है। यहाँ के पुरुष किसी बड़े भारी कार्य के द्वारा विशाल कार्य-क्षेत्र में अपने जीवन को विकसित करने का प्रयत्न नहीं करते। इसी कारण उन्हें स्वाधीनता का अत्याचार, गुलामी की हीनता और दुर्बलता का अपमान सिर नीचा करके सहना पड़ता है। उनको पुरुषों के योग्य कोई भी काम नहीं करना पड़ता; हाँ कापुरुषों के लायक़ अपमान का भागी अवश्य होना पड़ता है। स्त्रियों को बाहर जाकर अपने लिए कोई काम नहीं खोजना पड़ता। जैसे वृक्षों की शाखाओं में आप ही फल-फूल आदि लग जाते हैं, वैसे ही यहाँ की स्त्रियों को अपने आप काम मिल जाया करते हैं। जब से स्त्रियाँ प्रेम करना शुरू करती हैं तभी से उनका कर्त्तव्य भी शुरू हो जाता है। उसी समय से उनका चित्त विकसित हो जाता है। उनकी चिन्ता, विचार, युक्ति, कार्य आदि के प्रारम्भ होने का वही समय है। वहीं से उनका जीवन प्रारम्भ होता है। बाहर भले ही राष्ट्र-विप्लव हो जाय, पर उनके कार्यों में बाधा नहीं आ सकती। उनका गौरव ज्यों का त्यों बना रहता है। जातीय अधीनता में उनके तेज की रक्षा हो जाती है।

नदी की ओर मुँह करके मैंने कहा—आज हम लोगों को एक नई शिक्षा और विदेशी इतिहास से पौरुष का नया आदर्श मिला है। इस कारण अब हम लोग बाहर के विशाल कर्म-क्षेत्र की ओर जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर क्या भीगी लकड़ी जलती है, और क्या मुर्चा लगे पहिये चलते हैं? भीगी लकड़ी जितनी जलती है धुआँ उससे अधिक होता है—वे पहिये जितना चलते हैं उससे अधिक शब्द होता है। हम लोग बहुत दिनों से चुपचाप बैठे बैठे निकम्मे

हो गये हैं, हम लोगों को गुन गुन बातें करने का अभ्यास होगया है और तुम सदा से काम में लगी हुई हो। इसी कारण तुम लोगों के पास चरित्र नाम का एक पदार्थ है, एक पात्र है। जिसके पास अपनी वस्तु नहीं होती वह दूसरे की भी वस्तु नहीं पा सकता, और न पाकर उस वस्तु को अपनी ही बना सकता है। अतएव हम लोगों का भार इस समय भी तुम्हीं लोगों को ढोना पड़ेगा; और हम लोगों को काम में लगाने, बाहरी ढोंगों को दूर करने, आडम्बर को हटाने, मिथ्या अभिमान को नष्ट करने, विश्वास को बढ़ाने और देश-काल से सम्बन्ध स्थापित करने आदि का भार तुम लोगों पर है। सच्ची बात यह है कि अभी तक इन बोझ ढोने-वाली नावों को ले चलना तुम लोगों पर ही निर्भर है। ये वचन रूप पाल उड़ाना जानते हैं इस कारण इनके शक्तिशाली होने का विश्वास कभी न करना। इनको अभी आत्मशक्ति, आत्मसम्मान और व्यवस्थित तेज की आवश्यकता है। गले में साहबी ढंग की नेकटाई, और पीठ पर साहब का थप्पड़ सम्मान का कारण नहीं हो सकता—इस बात की शिक्षा तुम लोगों को ही कभी मधुरता से और कभी रुखाई से देनी होगी। इन पालतू पशुओं के गले की चमकीली रस्सी काट दो। इनके लम्बे कानों में यह मन्त्र फूँक दो कि अन्न खाने की ही वस्तु है, वह हाथ-पैर-सिर आदि में लगाया नहीं जाता, और लगानेवाले की अप्रतिष्ठा ही होती है। इसी प्रकार शिक्षा गले में, माथे में, हाथ में रखने की चीज़ नहीं है। पचाकर उसके द्वारा मानसिक उन्नति करना ही उसका यथार्थ उपयोग है।

नदी ने कुछ भी नहीं कहा। उसने एक बार मेरी ओर स्नेह

की दृष्टि से देखा और फिर मेरा मस्तक छू करके घर की ओर चली गई।

गँवई-गाँव

भादों का महीना है। चारों ओर जल ही जल होगया है। खेतों में धान की फुनगी के सिवा और कुछ भी नहीं देख पड़ता। दूर दूर पर वृक्षों से घिरे हुए गाँव ऊँची भूमि पर टापू ऐसे देख पड़ते हैं।

यहाँ के मनुष्य बड़े ही प्रेमी, विश्वासी और भक्त हैं। इनको देखने से मालूम पड़ता है कि आदम और इवा ने ज्ञान-वृक्ष के फल खाने के पहले ही इनके पूर्व-पुरुषों को उत्पन्न किया था। इसी कारण यदि शैतान भी इनके यहाँ आता है तो ये उसे पूज्य अतिथि समझते हैं और उसको अपना भोजन देकर उसकी सेवा करते हैं।

इन मनुष्यों के स्निग्ध हृदय को मैंने अपना आश्रम बनाया है। वहाँ रहने के समय पञ्चभूत-सभा के किसी सभ्य ने मेरे पास समाचार-पत्रों के कटे टुकड़े भेज दिये। उन टुकड़ों के भेजने से उस सभ्य का मतलब यह था कि मुझे इस बात का स्मरण हो जाय कि पृथिवी घूमती है, वह स्थिर नहीं है। इसी परिवर्तन-शीलता का स्मरण कराने के लिए उसने लन्दन, पैरिस आदि के संवादों को एकत्रित करके मेरे पास भेजा है।

इन टुकड़ों का मिलना एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। इनको पढ़ने से मुझे बहुत सी नई नई बातें सूझीं। कलकत्ते में रहने के समय ये बातें अच्छी तरह मेरी समझ में नहीं आ सकती थीं।

मैं सोचने लगा—इन मूर्ख निरक्षर किसानों को मैं थ्योरी के हिसाब से असभ्य बर्बर कहकर अवज्ञा का भाव प्रकट करता हूँ। पर पास आकर मैं यथार्थ में इन्हें अपना आत्मीय सा समझने लगता हूँ; इनसे प्रेम हो जाता है और मेरा अन्तःकरण गुप्त रूप से इनके प्रति श्रद्धा करने लगता है।

परन्तु लन्दन और पैरिस के किसानों के साथ तुलना करने से ये उनके आगे बहुत ही हीन जँचते हैं! कहाँ वहाँ की राजनीति, शिल्प और साहित्य, और कहाँ ये किसान! देश के लिए प्राण देने की बात तो दूर है, ये यह भी नहीं जानते कि देश किसको कहते हैं।

इन बातों का विचार कर लेने पर भी मेरे हृदय में यह बात बार बार प्रतिध्वनित होने लगी, कि ये अबोध और सीधे मनुष्य केवल स्नेह के ही योग्य नहीं हैं, श्रद्धा के पात्र भी हैं।

इन लोगों पर मैं क्यों श्रद्धा करता हूँ, इसका कारण ढूँढ़ने लगा। विचार करने पर मालूम हुआ कि इन लोगों में सरल विश्वास और उसका मूल्य बहुत अधिक है। वह मनुष्यत्व का सबसे बड़ा प्रधान धन है। यदि मुझसे कोई मेरे हृदय की बात पूछे, तो मैं साफ़ साफ़ यह कहूँगा कि इस संसार में और दूसरी कोई भी वस्तु सरल विश्वास की अपेक्षा अधिक मनोहर नहीं है।

उस सरलता के न रहने पर सभ्यता की सारी सुन्दरता जाती रहती है; क्योंकि स्वास्थ्य नहीं रहता। मनुष्य-प्रकृति का स्वास्थ्य सरलता ही है।

शरीर के स्वास्थ्य के लिए जितना भोजन किया जाय उसका

पच जाना आवश्यक है। स्वादिष्ट और घी में बना हुआ अनेक प्रकार का भोजन स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता।

सारे ज्ञान और विश्वास को पक्का करके अपने स्वभाव के साथ मिला देने का ही नाम सरलता है। वही मानसिक स्वास्थ्य है। तरह तरह के ज्ञान तथा अनेक प्रकार के मतों का नाम स्वास्थ्य नहीं है।

यहाँ के रहनेवाले देहाती आदमी जिस ज्ञान और विश्वास से अपना अपना जीवन बिताते हैं वह ज्ञान और विश्वास उनकी प्रकृति के साथ मिला हुआ होता है। जिस प्रकार साँस का चलना और रक्त-सञ्चालन हम लोगों के अधीन नहीं है उसी प्रकार तरह तरह के मतामतों का रखना न रखना भी उनके हाथ में नहीं है। वे जो कुछ जानते हैं, जिस पर विश्वास करते हैं, उसे सहज भाव से ही जानते और सहज ही विश्वास करते हैं। इसी कारण वे अपने ज्ञान के साथ, विश्वास के साथ, मनुष्य के साथ मिल कर एक हो गये हैं।

एक उदाहरण देता हूँ। घर पर यदि कोई अतिथि आ जाय तो ये उसको किसी प्रकार भी लौट जाने नहीं देते—बड़ी भक्ति के साथ उसकी सेवा करते हैं। अतिथि-सेवा में यदि इनकी कुछ हानि हो जाय, यदि इन्हें कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो ये उसकी कुछ भी परवा नहीं करते। हम लोग भी अतिथि-सेवा को धर्म समझते हैं। पर हम लोग जानते ही हैं, उस पर हमारा विश्वास नहीं। अतिथि को देखते हीहमारी चित्त-वृत्तियाँ बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उसकी सेवा के लिए तैयार नहीं हो जातीं। उस समय हमारे हृदय

में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क होने लगते हैं; अविश्वास की लहरें उठने लगती हैं। इसका प्रधान कारण यही है कि इस सम्बन्ध में हमारी प्रकृति के साथ विश्वास मिल नहीं गया।

स्वभाव के भिन्न भिन्न अंशों में अविच्छेद्य ऐक्य ही मनुष्यत्व का अन्तिम लक्ष्य है। निम्नतम श्रेणी के जीवों में देखा जाता है कि उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग काट देने पर भी, उनको तीन चार भाग में बाँट देने पर भी, उनकी कोई क्षति-वृद्धि नहीं होती। परन्तु ऊँची श्रेणी के जीवों में यह बात नहीं देखी जाती। जीवों में जैसे जैसे उन्नति होती गई है वैसे वैसे उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता गया है।

मनुष्यों के स्वभाव में भी ज्ञान, विश्वास और कार्य की भिन्नता निम्न कोटि में पाई जाती है। इन तीनों में अभिन्न संयोग ही मनुष्यत्व की अन्तिम उन्नति है।

किन्तु जहाँ ज्ञान, विश्वास और कार्य में विचित्रता नहीं है वहाँ इनमें एकता हो जाना, इनका मिल जाना भी कुछ कठिन नहीं है। फूलों के लिए सुन्दर होना जितना सहज है मनुष्यों के लिए सुन्दर होना उतना सहज नहीं। प्राणियों के अनेक प्रकार के कार्यों के करने योग्य विविध अङ्गों में वैसी सुन्दरता और सम्पूर्णता का होना बहुत कठिन है। जन्तुओं की अपेक्षा मनुष्यों में सुन्दरता का होना और भी दुर्लभ है। मानसिक प्रकृति के विषय में भी यही बातें कही जा सकती हैं।

इस गाँव के किसानों की प्रकृति में जो एक प्रकार की एकता देखी जाती है उसमें बड़पन की जटिलता कुछ भी नहीं है। इस भूखण्ड में धान के खेतों के बीच जीवन व्यतीत करने में कुछ

साधारण अभावों की केवल पूर्त्ति करनी पड़ती है। उसके लिए दर्शन, विज्ञान तथा समाज-तत्त्व आदि जानने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। जो कुछ प्राचीन परिवार-नीति, ग्राम-नीति, प्रजा-नीति आदि की आवश्यकता है, वे यहाँ सहज ही मनुष्य-प्रकृति के साथ मिल कर अखण्ड जीवित भाव धारण कर सकती हैं।

क्षुद्र होने पर भी इसमें सुन्दरता है, जो बल-पूर्वक अपनी ओर चित्त को खींच लेती है। यह सुन्दरता इस छोटे से अशिक्षित गाँव में कमल के समान विकसित हुई है और अहङ्कारी सभ्य-समाज को आदर्श की शिक्षा देती है। अतएव लन्दन, पैरिस आदि का सभ्यता-कोलाहल संवाद-पत्रों द्वारा सुनाई पड़ने पर भी यह छोटा सा गाँव मेरे हृदय में एक प्रधान आसन पर विराजमान है। इसी कारण इस गाँव पर मुझे श्रद्धा है।

अनेक प्रकार की चिन्ताओं से व्यस्त मेरे हृदय के निकट यह छोटा सा गाँव तानपूरे के सुर के समान एक आदर्श उपस्थित करता है। वह कहता है—मैं बड़ा नहीं हूँ, और न विस्मय-जनक ही हूँ। मैं तो छोटा हूँ, तथापि सम्पूर्ण हूँ। अतएव यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि अनेक अभावों के रहने पर भी मुझमें एक प्रकार की मधुरता है। मैं छोटा हूँ, इस कारण आप मुझे तुच्छ समझ सकते हैं; पर मैं सम्पूर्ण हूँ और इस कारण सुन्दर हूँ। वह सुन्दरता ही तुम लोगों के जीवन का आदर्श है।

बहुत लोग मेरी बातें सुन कर हँसी को न रोक सकेंगे तथापि मुझे यह कह देना उचित है कि इन दीप्ति-हीन किसानों के मुँह पर मैं सुन्दरता की एक आभा देखता हूँ जो मनोहर स्त्री के सौन्दर्य

के समान है । यह देख कर स्वयं मैं ही विस्मित हूँ और सोचता हूँ कि यह सुन्दरता काहे की है । मैंने इसका एक उत्तर भी सोच लिया है ।

जिसकी प्रकृति एक विशेष और स्थायी भाव को ग्रहण करती है उसके मुख पर वह भाव क्रमशः एक स्थायी सुन्दरता अंकित कर देता है ।

मेरे ये ग्रामवासी भी जन्म से ही कुछ स्थिर भावों की ओर स्थिर दृष्टि लगाये हुए हैं अतएव उन भावों को भी इन मनुष्यों की दृष्टि में अपने को अङ्कित कर देने का पूर्ण अवसर मिला है । इसी कारण इनकी दृष्टि में एक सकरुण धैर्य और इनके मुख पर आश्रय-शील वात्सल्य का भाव स्थिर रूप से प्रकट होरहा है ।

जो समस्त विश्वासों के विषय में प्रश्न करते हैं, जो अनेक प्रकार के भावों की परख करते हैं, उनका मुखमण्डल बुद्धि के प्रकाश से अवश्य प्रकाशित रहता है, अनुसन्धान-परता की निपुणता उनके मुख-मण्डल पर अवश्य प्रतिबिम्बित रहती है, पर भाव की गहरी स्निग्ध सुन्दरता में और उसमें बड़ा भेद रहता है ।

मैं जिस नदी में इस समय छोटी नाव पर बैठा हूँ उसमें प्रवाह नहीं है, यह भी कहा जा सकता है। इसीसे यह नदी श्वेत कमल, लाल कमल, सेवार आदि से आच्छन्न हो रही है । इसी प्रकार की स्थिरता का अवलम्बन पाये बिना भाव-सौन्दर्य भी गम्भीर भाव से बद्धमूल होकर अपने को विकसित करने का अवसर नहीं पाता ।

प्राचीन योरप नव्य अमेरिका में उसी भाव के अभाव का अनुभव करता है । नव्य अमेरिका में उज्ज्वलता है, चञ्चलता है,

कठिनता है, पर भाव की वह गम्भीरता नहीं । क्योंकि वह अभी बिलकुल नया है । अभी वह भाव उत्पन्न करने योग्य नहीं हुआ । अभी तक वहाँ की सभ्यता मनुष्य की प्रकृति के साथ मिल कर मनुष्य के हृदय में अपना अधिकार नहीं स्थापित कर सकी । योरप के कोने कोने वह पुरातन भाव अपना हरा अंकुर उत्पन्न कर रहा है तथा उसके द्वारा समस्त योरप को प्रकाशित करता है । अमेरिका में वह प्रकाश नहीं है, वह सुन्दरता नहीं है । बहु-स्मृति, लोकोक्ति, विश्वास और संस्कार आदि के द्वारा अभी तक वहाँ मनुष्य-जीवन प्रौढ़ नहीं हुआ है ।

परन्तु हमारे किसानों के मुँह पर अन्तःप्रकृति का वही रङ्ग जम गया है । मुझे बड़ी इच्छा होती है कि सरलता की वह पुरातन शोभा सबको दिखलाऊँ । पर कठिनता यह है कि वह शोभा है बड़ी सुकुमार । यदि कोई कहे कि हमने उसे नहीं देखा या देखकर कोई उसका उपहास करे तो उसको दिखाना मेरी शक्ति से बाहर है ।

मैं इन समाचार-पत्रों के टुकड़ों को पढ़ता हूँ और मुझे बाइबिल की एक बात याद आती है । बाइबिल में लिखा है कि जो नम्र है वही इस समस्त पृथिवी का अधिकार पा सकता है । मैं यहाँ जो नम्रता देख रहा हूँ उसमें एक स्वर्गीय अधिकार है । इस संसार में सुन्दरता की अपेक्षा नम्र और कुछ नहीं है । वह बलप्रयोग के द्वारा कोई काम करना नहीं चाहती । एक ऐसा समय आवेगा जब इस पृथिवी पर उसीका अधिकार होगा । आज इस ग्राम-वासिनी सुन्दरी सरलता ने एक नगरवासी और नवीन सभ्यता के दत्तक पुत्र को अपनी ओर खींच लिया है । यह इस बात की पूर्व

सूचना है कि यह किसी दिन समस्त सभ्यताओं की महारानी होगी। सम्भव है, अभी इसमें बहुत समय लगे। पर यदि सभ्यता अन्त में सरलता के साथ सम्मिलित नहीं होगी तो उसे अपने आदर्श की पूर्णता भी नहीं प्राप्त हो सकती।

यह बात पहले कही जा चुकी है कि भाव-सौन्दर्य स्थिरता के ऊपर निर्भर है। पुरानी बातों के स्मरण में जो सुन्दरता है वह उसके अप्राप्य होने के कारण नहीं है। हृदय बहुत दिनों तक उसके ऊपर रह सकता है, इसी कारण सहस्र सजीव कल्पना-सूत्रों को फैला कर उसे वह अपने साथ मिला लेता है; यही पुरानी बातों के सुन्दर और मधुर होने का प्रधान कारण है। पुराने घर, पुराने देव-मन्दिर आदि की प्रधान सुन्दरता का प्रधान कारण यही है कि वे बहुत दिनों से स्थिर हैं, और इसी से मनुष्यों के साथ उनका सम्बन्ध होगया है। वे सदा मनुष्य-हृदय के साथ से सचेतन हो गये हैं, समाज के साथ उनका सब प्रकार का भेद दूर होगया है और वे समाज का एक अङ्ग हो गये हैं। मनुष्य-समाज में स्त्रियाँ सबसे पुरानी हैं। पुरुष बहुत दिनों से अनेक प्रकार के कार्य, अवस्था और परिवर्तनों के प्रवाह में बह रहा है। पर स्त्रियाँ सर्वदा स्थिर हैं। वे केवल पत्नी और माता के रूप में वर्तमान रहती हैं। कोई भी विप्लव उनको अपने इस रूप से डिगा नहीं सकता। इसी कारण स्त्रियाँ समाज के हृदय के साथ अच्छी तरह मिल गई हैं। केवल इतना ही नहीं, किन्तु वे समाज के भाव, काम और शक्ति के साथ मिलकर एक हो गई हैं। इस प्रकार की दुर्लभ एकता प्राप्त करने के लिए उन्हें पूरा मौक़ा मिला है।

इसी प्रकार बहुत दिनों तक की स्थिरता के द्वारा जब युक्ति, तर्क और ज्ञान क्रमशः संस्कार और विश्वास के रूप में परिणत हो जाते हैं उसी समय उनकी सुन्दरता विकसित होती है। उस समय वह सुन्दरता स्थिर हो जाती है, और मनुष्य के हृदय में जो बीज बहुत दिनों से वर्तमान रहते हैं वे आनन्द के प्रकाश और अश्रुजल के द्वारा अंकुरित होते हैं और उसे छा लेते हैं।

इस समय योरप में जो एक नई सभ्यता का युग उत्पन्न हुआ है उस युग में लगातार नये नये ज्ञान-विज्ञान और मतामत का ढेर लगता जा रहा है। नये नये यन्त्रों और सामग्रियों के आविष्कार से इस समय वहाँ स्थानाभाव सा देख पड़ता है। सदा परिवर्तन और चञ्चलता के कारण वहाँ कोई बात पुरानी नहीं होने पाती।

पर मैं देखता हूँ कि इस सारी तैयारी के बीच में मनुष्य का हृदय सुखी नहीं है, उसे शान्ति नहीं है, वह केवल रोया ही करता है।

इसका कारण यह है कि मनुष्यों का हृदय जब तक इस विशाल सभ्यता के ढेर में एक सुन्दर एकता स्थापित नहीं कर सकेगा, तब तक वह कभी आराम से गृहस्थी जमाकर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। तब तक वह केवल अस्थिर और अशान्त होकर भटकता फिरेगा। इस युग में और सब जमा होगया है, केवल अभी तक उसी स्थायी सौन्दर्य और नवीन सभ्यता की राजलक्ष्मी के दर्शन नहीं हुए। ज्ञान, विश्वास और कार्य—आपस में धकमधक्का करके—एक दूसरे को सता रहे हैं और वह भी सम्मिलित होने के लिए नहीं, किन्तु एक दूसरे को दबाने के लिए। विजय प्राप्त करने के लिए ही इनमें परस्पर भिड़न्त होरही है।

यह बात नहीं है कि केवल प्राचीन काल की स्मृति में ही सौन्दर्य है। नवीन आशा में भी सौन्दर्य है। पर अभाग्यवश योरप की नई सभ्यता में अभी तक आशा का सञ्चार नहीं हुआ। प्राचीन योरप अनेक प्रकार की आशाओं से ठगा जा चुका है। बड़े विश्वास से उसने जिन उपायों का अवलम्बन किया था वे एक एक करके सब व्यर्थ हो गये हैं। बहुतों की राय है कि फ़ान्स का ग़दर एक भारी प्रयत्न का व्यर्थ परिणाम था। एक समय योरप के लोगों का विश्वास था कि सब लोगों को वोट देने का अधिकार दे देने ही से पृथिवी के प्रायः सब दुःख दूर हो जायँगे। सब को वोट देने का अधिकार दिया भी गया पर पृथिवी के दुःख अभी ज्यों के त्यों बने हैं। एक समय लोगों की यह धारणा थी कि राज्य के द्वारा मनुष्यों के दुःख दूर किये जा सकते हैं, पर आज राज्य स्थापित होने पर विद्वानों को यह खटका हो रहा है कि राज्य के द्वारा मनुष्यों के कष्ट दूर करने का प्रयत्न करने से उलटा फल होने की सम्भावना है। कोयले की खान, कपड़े की कल, और विज्ञान-शास्त्र पर बहुतों का विश्वास है। पर उनसे भी मनुष्यों के कष्ट दूर नहीं होते। बड़े बड़े विद्वानों का कहना है कि कलों के द्वारा भी मनुष्य पूर्णता नहीं पा सकता। आधुनिक योरप कहता है कि आशा न करो, विश्वास भी मत करो,—केवल परीक्षा करो।

इस नवीन सभ्यता की तुलना उस स्त्री से की जा सकती है जिसने वृद्ध पुरुष के साथ ब्याह किया हो। उसके समृद्धि तो है किन्तु यौवन नहीं है। वह (सभ्यता) अपनी अनेक पुरानी अभिज्ञताओं के कारण जीर्ण हो रही है। नई सभ्यता और

मनुष्यों में परस्पर प्रेम नहीं है। घर में केवल अशान्ति ही छाई हुई है।

इस प्रकार इस विषय की आलोचना करके मैं इस छोटे से गाँव की क्षुद्र संपूर्णता के सौन्दर्य को देखकर दूना आनन्द पा रहा हूँ।

परन्तु मैं ऐसा अन्धा नहीं हूँ कि योरप की सभ्यता की मर्यादा को न देखता होऊँ। विचित्रता में मेल ही ऐक्य का पूर्ण आदर्श है; विचित्रता में मेल ही सौन्दर्य का प्रधान कारण है। इस समय योरप में भिन्नता की तूती बोलती है; अतएव परस्पर विच्छेद विषमता आदि देख पड़ती है। जब किसी समय एकता का युग आवेगा तब ये सब मिल कर एक सुन्दर सभ्यता को उत्पन्न करेंगे। जो अपने छोटे उद्देश्य को सिद्ध करना ही अन्तिम कर्तव्य समझते हैं वे निःसन्देह अपना समय सुख और शान्ति से बिताते हैं। और, जो मनुष्य प्रकृति को छोटे उद्देश्य की ओर से हटा कर विशाल आदर्श की ओर ले जाते हैं उन्हें अवश्य ही अशान्ति तथा अनेक विघ्न-बाधाओं से कष्ट उठाना पड़ेगा। पर हैं वे वीर। उन्हें युद्धस्थल में प्राण-त्याग करने पर स्वर्ग प्राप्त होगा। वीरता और सौन्दर्य का मिलन ही पूर्ण सभ्यता है और दोनों के अलग अलग रहने का नाम अर्द्धसभ्यता है।

मैं इस गाँव में बैठकर अपने सीधे-सादे तानपूरे के चारों तारों को एक सुर में मिलाकर योरपीय सभ्यता से कहता हूँ कि तुम्हारा सुर मिला नहीं है, और साथ ही अपने तानपूरे से भी कहता हूँ कि तुम्हारे इन कई एक तारों के मिलने से बार बार जो यह स्वर की झनकार हो रही है वही सङ्गीत की अन्तिम सीमा

नहीं है । किन्तु सम्भव है कि आजकल का यह विचित्र और विलक्षण स्वर-समूह प्रतिभा के प्रभाव से किसी दिन आदर्श संगीत के रूप में परिणत हो जाय । तुम्हारे इन कई तारों से उस महान् संगीत का स्वरूप दिखाना कठिन ही नहीं, सोलहों आने असम्भव है ।

मनुष्य

नदी एक दिन प्रातःकाल के समय हाथ में मेरी एक बड़ी पुस्तक लिये मेरे पास आई और वह पुस्तक दिखा कर बोली—यह सब तुमने क्या लिखा है ? जो बातें मैंने कभी नहीं कहीं वही बातें तुमने इसमें मेरे मुँह से क्यों कहलाई हैं ?

मैंने कहा—तो इसमें दोष क्या हुआ ?

नदी ने कहा—इस तरह की बातें मैं कभी नहीं कहती और कह भी नहीं सकती । यदि तुम मेरे मुँह से वैसी बातें कहलाते जिन्हें मैंने कहा हो या न कहा हो, लेकिन उनको कहना मेरे लिए सम्भव होता तो मैं कभी लज्जित न होती । पर तुम तो एक पुस्तक ही लिख कर उसे मेरे नाम से चलाना चाहते हो ।

मैंने कहा—तुमने मेरे सामने क्या और कितना कहा है, सो तुम कैसे समझ सकती हो ? तुमने जो कुछ कहा है और तुम्हारे विषय में जितनी मेरी जानकारी है, दोनों को मिलाने से बहुत बड़ी बड़ी बातें निकल आती हैं। तुम्हारा जीवन बहुत सी बातों का उपदेश देता है, उसके द्वारा बहुत सी बातें मालूम होती हैं । तुम्हारी उन अव्यक्त और ख़ुद समझ लेने की बातों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ?

नदी चुप हो गई। मालूम नहीं, उसने क्या समझा और क्या नहीं समझा। शायद उसने समझ लिया। तथापि मैंने फिर उससे

कहा—तुम सदेह वर्तमान हो, हर घड़ी तुम्हारी नई नई बातें, नये नये भाव प्रकाशित होते हैं। और इस बात को दूसरों को जताने के लिए तुम्हें कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता। पर जो बातें लिखी जाती हैं, उनकी सचाई प्रमाणित करने के लिए प्रयत्न करने पड़ते हैं। जो पहली सत्य बात तुम्हारे विषय में लिखी गई है उसको प्रमाणित करने के लिए भी प्रयत्न करने की आवश्यकता है। यदि ऐसा न किया जाय तो एक प्रत्यक्ष बात की तुलना एक अप्रत्यक्ष बात के साथ कैसे की जा सकती है? तुम जो समझती हो कि तुम्हारे द्वारा मैंने बड़ी बड़ी बातें कहलाई हैं सो ठीक नहीं। मैंने तो तुमको संक्षिप्त कर लिया है। इस पुस्तक में तुम्हारी सब बातों, कामों और आकार-इङ्गित आदि का केवल सार-संग्रह किया गया है। नहीं तो तुमने जितनी बातें मुझसे कही हैं ठीक उन्हीं बातों को मैं किसी के आगे प्रकट नहीं कर सकता था। लोग बहुत कम सुनते और उनका ठीक भाव न ग्रहण कर सकते।

नदी ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया और पुस्तक के पन्ने उलटने-पलटने लगी। तदनन्तर उसने कहा,—तुम मुझ पर प्रेम करते हो, इसी कारण मुझको बहुत बड़ी समझते हो। लेकिन उतनी बड़ी सचमुच मैं नहीं हूँ।

मैंने कहा—क्या मैं तुम पर इतना स्नेह करता हूँ कि जिससे तुम जो हो, तुम्हारा जैसा स्वरूप है, उसे मैं ठीक ठीक जान सकूँ? एक मनुष्य की सब बातों को यथार्थ जान ले, ऐसा प्रेम ईश्वर के सिवा और किस में है?

इन बातों को सुन कर क्षिति घबरा गई। उसने कहा—अब

यह कौन बात होने लगी ? नदी ने तुमसे दूसरी बात पूछी, और तुम दूसरी बात कहने लगे ।

मैंने कहा—यह बात मुझे मालूम है । पर बातचीत में ऐसा उत्तर दिया जा सकता है । मन एक प्रकार का जल उठनेवाला पदार्थ है । जहाँ उस पर प्रश्न की चिनगारी गिरती है वहाँ सम्भव है कुछ भी न हो, और वहाँ से दस हाथ दूर पर भभक उठे । किसी कमेटी में बाहर के आदमी नहीं जा सकते, उनका वहाँ जाना निषिद्ध है । पर यदि कोई महोत्सव हो तो उसमें जो आता है वही बड़े आदर से बैठाया जाता है । हम लोगों की बात-चीत की सभा भी एक प्रकार का महोत्सव है । यहाँ यदि बिना बुलाये कोई बात चली आवे तो प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत करना चाहिए । उसको उचित स्थान पर बैठाना चाहिए । यदि ऐसा न किया जाय तो फिर उत्सव की महत्ता ही क्या है ?

क्षिति ने कहा—मुझसे ग़लती हुई । ठीक है, जो कहते थे वही कहो । प्रह्लाद 'क' अक्षर पढ़ने के समय कृष्ण का स्मरण होने से प्रेम-गद्गद हो जाता था, वह रोने लगता था । इसी कारण उसकी वर्णमाला समाप्त भी नहीं हुई । यदि किसी प्रश्न के सुनने से दूसरी बात का उत्तर तुम्हें स्मरण हो आवे तो क्या किसी बात के समाप्त होने की कभी सम्भावना की जा सकती है । पर प्रह्लाद की प्रकृति के मनुष्यों को उनकी इच्छा के अनुसार चलने देना ही अच्छा है । जो मन में आवे वही उनको बोलने देना चाहिए, नहीं तो प्रह्लाद की घटना के समान क्या दूसरी घटना नहीं हो सकती ?

मैंने कहा—मैं यही कहता था कि जिससे हम लोग प्रेम करते

हैं उसी में हम लोग परमात्मा को देखते हैं। मनुष्य में अनन्त के अनुभव का नाम ही प्रेम है और प्रकृति में अनन्त के अनुभव का नाम सौन्दर्य है। इससे यह बात साफ़ साफ़ जानी जाती है कि वैष्णव धर्म में यही तत्त्व गूढ़ भाव से वर्त्तमान है।

क्षिति ने मन ही मन सोचा, कैसे दुःख की बात है। फिर यह दार्शनिक विचार न मालूम कहाँ से कूद पड़ा। नदी और दीप्ति को भी दार्शनिक विषय अच्छे नहीं लगते। पर जो बात सहसा मन के अन्धकार को भेदती हुई बाहर निकल जाती है, उसके पीछे पीछे अन्त तक चलने का भाव के शिकारियों को अभ्यास है। अपनी बात स्वयं समझने के लिए बहुत सी इधर उधर की बातें कहनी पड़ती हैं। पर दूसरे लोग समझते हैं कि यह तत्त्वोपदेश करता है।

मैंने कहा—वैष्णव धर्म ने संसार के सभी प्रेम-सम्बन्धों में ईश्वर का अनुभव करने की चेष्टा की है। माता अपने पुत्र को देख कर आनन्दित हो रही है। वह अपना समस्त हृदय प्रकाशित करके भी इस नन्हें से मनुष्य के अंकुर को स्थान नहीं दे सकती, वह इस बालक में ईश्वर की उपासना करती है, इस छोटे से बालक में अनन्त वत्सलता का अनुभव करती है। जो दास अपने स्वामी के कार्य के लिए प्राण देने को तैयार है, जो मित्र अपने मित्र के लिए स्वार्थ-त्याग करता है, स्त्री और पुरुष परस्पर आत्म-त्याग करने के लिए व्याकुल हैं, ये सब परम प्रेम में असीम और लोकातीत ऐश्वर्य का अनुभव करते हैं।

क्षिति ने कहा—सीमा में असीम, प्रेम में अनन्त आदि बातें

जितनी ही अधिक सुनी जाती हैं उतनी ही अधिक उनकी कठिनता भी बढ़ती है। पहले जब मैंने ये बातें सुनीं तब मालूम होता था कि मैं इन बातों को कुछ कुछ समझ रही हूँ। पर अब असीम अनन्त आदि शब्दों ने इस बात को बहुत ही कठिन कर दिया है। समझने का कोई उपाय ही नहीं है।

मैंने कहा—भाषा भूमि के समान है। उसमें एक ही तरह का अन्न बोते रहने से उसकी उपजाऊ शक्ति जाती रहती है। 'अनन्त' और 'असीम' शब्दों का इस समय ख़ूब प्रयोग होता है। अतएव इनकी शक्ति भी इस समय कम होगई है। यदि एक भी यथार्थ बात न कहनी हो तो उल्लिखित दोनों शब्दों का प्रयोग करना मेरी समझ में अनुचित है। मातृभाषा के गौरव की रक्षा करनी ही चाहिए।

क्षिति ने कहा—भाषा के साथ तुम्हारा सदय व्यवहार तो नहीं देख पड़ता।

वायु अभी तक मेरी पुस्तक पढ़ता था। पुस्तक समाप्त करके वह कहने लगा—यह तुमने क्या किया? तुम्हारी डायरी के मनुष्य मनुष्य हैं या भूत! देखता हूँ कि ये केवल बड़ी बड़ी अच्छी अच्छी बातें कहते हैं, पर न मालूम इनका आकार और आयतन कहाँ गया?

मैंने उदास होकर पूछा—क्यों?

वायु ने कहा—तुम समझते हो कि आम की अपेक्षा आम का सत अच्छा होता है, क्योंकि उसमें छिलका, जल आदि कुछ नहीं रहता, रहता है केवल ख़ालिस आम। पर आम के सत में उसकी वह परम-लोभनीय गन्ध तो नहीं होती, उसका वह सुन्दर

रूप तो नहीं है। तुम केवल हमारी सार बातें लोगों के सामने रखते हो, पर हमारे मनुष्यत्व की ओर तुम्हारा कुछ भी ध्यान नहीं है। हमारी बेबाक व्यर्थ बातों को शृङ्खलित करके जो तुमने एक सारवान् मूर्त्ति चित्रित की है उसमें दाँत लगाना दुःसाध्य है। हम लोग कुछ बुद्धिमान् मनुष्यों से प्रशंसित होना नहीं चाहते। हमारी इच्छा सर्वसाधारण से परिचित होने और उन्हींमें रहने की है।

मैंने पूछा—इसके लिए क्या करना चाहिए ?

वायु ने कहा—यह बात मुझे मालूम नहीं, मैंने दोष बतला दिया। जैसा मेरा सारांश है वैसा ही स्वाद भी है। सम्भव है, सार की मनुष्यों को अधिक आवश्यकता हो। परन्तु स्वाद प्रिय है। मैं यह नहीं चाहता कि मनुष्य हमारे विषय में तर्क-वितर्क करें अथवा अपना मतामत प्रकाशित करें। मेरी इच्छा केवल यही है कि मनुष्य मुझे पहचानें। भ्रम-पूर्ण, परन्तु स्पृहणीय, मनुष्य-जन्म छोड़ कर किसी मासिक-पत्र के भ्रम-रहित प्रबन्ध का जन्म लेना मेरी इच्छा के प्रतिकूल है। मैं दार्शनिक तत्त्व नहीं हूँ, न छपी हुई पुस्तक ही हूँ और न तर्क की युक्ति या कुयुक्ति ही। मेरे मित्र, मेरे बान्धव, जो मुझको सदा समझते हैं मैं हूँ भी वही।

व्योम अभी तक चुपचाप बैठा था। एक कुरसी पर बैठकर, दूसरी कुरसी पर पैर फैलाये, वह बड़ी गम्भीरता से बैठा था। वह बोला—तर्क हो चाहे तत्त्व, ये सब अन्त में सिद्धान्त अथवा उपसंहार के रूप में परिणत होते हैं। सिद्धान्त का रूप पाना ही इनके लिए बड़े गौरव की बात है। पर मनुष्य एक स्वतन्त्र पदार्थ है। अमरता—समाप्ति न होना ही—इसकी मुख्य यथार्थता है। बिना

विश्राम की गति ही इसका प्रधान लक्षण है। अमरता को संक्षिप्त कौन कर सकता है, गति का सारांश कौन दे सकता है? यदि अच्छी अच्छी पक्की बातें अनायास ही मनुष्य के द्वारा कहलाओ तो भ्रम हो सकता है कि उसके मन में गति-वृद्धि नहीं है। कहीं उसकी समाप्ति तो नहीं हो गई है? प्रयत्न, भ्रम, असम्पूर्णता, पुनरुक्ति आदि यद्यपि देखने में दरिद्रता के समान प्रतीत होते हैं तथापि उनके द्वारा मनुष्य के ऐश्वर्य का पता लगता है, उनके द्वारा चिन्ता की एक गति और जीवन निर्दिष्ट होता है। मनुष्यों की बातचीत उनके चरित्र का एक कच्चा रङ्ग है। असम्पूर्णता की कोमलता, दुर्बलता आदि के न रखने से उसे एकदम समाप्त कर मानों छोटा बना देना है। इससे उसकी महत्ता जाती रहती है। उसके अनेक पर्वों की सूची निकाल देना क्या अच्छा है?

वायु ने कहा—मनुष्य में व्यक्त करने की योग्यता बहुत कम होती है। अतएव लोग प्रकाश के साथ निर्देश, भाषा के साथ अङ्ग-भङ्गी और भाव के साथ भावना को मिलाते हैं। रथ नहीं है तो भी उसे रथ पर चढ़ा कर चलाना होता है। यदि किसी मनुष्य का चित्र तुम अङ्कित करना चाहते हो तो उसको केवल खड़ा करके और उसके मुँह से कटी छटी कई बातें कहला देने से ही काम नहीं चल सकता। उसको चलाना होगा। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना होगा। उसकी महत्ता दिखाने के लिए उसे असम्पूर्ण ही रखना पड़ेगा।

मैंने कहा—यही तो कठिन है। बात समाप्त करके समझाना होगा। पर वह अभी तक समाप्त नहीं हुई, यह लिखाना सामान्य काम नहीं है।

नदी ने कहा—अतएव बहुत दिनों से साहित्य के विषय में एक प्रकार का तर्क चला आता है कि विषय-वर्णन महत्व-पूर्ण है या उसकी शैली। अभी तक इसका कुछ निर्णय नहीं हो सका। मैंने स्वयं भी इस बात पर बहुत विचार किया। पर इसका कुछ ठीक उत्तर नहीं मिला। इस विषय का जब विचार किया जाता है और जिसको प्रधानता देने की युक्तियाँ ढूँढ़ी जाती हैं वही प्रधान हो जाता है।

व्योम ऊपर की ओर देख कर कहने लगा—साहित्य श्रेष्ठ है या शैली, इस विषय का विचार करने के लिए देखना चाहिए कि दोनों में कौन अधिक रहस्यमय है। विषय शरीर है और शैली उसका जीवन है। शरीर की पूर्णता प्रत्यक्ष है, परन्तु जीवन के साथ असम्पूर्णता लगी रहती है, वह असम्पूर्णता उसको विशाल भविष्यत् की ओर खींचे हुए है। वह जीवन के साथ दृश्य पदार्थों को नांघ कर दूसरी नई नई आशाओं के जोड़ने की सम्भावना उत्पन्न करती है। वर्णन के द्वारा जो अंश प्रकाशित होता है वह देह है, वह जड़ है, और वह सीमा के घेरे से बँधा हुआ है। शैली के द्वारा जो मालूम होता है, शैली जिन बातों को वर्णन में सञ्चारित करती है वह जीवन है। उसी के द्वारा विषय में वृद्धि-शक्ति और गति-शक्ति उत्पन्न होती है।

वायु ने कहा—साहित्य के सभी विषय बहुत पुराने हैं पर नये आकार में प्रकट होने से वे नये हो जाते हैं।

नदी ने कहा—मैं समझती हूँ कि मनुष्य के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। हर एक मनुष्य अपने मन को लेकर इस

तरह अपने को प्रकाशित करता है। उसकी ओर देखने से यही जान पड़ता है कि प्राचीन मनुष्यत्व नवीन रूप धारण करके प्रकाशित हुआ है।

दीप्ति ने कहा—मन और चरित्र का वह स्वरूप ही हमारा आदर्श है। उसी के द्वारा हम लोग परस्पर परिचित और परीक्षित होते हैं। मैं कभी कभी विचारती हूँ कि हमारा आदर्श कैसा है, वह किस प्रकार का है ? पर समालोचक जिसको अपनी भाषा में प्राञ्जल कहते हैं, सो नहीं है—

वायु ने कहा—पर वह तेजस्वी अवश्य है। तुम जिस स्वरूप के विषय में कह रही हो, जो हम लोगों का अपना है, उसीकी बातें हम भी कहते थे, विचार के साथ ही साथ स्वरूप की भी रक्षा होनी चाहिए। इसी बात के लिए हम भी अनुरोध करते थे।

दीप्ति ने मुसकुरा कर कहा—पर सबका आकार एक प्रकार का नहीं होता। इस कारण अनुरोध करने के पहले कुछ विचार कर लेने की भी आवश्यकता है। किसका स्वरूप स्वयं प्रकाशित होता है, और किसके स्वरूप को प्रकाशित करना पड़ता है। हीरा आप ही प्रकाशित होता रहता है। उसका प्रकाश फैलाने के लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं हुआ करती। उसको तोड़ फोड़ कर कोई उसका प्रकाश नहीं फैलाता। पर तृण आप ही नहीं प्रकाशित होता, जलाने पर उससे प्रकाश उत्पन्न होता है। हम ऐसे क्षुद्र प्राणियों के मुख में यह विलाप नहीं सोहता कि साहित्य में हमारा स्वरूप ठीक नहीं रहता। बहुत लोग ऐसे हैं जिनकी सत्ता ही हमारे लिए एक नई शिक्षा और नया आनन्द है। जो जिस प्रकार

का है उसे उसी रूप में रखना ही यथेष्ट है। कोई कोई ऐसे हैं कि जो वस्तु वर्तमान है उसकी ओर तो उनका ध्यान ही नहीं जाता, वे वस्तु के स्वरूप की रक्षा करना आवश्यक नहीं समझते; किन्तु उस वस्तु के प्राणों को प्रकाशित करना चाहते हैं। जो लोग पदार्थों का सारांश बाहर निकाल कर दिखा सकते हैं उनको धन्यवाद देना चाहिए और उनका कृतज्ञ बना रहना चाहिए। क्योंकि वे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि कितने में प्राण हैं और कितने प्राणों को प्रकाशित करने की योग्यता रखते हैं।

वायु ने हँसकर कहा—दीप्ति, मुझे क्षमा करना। ऐसी दीनता का अनुभव मुझे स्वप्न में भी नहीं हुआ कि मैं तृण हूँ। मैं अपने विषय में यही बात समझता हूँ कि मैं खान का हीरा हूँ। आवश्यकता है उस जौहरी की जो मेरी परख करले। मैं उसी की प्रतीक्षा भी करता हूँ। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों त्यों मेरा विश्वास भी अधिक बढ़ता जाता है कि इस पृथिवी में रत्नों का उतना अभाव नहीं है जितना अभाव उसके परखनेवालों का है। युवा अवस्था में मुझे संसार में मनुष्य नहीं देख पड़ते थे। मैं उस समय समझता था कि अच्छे मनुष्य केवल नाटक उपन्यास और महाकाव्यों में ही हैं, संसार में नहीं हैं। पर आज देख रहा हूँ कि संसार में अनेक मनुष्य हैं। हाय, पागल मन, तूने मनुष्यों को पहचाना क्यों नहीं? पागल मन, तू एक बार संसार में प्रवेश करके देख ले कि मनुष्यों के हृदय में भीड़ लगी हुई है। जो सभा में नहीं बोलते वे वहाँ बातें कर रहे हैं, संसार में जो उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते हैं उनके लिए वहाँ उच्चासन रक्खा हुआ है; संसार में जो निकम्मे अनावश्यक समझे

जाते हैं, वहाँ तू देखेगा कि उन्हींके सरल विश्वास, निरन्तर सेवा और आत्मानपेक्ष आत्मत्याग के ऊपर यह संसार प्रतिष्ठित है। भीष्म, द्रोण, भीम, अर्जुन आदि महाकाव्य के नायक हैं, किन्तु हम लोगों के छोटे छोटे कुरुक्षेत्र में उनके आत्मीय स्वजाति हैं। उस आत्मीयता का कौन नव-द्वैपायन आविष्कार और प्रकाश करेगा!

मैंने कहा—उनका आविष्कार न होने से ऐसा हानि-लाभ ही क्या है? मनुष्य यदि आपस में एक दूसरे को न पहचानेगा तो वह प्रेम कैसे कर सकता है। एक युवक था, जो अपने जन्म-स्थान और परिवार से बहुत दूर रहकर दस रुपये महीने पर क्लर्की किया करता था। मैं उसका मालिक था। पर उसके बारे में मुझे प्रायः कुछ भी नहीं मालूम था। वह एक साधारण मनुष्य था। एक दिन सहसा रात को उसे हैज़ा हो गया। मैंने अपने सोने के कमरे से सुना कि वह बुआ बुआ कह कर कातर स्वर से रो रहा है। उस समय उसका क्षुद्र और गौरव-हीन जीवन महान् मालूम हुआ। उस अनजान और अप्रसिद्ध मूर्ख मनुष्य को—जो अपनी गर्दन हिला-हिला कर दिन भर लिखा करता था—उसकी सन्तानहीन और विधवा बुआ ने अपने सारे स्नेह से मनुष्य बनाया था। वह सन्ध्या के समय अपनी सूनी कोठरी में चूल्हा जलाकर अपने हाथ से रसोई बनाने लगता था। जब तक उसकी रसोई बनती रहती थी तब तक एकटक अग्नि की ओर देखता हुआ वह क्या अपनी बुआ का ध्यान नहीं करता था? एक दिन लिखने में वह ग़लती कर गया, ठीक ठीक नक़ल नहीं की, इस कारण उसके ऊपर के कर्मचारियों ने उसे फटकारा। तो क्या उस दिन प्रातःकाल के पत्र में

उसने अपनी बुआ के कष्ट का समाचार नहीं पढ़ा था? इस साधारण मनुष्य के मङ्गल-चिन्तन के लिए क्या एक स्नेह-परिपूर्ण पवित्र हृदय व्याकुल नहीं हुआ था? इस दरिद्र युवक के परदेश जाने के कारण क्या वह पवित्र और उच्च हृदय विशेष व्याकुल नहीं हुआ था? अकस्मात् उस रात को उस मृतप्राय युवक का हृदय मेरी दृष्टि में मूल्यवान् हो गया। रात भर जाग कर मैंने उसकी सेवा की। पर मेरा प्रयत्न निष्फल हुआ। बुआ के धन को बुआ के पास मैं भेज न सका। वह क्लर्क मर गया। यद्यपि भीष्म, द्रोण आदि महान् मनुष्य हैं, परन्तु इस युवक का मूल्य भी कम नहीं था। इसका मूल्य कितना है, इसका अनुमान कोई कवि नहीं कर सकता और न कोई पाठक ही उस पर विश्वास कर सकता है। इसी कारण उसका मूल्य क्या इस संसार में किसी को मालूम नहीं था? उसके लिए केवल एक जीवन ने आत्म-त्याग किया था। पर भोजन-वस्त्र समेत उसका वेतन था आठ रुपये। सो भी बारहों महीने नहीं मिलता था। महत्व अपने प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होता है, और हम लोगों के समान दीप्तिहीन छोटे छोटे मनुष्यों के सामने वह अपना प्रकाश फैलाता है। बुआ का प्रेम देखकर हम लोग भी दीप्तिमान् हो जाते हैं। जहाँ अन्धकार के कारण कुछ भी नहीं देख पड़ता था वहीं प्रेम का प्रकाश डाल कर देखने से सब स्पष्ट देख पड़ने लगता है। उस समय सहसा देख पड़ता है कि वह स्थान मनुष्य-पूर्ण है।

नदी ने दया का भाव दिखा कर कहा—तुम्हारे इस विदेशी क्लर्क की बात मैंने तुमसे पहले भी सुनी थी। मालूम नहीं, क्यों

उसकी बात सुनने से मुझे अपना हिन्दुस्तानी नौकर कल्लू याद आता है । दो छोटे बच्चे छोड़ कर अभी उसकी स्त्री मर गई है । इस समय वह अपना सब काम करता है, दोनों समय पंखा खींचता है, पर बहुत ही दुबला-पतला हो गया है । उसको जब मैं देखती हूँ तो कष्ट होता है। लेकिन इस अकेले के लिए ही कष्ट नहीं होता, और कष्ट होता किस लिए है ? मैं ठीक ठीक समझा नहीं सकती, पर ऐसा मालूम होता है कि समस्त मनुष्यों के लिए मनुष्य को कष्ट होता है ।

मैंने कहा—इसका कारण यह है कि सभी मनुष्य प्रेम करते हैं और विरह तथा मृत्यु के द्वारा पीड़ित और भयभीत हैं। तुम्हारे इस पंखेवाले नौकर के मुख पर सारे संसार के मनुष्यों के दुःख की छाया पड़ती है ।

नदी ने कहा—केवल इतना ही नहीं है । मुझको तो मालूम होता है कि पृथिवी में जितने दुःख हैं, उतनी दया नहीं है । यहाँ कितने ही दुःख तो ऐसे हैं जिनका आश्वासन कहीं और कभी नहीं होता तथा ऐसे भी कितने ही स्थान हैं जहाँ प्रेम की अनावश्यक अधिकता देखी जाती है। मैं देखती हूँ कि धैर्य-पूर्वक और चुपचाप हमारा नौकर पंखा खींच रहा है, उसके बच्चे इधर उधर खेल रहे हैं, इतने ही में कहीं कोई लड़का गिर गया और वह चिल्ला कर रोने लगा । तो उसका बाप दूर से ही रोने का कारण पूछता है पर पंखा खींचना छोड़ कर वह उस लड़के को चुप कराने के लिए—उसे आश्वासित करने के लिए—उसके पास नहीं जा सकता; इससे स्पष्ट है कि संसार में आनन्द की मात्रा तो कम है

परन्तु पेट की ज्वाला से मनुष्य व्याकुल है। संसार में चाहे कितना ही बड़ा कष्ट क्यों न हो पर अन्न के लिए काम करना ही पड़ेगा। उधर लापरवाही करने से काम नहीं चल सकता। जब मैं देखती हूँ कि संसार में बहुत से ऐसे मनुष्य हैं, जिनका दुःख कष्ट मनुष्यत्व आदि हम लोगों को मालूम नहीं है; ऐसे बहुत से मनुष्य हैं जिनसे हम काम लेते हैं, उन्हें तनख़्वाह देते हैं, पर उनसे स्नेह नहीं करते, उन्हें सान्त्वना नहीं देते, तब जान पड़ता है कि पृथिवी का बहुत सा हिस्सा ऐसा है जो अन्धकार में छिपा हुआ है, जिसे हम लोग अभी तक देख भी नहीं सके। पर उस अज्ञात और दीप्तिहीन देश के रहनेवालों में भी प्रेम है और वे प्रेम करने के योग्य भी हैं। मैं तो समझती हूँ कि जिनमें महिमा नहीं है, जो एक गन्दे आवरण में रहते हैं और अपने को अच्छी तरह व्यक्त नहीं कर सकते,—यहाँ तक कि ख़ुद भी अपने को नहीं पहचानते,—मूक-मुग्ध भाव से सुख-दुःख आदि सहते रहते हैं, उनके मनुष्यत्व को प्रकाशित करना और हम लोगों के साथ उनका परिचय करा देना तथा उनके ऊपर काव्य का प्रकाश डालना आजकल के कवियों का कर्तव्य है।

क्षिति ने कहा—पहले ज़माने में किसी समय सभी बातों में प्रबलता का कुछ विशेष आदर था। उस समय मनुष्य-समाज असहाय और अरक्षित था। जो प्रतिभाशाली-क्षमताशाली होता था वही समाज के सारे स्थान पर अधिकार जमा लेता था। इस समय सभ्यता के सुशासन और सुव्यवस्था के कारण बहुत से विघ्न दूर हो गये हैं तथा प्रबलता की अत्यधिक मर्यादा बहुत कुछ

कम होगई है। इस समय मूर्खों और अयोग्यों को भी संसार में एक अच्छा स्थान मिल गया है। इस समय के काव्य उपन्यास आदि भी भीष्म, द्रोण आदि को छोड़कर इस मूक जाति की भाषा और भस्माच्छन्न अंगारे के प्रकाश को प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

वायु ने कहा—पहले पहल साहित्य-सूर्य का प्रकाश ऊँचे पर्वत-शिखर पर ही पड़ा था, अब धीरे धीरे वह प्रकाश उपत्यका पर फैलता हुआ दरिद्रों की छोटी छोटी झोपड़ियों को भी प्रकाशित करने लगा है।

मन

मैं दोपहर के समय नदी के किनारे पर बसे हुए गाँव के एक घर में बैठा हूँ। घर के एक कोने में छिपकली टिक टिक कर रही है। दीवार पर पंखा लगाने के छेद में एक जोड़ा पक्षी अपना घोंसला बनाने के लिए बाहर से घास-तिनके आदि ला रहे हैं। वे चों चों करते और बड़ी व्यग्रता के साथ बाहर आते-जाते हैं। नदी में एक नाव जा रही है। ऊँचे किनारे के पास नीले आकाश में उसका मस्तूल और उड़ाये हुए पाल का कुछ हिस्सा देख पड़ता है। धीरे धीरे हवा चल रही है। आकाश भी साफ़ है। नदी के उस पार के किनारे से लेकर मेरे बरामदे के सामनेवाले बाग़ तक एक चित्र की तरह धूप फैली है। यहाँ मैं बड़े आनन्द से रहता हूँ। जैसे बालक माता की गोद में कभी क्रोध, कभी आनन्द और कभी स्नेह पाता है, वैसे ही मैं इस वृद्ध प्रकृति की गोद में बैठा हूँ और जीवन तथा आदर-पूर्ण कोमल उत्ताप चारों ओर से मेरे शरीर में

प्रविष्ट हो रहा है । इस तरह जीवन व्यतीत करने में हानि क्या है ? कागज़-कलम लेकर बैठने के लिए क्या किसी ने तुम्हें कभी दबाया है ? किसी विषय में तुम्हारी सम्मति क्या है, किस विषय को तुम अच्छा या बुरा समझते हो, इस बात के लिए आकाश-पाताल एक करने की और कमर कसकर सदा तैयार रहने की क्या कोई आवश्यकता है ? यह देखो, इस खेत में कहीं कुछ भी नहीं है। वह देखो, हवा कुछ सूखे पत्तों और धूल को किस तरह घुमाती हुई आप भी नाच रही है ! वह थोड़ी देर तक पैर के अँगूठे पर भार देकर सीधी खड़ी हुई। उस समय की उसकी अदा देखने ही योग्य थी, फिर वह उन सूखे पत्तों को इधर उधर उड़ाकर न मालूम कहाँ चली गई। उसका कुछ पता नहीं है । उस के खेल करने का सामान भी विलक्षण है । कुछ सूखे पत्ते और तृण, धूल आदि तथा उस समय और जो कुछ मिल सका वही उसके खेल का सामान है। इन्हीं सामग्रियों से हवा कैसी अपने खेल के लिए तैयारी कर लेती है और खेल कर चली जाती है। इसी प्रकार सुन-सान दोपहर में वह सब खेतों में घूमा करती है । उसका न तो कोई आदर्श ही है और न उसके खेल को देखने वाला ही कोई है। उसका न कोई मत है, न कोई तत्त्व। उसका समाज भी नहीं है । परन्तु इतिहास के विषय में वह बड़ा ही सुन्दर उपदेश देती है । संसार में जो सब से अनावश्यक पदार्थ हैं, जिनकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं है, उन्हीं पदार्थों में मन्त्र फूँक कर वह घड़ी भर के लिए उनमें जीवन-संचार करती और उन्हें सुन्दर बना देती है।

ऐसे ही यदि मैं अनायास जो कुछ मिलता उसे सुन्दर बनाकर,

घुमा फिरा कर उड़ाता हुआ चला जा सकता तो कैसा अच्छा होता! ऐसे ही बिना परिश्रम के मुझमें नई नई रचनाएँ करने की शक्ति होती और इसी प्रकार तोड़ फोड़ कर नष्ट करने की भी शक्ति होती तो क्या कहना था। इस वायु के चिन्ता नहीं है, चेष्टा नहीं है, लक्ष्य नहीं है; केवल एक नृत्य का आनन्द है, केवल एक सौन्दर्य का आवेग है, केवल एक जीवन की घुमनी है! खुलासा मैदान है, खुला आकाश है, और चारों ओर व्याप्त सूर्य का प्रकाश है। इन्हीं के बीच मुट्ठी मुट्ठी भर धूल लेकर इन्द्रजाल की रचना करना एक पागल-हृदय के उदार उल्लास के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

यदि यह होता तो इसका आनन्द भी समझा जाता। परन्तु पत्थर पर पत्थर रगड़ने में अविरत परिश्रम करना और उससे श्रान्त होकर किसी विषय में मतामत प्रकाश करना आदि से क्या लाभ होता है, यह समझ नहीं पड़ता। इसमें न गति है न प्रीति है और न प्राण ही हैं; है केवल कठोर कीर्ति। परन्तु उस कीर्ति को भी कोई कोई आदर की दृष्टि से देखते हैं और कोई तो उसकी उपेक्षा ही कर देते हैं। जिसकी जैसी योग्यता होती है वह वैसा करता है।

परन्तु इच्छा करने पर भी हम लोग इस काम से विरत नहीं हो सकते। सभ्यता के अनुरोध से मनुष्य ने अपने मन नामक एक भाग को बहुत बढ़ा दिया है, उसके अनुसार चलने से मनुष्य का मन प्रबल होगया है। अब यदि मनुष्य उस मन को छोड़ना भी चाहे तो भी मन ही उसको नहीं छोड़ सकता।

लिखते लिखते मैंने बाहर की ओर देखा कि एक मनुष्य धूप रोकने के लिए माथे पर चद्दर रक्खे हुए और एक हाथ में दोने में दही लिये रसोई-घर की ओर जा रहा है। वह आदमी मेरा नौकर है। उसका नाम है नारायणसिंह। वह हृष्ट-पुष्ट और बलवान् है। वह प्रौढ़ और पत्तों से हरे भरे कटहर के वृक्ष के समान मालूम होता है। इस तरह का मनुष्य बाहरी प्रकृति के साथ ठीक ठीक मिल जाता है। प्रकृति और इसके बीच में कुछ विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता। जगद्धात्री और शस्य-शालिनी पृथिवी माता की गोद में यह मनुष्य बड़े आनन्द से रहता है। इसके अंगों में कुछ भी परस्पर-विरोध नहीं है। जिस प्रकार मूल से लेकर पल्लव तक केवल एक ही वृक्ष होता है उसी प्रकार मेरा यह नारायणसिंह भी आदि से अन्त तक नारायणसिंह ही है।

कोई खिलाड़ी देव-बालक इस शरीफ़े के पेड़ को कष्ट देने के लिए यदि मन लगा दे तो इस सरस और हरे वृक्ष के जीवन में बड़ा भारी उपद्रव खड़ा होजाय। तो फिर चिन्ता के कारण इस वृक्ष के हरे पत्ते भूर्ज-पत्र के समान पीले पड़ जायँ, और जड़ से लेकर पत्ते तक यह वृक्ष वृद्ध के माथे की झुर्रियों के समान होजाय। उस समय वसन्त के आने पर नये नये सुहावने पत्तों से सज्जित और पुलकित होने का सौभाग्य जाता रहे; उस समय वर्षा के आगमन के पहले गुच्छे के गुच्छे फलने लगें। उस समय दिन भर इसे एक पैर के सहारे खड़े रह कर यही सोचते रहना पड़े कि मुझको इतने ही पत्ते क्यों मिले, मेरे पंख क्यों नहीं हुए। प्राणों पर खेल कर मैं दिन भर सीधा खड़ा रहता हूँ, तो भी मुझे सब

बातें देखने को नहीं मिलतीं। इन दिशाओं के उस पार क्या है, यह बात मैं आज तक न जान सका। आकाश के तारागण जिन वृक्षों की शाखाओं के पास चमक रहे हैं उनके समान मैं भी ऊँचा क्यों न हुआ। मैं कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, इस बात का निर्णय जब तक नहीं होगा तब तक मैं अपने पत्तों को गिरा कर शाखाओं को सुखा कर और खड़े रहकर ध्यान में मग्न रहूँगा। मैं हूँ या नहीं, अथवा हूँ भी और नहीं भी हूँ, इन प्रश्नों का निर्णय जब तक न होगा तब तक मेरा जीवन निरर्थक है। वर्षाकाल के बीतने पर एक दिन सूर्योदय के समय मेरे हृदय में जो आनन्द होता है उस आनन्द को मैं किस प्रकार प्रकाशित करूँगा; शीत ऋतु के बीत जाने पर फागुन के महीने में सन्ध्या के समय जब दक्षिण की हवा मेरे शरीर में लगती है उस दिन एक इच्छा उत्पन्न होती है, वह इच्छा क्या है? वह किसलिए उत्पन्न होती है, यह बात कौन बतलावेगा! मन होने पर वृक्ष भी इसी प्रकार की चिन्ताओं के घर बन जायँगे।

मन के मिलने पर यही सब उपद्रव होने लगेंगे! फूलों का फूलना और रस तथा गूदे से परिपूर्ण फलों का लगाना न जानें कहाँ चला गया! जो है उससे अधिक होने की चेष्टा करना, अच्छी अवस्था चाहना,—जैसा है वैसा न रह कर दूसरे प्रकार का होने की इच्छा करना—ऐसा कर देता है कि वह न इधर का रहता है और न उधर का। अन्त में हृदय की व्यथा के कारण उसे एक दिन अपनी सूखी शाखाओं के साथ भूमि पर लोटना ही पड़ता है। यह समाचार पत्रों में छपने का प्रबन्ध है, यह है एक समा-

लोचना और है वनवासी समाज के लिए असामयिक तत्त्वोपदेश। इसमें न पत्तों का मधुर शब्द है, न छाया है और न सर्वाङ्ग-व्यापी सरसता ही।

यदि कोई बलवान् शैतान गिरगिट की तरह छिपकर पृथिवी में घुस जाय और वह टेढ़ी मेढ़ी जड़ों के द्वारा संसार के सारे वृक्ष, लता, गुल्म, तृण आदि को मन देदे तो क्या इस संसार में सूर्य की किरणों से तपे हुए को विश्राम करने के लिए छाया मिल सकेगी? यह भाग्य की बात है कि बग़ीचों में आने पर पक्षियों के निरर्थक शब्द सुनने को मिलते हैं, और अक्षर-हीन हरे पत्तों के स्थान पर प्रत्येक शाखा में सूखे और स्वच्छ मासिक-पत्र, समाचार-पत्र तथा विज्ञापन आदि लटकते नहीं देखे जाते।

यह भी सौभाग्य की बात है कि वृक्षों में सोचने की शक्ति नहीं है। यह प्रसन्नता की बात है कि धतूरे का वृक्ष मदार के वृक्ष की समालोचना नहीं करता। वह उससे यह नहीं कहता कि भाई, तुम्हारे फूल कोमल तो होते हैं पर सुन्दर नहीं होते; और बेर के फल कटहल से यह नहीं कहते कि तुम अपने को बड़ा समझते हो परन्तु हम तुम्हारी अपेक्षा कुम्हड़े के फल को बड़ा समझते हैं। केला भी यह नहीं कहता कि मैं सब से सस्ते परन्तु सबसे बड़े पत्ते सब को देता हूँ, और न केले को नीचा दिखाने के लिए दूसरे वृक्ष ही यह कहते हैं कि मैं केले के पत्ते से भी बड़े पत्ते उससे भी कम दाम में देता हूँ।

तर्क से व्याकुल, चिन्ता से चिन्तित, वक्तृता से थका मनुष्य उदार और खुले आकाश का निश्चिन्त ज्योतिर्मय प्रशस्त ललाट देख

कर, वन के भाषाहीन मर्मर शब्द और लहरों की अर्थहीन कल-ध्वनि सुनकर तथा मन-रहित अगाध एवं प्रशान्त प्रकृति में मज्जन करके कोमल और नियमित हुआ है। यह कहने का साहस कौन कर सकता है कि मन की आग की जलन मिटाने के लिए विशाल फैले हुए इस मन-रहित समुद्र के प्रशान्त और नील जल की आवश्यकता नहीं है ?

सच्ची बात मैंने पहले ही कह दी है कि हृदय के सब भावों को मिटा कर हम लोगों के मन ने अपना अधिकार बहुत बढ़ा लिया है। वह इतना बड़ा होगया है कि अब उसके लिए स्थान मिलना भी कठिन होगया है। खाने, पहनने, जीवन धारण करने, सुख-स्वाधीनता से रहने आदि के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उनसे भी अधिक बातों को मन चाहता है। इस कारण सब आवश्यक कामों के हो जाने पर भी मन की बहुत सी आकांक्षाएँ बनी रहती हैं। वह बैठे बैठे डायरी लिखा करता है, शास्त्रार्थ करता है, समाचार-पत्रों का संवाद-दाता बनता है। जो बात अनायास समझी जा सकती है उसको कठिन बना देता है, जिसको एक प्रकार से समझना चाहिए उसको कुछ और ही बना देता है। जिस बात का समझना सर्वथा कठिन है उसी बात को समझने के लिए वह प्रयत्न करता है। अधिक क्या कहा जाय, वह और भी बहुत से निन्दित काम करता है।

परन्तु हमारे अर्द्ध-सभ्य इस नारायणसिंह का मन बड़ा नहीं हुआ। इसका मन इसके शरीर ही के अनुसार है, कुछ भी छोटा-बड़ा नहीं है। इसका मन इसके जीवन की गर्मी-सर्दी, रोग-शोक,

लज्जा आदि से रक्षा करता है। वह वायु-वेग से संसार में चारों ओर उड़ता नहीं फिरता। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कभी कभी बटन के छेद से बाहर की हवा उसके मन में जाकर उसे अभिमानी बना देती है कि नहीं। यदि वह कभी कभी अहङ्कार करता भी हो तो उसके जीवन के लिए यह अहङ्कार लाभदायक ही है।

अखण्डता

दीप्ति बोली—मैं सच्ची बात कहती हूँ। मेरी समझ में तो आज-कल तुम लोग कुछ विशेषता के साथ प्रकृति की स्तुति करने लगे हो।

मैंने कहा—देवि, क्या तुम दूसरे की स्तुति नहीं सुन सकतीं?

दीप्ति ने कहा—जहाँ केवल स्तुति ही की जाती है और दूसरी कोई बात नहीं है वहाँ उसका अपव्यय होना किससे देखा जा सकता है?

बड़ी नम्रता और हास्य-पूर्वक नीची आँखें करके वायु ने कहा—भगवति, इस बारे में शायद तुमने भी विचार किया होगा कि प्रकृति की स्तुति और तुम लोगों की स्तुति में कुछ विशेष भेद नहीं है। जो प्रकृति का स्तव-गान करते हैं वे प्रधानतः तुम्हारे ही पुजारी हैं।

दीप्ति ने अभिमान से कहा—तो आपके कहने का प्रयोजन यह हुआ कि जो जड़ के उपासक हैं वही हम लोगों के भी हैं?

वायु ने कहा—जब आपको ऐसा भ्रम है तो अवश्य ही इस भ्रम को दूर करने के लिए लम्बी चौड़ी वक्तृता देनी होगी। हम लोगों की भूत-सभा के वर्तमान सभापति श्रद्धेय श्रीमान् भूतनाथ

बाबू ने अपनी डायरी में एक प्रबन्ध लिखा है। उसमें उन्होंने मन नामक एक भयानक पदार्थ के उपद्रवों का वर्णन किया है। उस प्रबन्ध को आप लोगों ने भी पढ़ा होगा। मैंने उसीके पास कुछ टिप्पणी कर रक्खी है। यदि आप लोग उसे सुनना चाहें तो मैं उसे पढ़ूँ। उससे मेरा अभिप्राय आप लोगों की समझ में अच्छी तरह आ जायगा।

क्षिति ने हाथ जोड़ कर कहा—सुनो भाई वायु, लेखक और पाठक का जो सम्बन्ध है वही स्वाभाविक सम्बन्ध है। आपकी इच्छा हुई आपने लिखा और मेरी इच्छा हुई तो मैंने पढ़ लिया। इसमें किसी को भी कुछ कहने-सुनने की बात नहीं रह गई। मानों म्यान में तलवार ठीक ठीक समा गई। परन्तु यदि तरवार किसी के अस्थि-चर्म-मय शरीर में घुसे और वहाँ अपनी आत्मीयता स्थापित करना चाहे तो क्या स्वाभाविक होगा या कोई उसे पसन्द करेगा? लेखक और श्रोता का सम्बन्ध अस्वाभाविक और अनुचित है। भगवन्, आपसे यही प्रार्थना है कि हमारे पापों का जैसा चाहें वैसा आप दूसरा दण्ड दें, परन्तु ऐसी व्यवस्था आप अवश्य करें कि दूसरे जन्म में डाकूर का घोड़ा, पागल की स्त्री और लेखक का बन्धु न होना पड़े।

व्योम हँसने लगा। उसने कहा—बन्धु का अर्थ बन्धन है और जब प्रबन्ध (लेख) और बन्धन ये दोनों एकत्र होंगे तब तो फाँसी पर फाँसी ही होगी। यही तो कटे पर नमक छिड़कना है।

दीप्ति ने कहा—न हँसने के लिए आज मैं दो वर्ष से प्रार्थना कर रही हूँ, परन्तु उसका फल कुछ भी नहीं हुआ। इतने दिनों में

तो पाणिनि की अष्टाध्यायी, अमरकोश और धातुपाठ का अच्छी तरह से अभ्यास किया जा सकता ।

व्योम को बड़ा आनन्द हुआ। वह पहले तो बड़े ज़ोर से हँसा और फिर कहने लगा—यह तो बड़ी अच्छी बात है । इस पर मुझे एक कहानी याद आ गई ।

नदी ने कहा—तुम लोग वायु की बातें न सुनने दोगे । वायु, तुम पढ़ो । इन लोगों की बातें न सुनो ।

नदी की आज्ञा के विरुद्ध किसी ने भी कुछ न कहा । स्वयं क्षिति ने भी डायरी उठा ली और वह अपराधी के समान चुपचाप एक ओर बैठ गई ।

वायु पढ़ने लगा—मनुष्य को विवश होकर पग पग पर मन की सहायता लेनी पड़ती है; इसी कारण मनुष्य मन के यथार्थ रूप को नहीं पहचान सकता । मन के द्वारा हमारे बड़े बड़े उपकार होते हैं, परन्तु उसका स्वभाव ऐसा है कि वह हम लोगों के साथ मिल कर नहीं चल सकता । वह सदैव एक न एक नई बात करता रहता है । कभी परामर्श देता है, कभी उपदेश देने के लिए आगे बढ़ता है और सभी बातों में हस्तक्षेप किया करता है । मालूम होता है कि वह है बाहरी मनुष्य परन्तु आज हम लोगों के घर का होगया है । अतएव उसको छोड़ना कठिन है । और, उससे प्रेम करना तो और भी कठिन है ।

मनुष्य का मन भारतवासियों पर अँगरेज़-सरकार के समान है । हम लोगों के आचार-व्यवहार देशी ढङ्ग के हैं और राजा के क़ानून दूसरे ढङ्ग के । वह हमारा उपकार करता है

परन्तु अपना नहीं समझता। वह भी हमारा आदर नहीं करता और हम लोगों को भी उस पर विशेष श्रद्धा नहीं। हम लोगों की जो अपनी स्वाभाविक शक्ति थी वह उसकी शिक्षा से नष्ट हो गई है। अब उसकी सहायता के बिना हमारा उठना-बैठना भी कठिन हो गया है।

विदेशी जाति के राजा में और हमारे मन में और भी एक समता है। बहुत दिनों से वह हम लोगों के साथ रहता है, पर अभी तक वह हमारे देश का निवासी नहीं हुआ, वह सदा यहाँ से अपने देश जाने के लिए तैयार रहता है। जहाँ उसे काम से फ़ुरसत मिली कि वह अपने देश जाने के लिए व्याकुल हो जाता है। सबसे अधिक समता तो यह है कि तुम उसके आगे नम्रता दिखाओ तो उसका प्रताप बहुत बढ़ जाता है, परन्तु यदि दृढ़ता के साथ तुम उसका सामना करने के लिए तैयार हो जाओ, यदि तुम उसके थप्पड़ का सामना घूसे से कर सकते हो तो वह तुम्हारे सामने नम्र हो जायगा; वह तुम्हारा अनुगत मित्र बन जायगा।

मन से हम लोगों की बड़ी शत्रुता है, अतएव जिस काम में मन का अधिक अधिकार नहीं है उस काम की हम लोग सब से अधिक प्रशंसा करते हैं। नीति के ग्रन्थों में हठ की निन्दा लिखी है परन्तु हठ पर हम लोगों का एक प्रकार का अनुराग पाया जाता है। जो मनुष्य विचार कर, आगे-पीछे सोच कर; बड़ी सावधानी से काम करता है उसके प्रति हम लोगों का प्रेम नहीं होता; परन्तु जो सर्वदा निश्चिन्त रहता है, प्रसन्न रहता है, बिना किसी रुकावट के साफ़ साफ़ बातें कह देता है और बिना आयास के कोई बे-

जोड़ काम कर देता है उसीके प्रति हम लोगों का प्रेम होता है, वही हमारी भक्ति का पात्र है। जो मनुष्य समझ कर चलता है, सावधानी से धनोपार्जन करता है, उससे आवश्यकता पड़ने पर हम लोग ऋण भी लेते हैं परन्तु मन ही मन उसे अच्छा नहीं समझते; लेकिन जो खर्चीला है, जो अपने और अपने परिवार के भविष्य की चिन्ता न कर जो पाता है वह खर्च कर देता है, लोग उसे काम पड़ने पर ऋण देते हैं, और अक्सर उससे फिर वसूल होने की आशा भी नहीं रखते। प्रायः हम लोग अविवेचना को—मन के अभाव को ही—उदारता समझते हैं और जो मनुष्य हित-अहित का विचार रखता है, युक्ति-पूर्वक अपने सङ्कल्पित मार्ग पर नियमित चलता है उसको निखट्टू, कृपण आदि शब्दों से निन्दा करते हैं।

मन का अस्तित्व जो भूल सकते हैं उन्हीं को हम लोग मनोहर समझते हैं, और जिस समय मन का भार नहीं मालूम पड़ता उस समय हम लोगों को आनन्द होता है। नशा से पशु के समान हो जाना अच्छा समझा जाता है; अपनी हानि भले ही हो जाय परन्तु थोड़ी देर के लिए भी मन के पञ्जे से छुटकारा पा जाना बड़े आनन्द की बात समझी जाती है। यदि मन हमारा—हमारा अपना—होता और आत्मीय के समान वह व्यवहार करता तो क्या हम लोग उस उपकारी के प्रति इतने अकृतज्ञ हो सकते, क्या ऐसी सम्भावना की जा सकती है?

बुद्धि की अपेक्षा हम लोग प्रतिभा को उच्च आसन देते हैं। इसका कारण क्या है? बुद्धि के द्वारा प्रतिदिन और प्रतिमूहूर्त्त में हमारे हज़ारों काम होते हैं। बुद्धि के बिना सम्भवतः हम लोगों

के जीवन की रक्षा न हो सकती, परन्तु प्रतिभा का हम लोगों के जीवन में इतना उपयोग नहीं है। वह कभी कभी काम में आती है। उसके द्वारा कभी हानि भी हो जाया करती है, तथापि बुद्धि की अपेक्षा प्रतिभा को हम लोग श्रेष्ठ समझते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि बुद्धि का सम्बन्ध मन से है, बुद्धि को गिन गिन कर पैर रखना पड़ता है और प्रतिभा मन के नियमों को नहीं मानती,—अकस्मात् आती है। वह न किसी के बुलाने से आती और न किसी के निषेध को मानती है।

प्रकृति के मन नहीं है अतएव उसके प्रति हमारी इतनी श्रद्धा है। प्रकृति की एक तह में दूसरी तह नहीं है। पृथिवी से लेकर प्रकाशमान आकाश तक फैले हुए इन घरेलू आचार-व्यवहारों में कोई भी विदेशी नहीं घुस पड़ा है, जो दुष्टता करता हो।

प्रकृति एकाकी, अखण्ड, निश्चिन्त और निरुद्विग्न है। उसके नीचे ललाट पर बुद्धि की रेखा नहीं देख पड़ती, किन्तु प्रतिभा की ज्योति से ही उसका मस्तक उद्भासित हो रहा है। जिस प्रकार सर्वाङ्ग-सुन्दर फूल की कली अनायास ही खिल जाती है उसी प्रकार सहसा बड़ी भारी एक आँधी कहीं से आती है और सब सुख-स्वप्नों को नष्ट-भ्रष्ट करके चली जाती है। इच्छा भी बहुत है और प्रयत्न भी कम नहीं हैं, परन्तु फल कुछ भी नहीं होता। इच्छा कभी प्रिय मालूम होती है और कभी उससे दुःख भी होता है। कभी वह प्यारी अप्सरा के समान गाने लगती और उस गान से हम लोगों को प्रसन्न करती है, और कभी राक्षसी के समान गरजने लगती है जिससे हम लोग भयभीत हो जाते हैं।

चिन्ता और संशय से व्याकुल मनुष्य के लिए इस व्यवस्थित इच्छा-शक्ति का आकर्षण बड़ा ही प्रबल है। राज-भक्ति, प्रभु-भक्ति आदि इसी इच्छा-शक्ति के आकर्षण के उदाहरण हैं। जो राजा इच्छा होने से ही अपने प्राणों को दे सका है और दूसरे के प्राणों को ले सका है, उस नरपति के लिए प्राचीन युग में बहुत मनुष्यों ने स्वयं अपनी इच्छा से ही अपने प्राण दिये हैं। परन्तु आज इस नये युग में नियम-पाश से बँधे हुए राजाओं के लिए अपनी इच्छा से प्राण देने को कोई तैयार नहीं होता।

जिसका जन्म मनुष्य-जाति के नेता के घर में होता है उसमें मन का अधिकार नहीं देखा जाता। वह क्या सोच कर किस तरह कौन काम करता है, यह पहले किसी की समझ में नहीं आता। अतएव मनुष्य अपने संशय को दूर करने के लिए व्याकुल हो कर अपनी परिधि से बाहर निकलता है, और पतङ्ग के समान उसके महत्व की अग्निज्वाला पर गिर कर मर जाता है, पर पता नहीं पाता।

स्त्रियाँ भी प्रकृति के समान ही हैं। स्त्रियों को मन के खण्ड-खण्डों में विभक्त होना नहीं पड़ा है। वे पुष्प के समान नीचे से ऊपर तक एक हैं, अखण्ड हैं। इसी कारण उनके आचार-व्यवहार आदि इतने मनोहर और इतने सम्पूर्ण हैं, इसी कारण संशय के डोले में बैठे हुए मनुष्यों के लिए स्त्रियाँ "मरणं ध्रुवम्" हैं।

प्रकृति के समान स्त्री की भी इच्छा-शक्ति में युक्ति, तर्क, आलोचना आदि नहीं है अतएव वह कभी अपने चारों हाथों से अन्नदान करती है और कभी संहार-मूर्त्ति धारण करके प्रलय

करने के लिए उद्यत होजाती है। इसी कारण वे दोनों देवियाँ हैं। भक्त-गण हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं, भगवति! तुम महामाया हो, तुम स्वाधीन हो, इच्छामयी हो, तुम प्रकृति हो, तुम्हीं शक्ति हो।

वायु ने विश्राम करने की इच्छा से अपना पढ़ना बन्द किया। इसी अवसर में गम्भीर मुँह करके क्षिति बोली—वाह, क्या ही अच्छी बातें कहीं। मैं तुम्हारी शपथ करके कहती हूँ कि तुम्हारी बातें मेरी समझ में कुछ भी नहीं आईं। जिसको तुम मन और बुद्धि कहते हो उसका तो हम लोगों में अभाव है, परन्तु हम लोगों में प्रतिभा है यह बात मेरे लिए नई है। आज तक किसी ने भी प्रतिभा के लिए हम लोगों की प्रशंसा नहीं की और आकर्षणशक्ति अधिक है, इसका भी कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है।

नदी ने चिन्तित होकर कहा—यदि मन और बुद्धि का एक ही अर्थ में तुम व्यवहार करते हो और कहते हो कि वह हम लोगों में नहीं है तब तो अवश्य ही तुम्हारे साथ हमारा मत-भेद है।

वायु ने कहा—आप लोगों ने मेरी जितनी बातें सुनी हैं उन्हीं पर नियमानुसार तर्क करना उचित नहीं। नदी की पहली बाढ़ के हट जाने पर जो मैदान पड़ा रहता है वह बालुकामय है, उस पर हल चला कर जोतने से कुछ भी फल नहीं होता। धीरे धीरे दूसरी और तीसरी बाढ़ के आने से उस मैदान पर मिट्टी की तह जम जाती है तब वह धरती जोती जा सकती है। इसी प्रकार मेरी बात चलते चलते बीच ही से रुक गई है, अभी यह समाप्त नहीं हुई। सम्भव है, आगे कुछ और बढ़ने पर यह तर्क के द्वारा या तो कट ही जायगी, अथवा उपजाऊ भूमि के समान लाभ-

दायक हो जायगी। जो हो, प्रार्थी की सब बातें सुन लेने पर उसका विचार करना अच्छा होता है।

मनुष्य के अन्तःकरण के दो भेद हैं। एक भाग अचेतन, विशाल, गुप्त और निश्चेष्ट है और दूसरा भाग क्रियावान्, चेतन, चञ्चल और परिवर्त्तनशील है, जैसे कि एक महादेश और समुद्र होते हैं। समुद्र अपनी चञ्चलता से जो कुछ एकत्रित करता है, उसका वह त्याग भी करता जाता है और वह समुद्र का त्यक्त भाग तलदेश में जमता जाता है। फिर किसी दिन वहाँ निश्चल, क्रियाहीन एक महादेश हो जाता है। इसी प्रकार हम लोगों की चेतनता भी जो कुछ एकत्रित करती है उसका त्याग भी करती है और वह त्यक्त भाग संस्कार, स्मृति, अभ्यास आदि के रूप में परिणत होकर अचेतन होता जाता है। यही हमारे जीवन की और हमारे चरित्र की दृढ़ नींव है। उसके भीतर घुस कर कोई उसकी तहों की संख्या को भी नहीं बतला सकता। ऊपर से जो देख पड़ता है अथवा भूकम्प होने से उसका जो भाग नीचे से ऊपर आजाता है उसीको हम लोग देख सकते हैं।

इस महादेश में अन्न, फूल, फल, मूल, ओषधि आदि उत्पन्न होते हैं। यद्यपि यह महादेश देखने में क्रियाहीन और निश्चल मालूम पड़ता है, तथापि गुप्त रूप से इसके भीतर एक जीवनी शक्ति सदा काम करती रहती है। सागर में बड़ी बड़ी लहरें उठा करती हैं। वह हिलोरें मारा करता है, व्यापारी जहाज़ों को बहा ले जाता है, उन्हें डुबादेता है; वह बहुत अर्जन करता है तथा बहुत सी वस्तुओं का नाश करता है और इसमें भी सन्देह नहीं कि

वह असीम बलवान् है परन्तु उसमें जीवनी शक्ति और धारण करने की शक्ति नहीं है। वह न तो किसी पदार्थ को उत्पन्न ही कर सकता है और न किसी का पालन ही।

यदि इस दृष्टान्त में किसी को कुछ आपत्ति न हो तब तो मैं यही कहूँगा कि मनुष्य का वह चञ्चल बाहरी भाग पुरुष है और विशाल, गूढ़ और अचेतन भाग स्त्री है।

समाज में स्त्री और पुरुषों का यही स्थान है। यही उनका आदर्श है। समाज का जो कुछ अर्जन, ज्ञान, शिक्षा आदि है वह सब स्त्रियों के पास जाकर चिरस्थायी होता है। इसीसे उनमें ऐसी स्वाभाविक बुद्धि और शोभा देखी जाती है। इसी कारण बिना शिक्षा के ही वे निपुण होती हैं। मनुष्य-समाज में स्त्रियों की सृष्टि बहुत पहले की है, अतएव उनके अभ्यास दृढ़ और पुराने हो गये हैं; नित्य किये जानेवाले कामों के समान उनके कर्त्तव्य उन्हें अभ्यस्त हो गये हैं। समय के अनुसार उपस्थित होनेवाली आवश्यकताओं के कारण पुरुष सदा परिवर्तित होता रहता है और पुरुषों की उग्र चञ्चलता का, उस परिवर्तन का इतिहास स्त्री-समाज में, तह पर तह के ढंग से, सदा स्थित रहता है।

पुरुष एक समूह के अंश हैं। वे अपनी पूर्णता से बिछड़े हुए हैं और उनमें सामञ्जस्य भी नहीं है, परन्तु स्त्रियाँ सम्पूर्ण हैं। वे अखण्ड हैं। उनकी तुलना एक गान से की जा सकती है। गान जिस प्रकार सम पर आने पर पूर्ण हो जाता है वही हाल स्त्रियों का है। गीत में नये नये पद और तान को जितना चाहो उतना मिला दो तो भी उसकी पूर्णता में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होती।

वह सम पर आते ही आप अपने पूर्ण हो जाता है। बीच में एक स्थिर केन्द्र मानकर आवर्त फैल जाता है अतएव उसके समीप जो कोई वस्तु होती है उस वस्तु को वह आवर्त अपना बना लेता है।

यह जो बीच का स्थिर केन्द्र है उसका नाम बुद्धि नहीं है। किन्तु वह है एक स्वाभाविक आकर्षण-शक्ति—एकता का एक बिन्दु। जब यहाँ मन का आगमन होता है तब यह सुन्दर एकता छिन्न-भिन्न हो जाती है।

इतना सुनते ही व्योम अधीर हो गया। वह बीच ही में कहने लगा—तुम जिसको एकता का बिन्दु कहते हो उसको मैं आत्मा कहता हूँ। उसकी यह प्रकृति है कि वह अपने चारों ओर से पाँच पदार्थों को एकत्रित करके, उनको सङ्गठित करके, एक बना लेता है। जिसको तुम मन कहते हो उसका स्वभाव इसके ठीक विपरीत है। वह जब इन पाँचों पदार्थों के समीप आ जाता है उस समय ये पदार्थ बिखर जाते और नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव आत्मयोग की पहली सीढ़ी मन को वश में करना है।

योग के समस्त तत्त्व मेरे जाने हुए नहीं हैं, परन्तु मैंने सुना है कि योगीगण योग के द्वारा सृष्टि कर सकते हैं। प्रतिभा की सृष्टि भी उसी तरह की होती है। कविगण अपनी स्वाभाविक शक्ति के द्वारा मन को अपने वश में कर लेते हैं और अर्द्ध-अचेतन भाव से आत्मा के आकर्षण के द्वारा भाव, रस, ध्वनि आदि को एकत्रित करते हैं तथा सङ्गठन जीवन आदि से इसको सज्जित करके एक रूप में खड़ा कर देते हैं।

संसार के प्रसिद्ध मनुष्यों ने बड़े बड़े कार्य किये हैं। उनके

वे कार्य भी इसी प्रकार सिद्ध हुए हैं। जो पदार्थ जहाँ का है वह किसी दैवी शक्ति के प्रभाव से अनायास ही उस स्थान पर जाकर एकत्रित हो जाता है और इस प्रकार वह कार्य भी सुसम्पन्न तथा सम्पूर्ण हो जाता है। प्रकृति का सबसे छोटा पुत्र उद्दण्ड मन यहाँ से निकाल नहीं दिया जाता और न उसका तिरस्कार ही होता है किन्तु प्रतिभा की अमोघ शक्ति से उसका बल क्षीण हो जाता है। वह मन्त्र-मुग्ध के समान सब काम करता जाता है। देखनेवाले समझते हैं कि किसी योग-बल से ये कार्य होते जाते हैं। सारी घटनाएँ और बाहरी अवस्थाएँ आदि योग-बल से इच्छा के अनुसार अनुकूल हो जाती हैं। गेरीबाल्डी ने इसी प्रकार अध:पतित रोम-साम्राज्य का पुनरुद्धार किया और वाशिंगटन ने वन में चारों ओर बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करके अमेरिकन संयुक्त-राज्य की स्थापना की।

ये सब कार्य योग-साधन कहे जाते हैं।

कवि जिस प्रकार काव्य बनाते हैं, तानसेन जिस प्रकार तान-लय-सुर आदि के द्वारा गान बनाते थे, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने जीवन की रचना करती हैं। स्त्रियों की सृष्टि भी वैसे ही अचेतनता तथा माया-मन्त्र के द्वारा होती है। पिता, पुत्र, भाई, बहन, अतिथि, अभ्यागत आदि को सुन्दर बन्धन में बाँध कर वे अपने चारों ओर सजाती हैं। इन विचित्र उपादानों से बड़ी कुशलता-पूर्वक वे एक घर बनाती हैं। केवल घर ही क्यों, स्त्रियाँ जहाँ जाती हैं वहीं एक सुन्दर सृष्टि कर लेती हैं; अपना चलना-फिरना, वेश-भूषा, बातचीत आदि को बड़े अच्छे ढङ्ग से सजा लेती हैं।

इसीका नाम शोभा है। यह काम बुद्धि का नहीं, अनिर्वचनीय प्रतिभा का है। यह मन की शक्ति नहीं है किन्तु आत्मा की गूढ़ शक्ति है। यह सुर जो ठीक अपने स्थान ही पर जाकर आघात करता है, बातें जो ठीक ठीक अपना अर्थ बोधन करती हैं, और कोई काम जो ठीक समय सिद्ध होता है यह सब उस अत्यन्त गुप्त सारे जगत् के केन्द्र से स्वाभाविक स्फटिक धारा के समान निकला हुआ प्रवाह है। उस केन्द्र-भूमि को अचेतन न कहकर महाचेतन कहना ही उचित है।

प्रकृति में जो सौन्दर्य है वही प्रभावशाली और विद्वान् मनुष्यों में प्रतिभा कही जाती है, तथा स्त्रियों में वर्तमान उसी सौन्दर्य को श्री-शोभा कहते हैं। वही स्त्रियों का प्रधान धर्म है। एक ही सौन्दर्य, पात्र-भेद से, भिन्न भिन्न रूप में विकसित होता है।

इसके पश्चात् व्योम ने वायु की ओर देखकर कहा—हाँ, अब आप कहिए। आप अपना लिखा अब समाप्त कर डालिए।

वायु ने कहा—अब कोई आवश्यकता नहीं। मैंने जो प्रारम्भ किया था उसका आपने एक प्रकार से उपसंहार कर दिया।

क्षिति ने कहा—वैद्य महाराज ने प्रारम्भ किया था और डाक्टर साहब उसे समाप्त करके बिदा हुए। मन क्या है, बुद्धि क्या है, आत्मा क्या है, सौन्दर्य क्या है और प्रतिभा किसको कहते हैं—आदि बातें मैंने आज तक नहीं समझी थीं, परन्तु समझने की आशा थी। सो उस आशा पर भी आज पानी फिर गया।

जिस प्रकार रेशम को मनुष्य ज़रा नीचे मुँह करके बड़ी साव-

धानी से तुनता है उसी प्रकार नीचे मुँह करके नदी चुपचाप बैठी है और बड़े ध्यान से उन बातों पर विचार कर रही है।

दीप्ति भी चुपचाप बैठी है। वायु ने उससे पूछा—क्यों जी, क्या सोच रही हो?

दीप्ति ने कहा—बङ्गाली स्त्रियों की प्रतिभा से बङ्गाली लड़कों में इस प्रकार नई नई बातों की सृष्टि करने की शक्ति कब से उत्पन्न हुई, यही सोचती हूँ।

मैंने कहा—तो मिट्टी से क्या सदा शिव ही बनाये जाते हैं?

गद्य और पद्य

मैंने कहना शुरू किया—वंशी के शब्द में, पूर्णिमा की चाँदनी में,—

श्रीमती क्षिति मुझको इस प्रकार आनन्दोन्मत्त देख कर हँसने लगीं। उन्होंने कहा—भाई, यह क्या करते हो? इस समय इसको बन्द करो। कविता छन्द में करने ही से भली लगती है। यदि तुम पाँच जने मिल कर गद्य में कविता का योग करो तो वह गद्य प्रति दिन के व्यवहार के अयोग्य हो जायगा। दूध में पानी मिलाने से किसी तरह काम चल जाता है, पर पानी में दूध मिलाने से काम नहीं चलता। वह दूध मिलाया हुआ पानी स्नान-पान आदि के काम में नहीं आ सकता। यदि कविता में थोड़ा-बहुत गद्य मिला दिया जाय तो उससे हम लोगों के समान गद्य-प्रेमियों को कविता समझने में सुभीता हो सकता है, परन्तु गद्य में कविता का मिलाया जाना बड़ा ही भद्दा है।

—बस, मन की मन ही में रह गई। शरद ऋतु के प्रातःकाल

का मेरा नवीन-भावांकुर क्षिति के तीखे उपालम्भ से समूल उखड़ कर नष्ट हो गया। तार्किक विचार के विरुद्ध यदि कोई मत प्रकाशित भी करे तो उससे विशेष घबराने का कोई कारण नहीं रहता, परन्तु भाव-सम्बन्धी बातों के विषय में यदि कोई बाधा उपस्थित हो जाय तो मनुष्य से कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता—वह घबरा जाता है। क्योंकि भाव की बातें श्रोताओं की सहानुभूति पर ही अवलम्बित रहती हैं। भाव-विषयक बातें यदि श्रोताओं को रुचिकर न हों, यदि वे कह दें कि क्या उन्मत्तता करते हो तो उसका उत्तर—किसी भी युक्ति-शास्त्र में ढूँढ़ने पर भी—नहीं मिलता।

इसी कारण पहले के विद्वान् भाव की बात शुरू करने के पहले अपने श्रोताओं को हाथ-पैर जोड़ कर प्रसन्न कर लेते थे। वे कहते थे–"बुद्धिमान् मनुष्य पानी को छोड़ कर दूध को ग्रहण करते हैं।" वे अपनी योग्यता स्वीकार करते थे परन्तु उसके प्रकाश के लिए श्रोताओं की अपेक्षा रखते थे। कभी कभी वे भवभूति के समान प्रारम्भ से ही बड़े दम्भ के द्वारा सबको अपने वश में रखने का प्रयत्न करते थे। परन्तु इतना करने पर भी घर लौट आने पर वे अपने को धिक्कार देते थे और कहते थे—"जिस देश में काँच और मणि एक भाव बिकता है उस देश को नमस्कार है।" और देवता से भी प्रार्थना करते थे—"हे चतुरानन, हमारे पापों का और जो फल आप देना चाहें, दें, हम उसको प्रसन्नता-पूर्वक सह लेंगे; पर अरसिक के सामने रस की बातें कहना हमारे भाग्य में न लिखना, न लिखना, न लिखना।" सचमुच इस प्रकार की शान्ति इस संसार में दूसरी नहीं है। इस संसार में अरसिक रहे

ही नहीं, ऐसी बड़ी प्रार्थना देवताओं से नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनके न रहने से संसार की जन-संख्या बहुत घट जायगी। अरसिकों के द्वारा ही संसार के बहुत से काम होते हैं—मानव-समाज के लिए उनकी बड़ी आवश्यकता है। यदि अरसिक न होते तो सभा बन्द होजाती, कमिटी क्यों की जाती, समाचारपत्रों में लिखा क्या जाता, और समालोचना ही किसकी की जाती! इसी कारण उनका मैं बड़ा आदर करता हूँ। कोल्हू में राई या तिल डालने से ही उसमें से तेल की धारा निकलती है। यदि कोई उसमें फूल डाले और शहद निकलने की आशा करे तो उसकी आशा सफल नहीं हो सकती। अतएव मेरी प्रार्थना है—हे चतुरानन, कोल्हू का कभी नाश न करना, वह संसार में सदा सुरक्षित रहे, परन्तु उसमें न तो फूल डालना और न गुणियों के हृदय ही।

श्रीमती नदी का दयार्द्र हृदय सर्वदा निर्बलों का पक्ष करता है। वे मेरी दुर्दशा देख कर दुःखी हुई और बोलीं—क्या गद्य और पद्य में इतना भेद है?

मैंने कहा—पद्य अन्तःपुर है और गद्य बाहर की बैठक है। दोनों के लिए अलग अलग स्थान नियत हैं। परन्तु अबला नारी बाहर घूमने के लिए निकलेगी तो उसे विपत्ति में फँसना ही पड़ेगा, यह कोई निश्चित बात नहीं है। हाँ, यदि उसे किसी उद्धत स्वभाव के मनुष्य द्वारा अपमानित होना पड़े तो वह रोने के अतिरिक्त और क्या कर सकती है। इसी कारण वह सदा अन्तःपुर ही में रहती है, क्योंकि वहाँ उसके लिए सुरक्षित स्थान है। कविता के लिए पद्य भी अन्तःपुर के समान है; छन्दों से घिरी रहने के कारण

सहसा उस पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता। अपने लिए वह, साधारण की भाषा से भिन्न, दुर्गम परन्तु सुन्दर सीमा निश्चित करती है। यदि अपने हृदय के भाव को मैं उस सीमा के भीतर पहुँचा सकता तो क्षिति की तो बात ही क्या है, किसी क्षिति-पति में भी यह साहस न होता कि वह आकर मेरा उपहास कर जाय।

व्योम गुड़गुड़ी पी रहे थे। उसका नैचा हटा कर आँखें बन्द किये हुए ही वे कहने लगे—मैं एकता-वादी हूँ। एक गद्य के द्वारा ही मनुष्यों के सब काम सिद्ध होजाते, परन्तु न मालूम कहाँ से यह पद्य आकर बीच में कूद पड़ा और इसने मनुष्यों के मन में अन्तर डाल दिया। इसीके द्वारा मनुष्य-समाज में कवि नामक एक नई जाति की सृष्टि हुई है। किसी सम्प्रदाय के हाथ में जब सर्वसाधारण का धन चला जाता है तब वह सम्प्रदाय, स्वार्थ-वश होकर, बड़े ज़ोर से इस बात का प्रयत्न करता है कि उस धन पर किसी दूसरे का अधिकार न हो। इसी प्रकार कवियों ने भी भाव के चारों ओर एक कठोर रुकावट उत्पन्न करने के लिए कविता नाम के एक कृत्रिम पदार्थ की सृष्टि कर ली है। छन्दों की रचना-विशेष पर जन-साधारण नितान्त मुग्ध हुआ है। उससे सर्वसाधारण को बड़ा आनन्द होता है। मनुष्य का स्वभाव इतना विकृत हो गया है कि वह कविता सुनते ही आनन्द में विभोर होजाता है। यदि उस समय आनन्द-प्रकाशक ताली न पीटी जाय तो उसका चैतन्य होना भी कठिन हो जाय। कविता में सरल स्वाभाविक भाषा को छोड़ कर रङ्गीन भाषा को महत्व दिया जाता है। भाव के लिए यह बड़े अपमान की बात है। मालूम पड़ता है, यह पद्य की सृष्टि

आधुनिक है। इसी से वह नवाबों के समान बड़ी शेखी से घूमता-फिरता है। परन्तु उसकी यह शेखी मुझसे देखी नहीं जाती। इतना कह कर व्योम फिर गुड़गुड़ी पीने लगा।

श्रीमती दीप्ति ने व्योम को तिरस्कार की दृष्टि से देख कर कहा—विज्ञान में एक नया तत्त्व आविष्कृत हुआ है। उसका नाम है प्राकृतिक निर्वाचन। इस प्राकृतिक निर्वाचन का नियम केवल पशुओं में ही नहीं है किन्तु मनुष्यों में भी इस नियम का परिचय पाया जाता है। इसी नियम के अनुसार मयूरी के पूँछ नहीं होती और मयूर सुन्दर होता है। कविता की सुन्दरता भी इसी प्राकृतिक निर्वाचन का फल है। इसमें कवियों का किसी प्रकार का षड्यन्त्र नहीं है। सभी देशों में, चाहे वे असभ्य हों या सभ्य, कविता अपने छन्दों में विकसित होती है।

श्रीयुत वायु अभी तक चुपचाप बैठे सब बातें सुन रहे थे और मुसकुराते भी थे। जब उन्होंने देखा कि दीप्ति भी विचार में शामिल हो रही है तब उनसे नहीं रहा गया। वे एक अद्भुत बात कहने लगे। उन्होंने कहा—कृत्रिमता ही मनुष्यों का प्रधान गौरव है। मनुष्य के सिवा और किसी को भी कृत्रिम होने का अधिकार नहीं। वृक्ष अपने पत्ते स्वयं नहीं बनाते, आकाश भी अपनी नीलिमा उत्पन्न नहीं करता, और मोर की पूँछ को भी स्वयं प्रकृति ही चित्र-विचित्र बनाती है। केवल मनुष्य को ही यह अधिकार है कि वह अपने लिए रचना करे। एक छोटी मोटी सृष्टि उत्पन्न करने का अधिकार मनुष्य के हाथ में विधाता ने दिया है। इस कार्य में जिस मनुष्य ने जितनी दक्षता दिखाई है उसका आदर भी उतना ही जन-

समाज में हुआ है। गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक कृत्रिमता है। उसमें मनुष्य की रचना का अधिक भाग है। वह अधिक सजाया गया है। उसके बनाने में अधिक प्रयत्न किया गया है। हम लोगों के मन में जो विश्वकर्मा वर्तमान हैं, जो हम लोगों के हृदय की गुप्त रचना-शाला में बैठकर सदा नई नई रचना, नये विन्यास, नया प्रयत्न आदि किया करते हैं, उन्हींके हाथ की कारीगरी पद्य में अधिक है। इसी कारण उसका इतना गौरव है। अकृत्रिम भाषा जल की ध्वनि के समान है—सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि के समान है। परन्तु जहाँ मन है वहाँ कृत्रिम भाषा बड़े प्रयत्न से तैयार की जाती है।

नदी ने बड़े ध्यान से विद्यार्थी के समान वायु की बातें सुनीं। उन बातों को सुनने से उसका विनय-नम्र सुन्दर मुख-मण्डल एक नये प्रकाश से प्रकाशित हो गया। दूसरे दिन वह अपनी सम्मति प्रकाशित करने के समय इधर उधर करने लगती थी, परन्तु आज वह बड़े उत्साह से अपना मत प्रकाशित करने लगी। उसने कहा—वायु की बातें सुन कर मेरे मन में एक बात आई है। मालूम नहीं, मैं अपना मत ठीक ठीक प्रकाशित कर सकूँगी या नहीं। सृष्टि के जिस अंश का सम्बन्ध हम लोगों के हृदय से है अर्थात् सृष्टि का जो अंश हम लोगों के हृदय में केवल ज्ञान-संचार ही नहीं करता, किन्तु साथ ही साथ भाव का भी उदय करता है,—जैसे, फूलों की सुन्दरता और पर्वतों की उच्चता आदि—उस अंश के निर्माण के लिए कितनी निपुणता, सुन्दरता, प्रयत्न आदि का उपयोग किया गया है: फूलों की हर एक पंखड़ी कैसी सुन्दर और गोल बनाई गई है। और, वे पंखड़ियाँ वृन्त पर कैसे अच्छे ढङ्ग से जमाई

गई हैं, पर्वतों के माथे पर बर्फ़ का मुकुट पहना कर नीले आकाश में वे किस महत्व से खड़े किये गये हैं, पश्चिम-समुद्र के किनारे अस्ताचल-पट पर कैसे रङ्ग-बिरंगे चित्र अंकित किये गये हैं। देखो न, पृथिवी-तल से लेकर आकाश तक कितनी सजावट, कितने रङ्ग, कितनी सुन्दरता है। इन्हीं सबको देखकर हम लोगों का मन लुभा गया है। ईश्वर की जिन रचनाओं में महत्व, प्रेम और सौन्दर्य आदि प्रकाशित हुए हैं उनमें स्वयं ईश्वर को उनका गुण बनना पड़ा है। वहाँ स्वयं ईश्वर ही ध्वनि-छन्द, वर्ण-गन्ध आदि के रूप में परिणत हुए हैं। ईश्वर ने वन में जो फूल खिलाये हैं, उनमें पंखड़ियों के अनुप्रास का कैसा व्यवहार किया है; आकाश-पट पर एक ज्योतिःपिण्ड की स्थापना करने के लिए उन्होंने कैसी नियमित और सुव्यवस्थित छन्द-रचना की है। विज्ञानशास्त्र उनके पद और छन्दों की ही गणना करता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी अपने भाव प्रकट करने के लिए अनेक प्रकार की निपुणता काम में लानी पड़ती है। उसे शब्द के साथ संगीत का संयोग करना पड़ता है, उसमें सुन्दरता लानी पड़ती है, तब कहीं मन का भाव मन में जाकर प्रवेश करता है। यह यदि कृत्रिम कहा जा सकता है तो यह बात भी माननी पड़ेगी कि यह समस्त संसार कृत्रिम है।

इतना कह कर नदी मेरी ओर देखने लगी। उसके देखने के ढङ्ग से मालूम पड़ता था कि वह मुझसे सहायता चाहती है। वह अपनी कातर दृष्टि से यह बात कह रही थी कि न मालूम मैंने क्या क्या कह दिया है, यदि तुमसे हो सके तो मेरी बातें लोगों को साफ़ साफ़ समझा दो। इसी समय बीच ही में अकस्मात्

व्योम बोले—ऐसा भी तो मत है कि यह समस्त संसार कृत्रिम है। नदी ने जिनको भावों का प्रकाश कहा है अर्थात् दृश्य, शब्द, गन्ध आदि ये केवल माया के विलास हैं,—ये हम लोगों के मन की कृत्रिम रचना हैं,—इसका खण्डन कर देना या अप्रामाणिक कहना बड़ा कठिन है।

यह सुन कर क्षिति बिगड़ उठी और उठ कर कहने लगी—तुम सब लोग मिलकर रसोई में सामवेद का पाठ करने बैठे हो। बात तो थी कि भाव को प्रकाशित करने के लिए पद्य की आवश्यकता है कि नहीं, परन्तु तुम लोग सृष्टि-तत्त्व, प्रलय-तत्त्व, माया-वाद आदि का विचार करने लगे। मेरी तो राय यह है कि भावों को प्रकट करने के लिए छन्द की सृष्टि नहीं हुई है। छोटे छोटे बच्चों को गाना अच्छा लगता है। इसका कारण भावों की मधुरता नहीं है किन्तु छन्दों का सुनने में अच्छा लगना ही है। इसी प्रकार असभ्यावस्था में निरर्थक शब्द यदि किसी छन्द में कहे जायँ तो वे सुनने में अच्छे लगते हैं। अतएव मनुष्य जाति में सबसे प्रथम निरर्थक कविताएँ आदर पाती हैं। मनुष्य जाति की अवस्था ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों त्यों निरर्थक छन्दों से उसका चित्त ऊबने लगता है, अतएव वह उन छन्दों को सार्थक बनाने का प्रयत्न करता है। वयस्क होने पर भी मनुष्यों में कहीं लुक छिप कर बाल्यभाव रही जाता है। ध्वनि-प्रियता और छन्दों का अच्छा लगना आदि उसी बाल्यभाव के चिह्न हैं। हम लोगों का प्रौढ़ भाग अर्थ और भाव को पसन्द करता है और जो अंश प्रौढ़ नहीं हुआ है उसे ध्वनि और छन्द ही प्रिय होता है।

दीप्ति ने अपना मुँह फेर लिया और कहने लगी—अहो भाग्य है कि हम लोगों का सब भाग प्रौढ़ नहीं हो गया। मनुष्यों में वर्तमान बाल्यभाव को मैं हृदय से धन्यवाद देती हूँ। उसी के प्रसाद से संसार में मधुरता देखी जाती है।

वायु ने कहा—जो मनुष्य एकदम प्रौढ़ हो गया है वह इस संसार का बड़ा लड़का कहा जा सकता है। किसी प्रकार का खेल-कूद, किसी प्रकार का लड़कपन उसे पसन्द नहीं होता। हम लोगों की इस समय की हिन्दू-जाति संसार की सब जातियों से बड़ी समझी जाती है, अतएव यह अपनी बहुत अधिक गम्भीरता प्रकाशित करती है, परन्तु यह इस समय भी बहुत सी बातों में छोटी ही है। जेठे लड़के और पुरानी जाति की उन्नति होना कठिन है क्योंकि उनका मन विनयी नहीं होता। यह हमारी गुप्त बात है। इसका प्रकट किया जाना अच्छा नहीं, क्योंकि लोगों की रुचि इस समय बिगड़ी हुई है।

मैंने कहा—जिस समय सड़क बनाने के लिए इञ्जन चलाया जाता है उस समय पटरी पर लिख दिया जाता है कि "इञ्जन चलता है, सावधान।" मैं भी क्षिति को सावधान करता हूँ, क्योंकि अब मैं भी इञ्जन चलाऊँगा। वे रेलगाड़ी से बहुत डरती हैं परन्तु उसके द्वारा हम लोगों को यात्रा में बड़ा सुभीता होता है। गद्य-पद्य के विषय में भी अब मैं अपना अभिप्राय प्रकट करता हूँ। अब रसोई में हमारा सामगान शुरू होता है। जिसकी इच्छा हो, सुने।

गति में परिमित होने का नियम है अर्थात् गति एक परि-

मात्रा में नियमित रहती है। घड़ी का पेण्डुलम सदा एक भाव से चलता रहता है। चलने के समय मनुष्य के पैर नपे-तुले अन्तर पर पड़ते हैं और सारा शरीर उसकी चाल का ठीक हिसाब से साथ देता है। समुद्र की तरङ्गों में भी एक 'तान' है और पृथिवी एक अलौकिक महाछन्द के द्वारा सूर्य की परिक्रमा किया करती है—

व्योमचन्द्र मुझे बीच ही में रोक कर कुछ अपनी बात कहने लगे। उन्होंने कहा—स्थिति ही यथार्थ में स्वाधीन है। वह अपनी गम्भीरता का कभी त्याग नहीं करती। वह सदा ही अटल और अचल है, पर गति में यह स्वाधीनता नहीं। उसे किसी एक नियम के अधीन होकर चलना पड़ता है। परन्तु इस सम्बन्ध में लोगों की धारणा भ्रमपूर्ण है। लोग समझते हैं कि स्वतन्त्रता गति है और बन्धन-परतन्त्रता 'स्थिति' है। इस समझ का प्रधान कारण यह है कि मन की गति इच्छा है अतएव इच्छानुसार चलने को ही अनभिज्ञ मनुष्य स्वाधीनता समझ लेते हैं। इसका तत्व हमारे आचार्यों को मालूम था, वे इच्छा को ही सब प्रकार की गति का कारण समझते थे। वे उसीको सब बन्धनों का मूल समझते थे। इसी कारण उन लोगों ने मुक्ति पाने के लिए इच्छा के हाथ-पैर काट कर उसे निश्चल बनाने की आवश्यकता बताई है। शरीर और मन की सब प्रकार की गति को रोक रखना ही तो योग है।

वायु ने व्योम की पीठ पर हाथ रख कर हँसते हुए कहा—एक मनुष्य कोई बात कह रहा हो तो उसके बीच ही से कुछ कहने लग जाना उसकी बात काट देना है।

मैंने कहा—वैज्ञानिक क्षिति को यह बात मालूम होगी कि एक गति के साथ दूसरी गति का, एक कम्पन के साथ दूसरे कम्पन का एक गहरा सम्बन्ध है। 'सा' सुर के बजने पर 'मा' सुर भी अपने आप बज जाता है। आलोक-तरङ्ग, उत्ताप-तरङ्ग, ध्वनि-तरङ्ग, स्नायु-तरङ्ग आदि तरङ्ग आपस में एक आत्मीयता के दृढ़ सूत्र में बँधी हुई हैं। हम लोगों की चेतनता भी तरङ्ग की एक कम्पित अवस्था है। इसी कारण समस्त संसार के कम्पन से उसका घना सम्बन्ध है। ध्वनि आकर उसके स्नायु को हिला देती है, प्रकाश आकर उसके स्नायु-तन्तुओं में एक अलौकिक आघात पहुँचाता है। अतएव उसके तरङ्गित स्नायु-समूह जगत् के अन्यान्य कम्पनों के साथ उसको एक सुन्दर सूत्र में बाँध देते हैं।

हृदय की वृत्ति, जिसे अँगरेज़ी में "मोशन" कहते हैं, हम लोगों के हृदय का आवेग है, अर्थात् उसीका नाम गति है। उसके साथ भी संसार के अन्य कम्पनों का एक घना सम्बन्ध है। प्रकाश के साथ, रङ्ग के साथ, और ध्वनि के साथ उसका एक कम्पनात्मक सम्बन्ध है; उनका सुर एक है।

इसी कारण सङ्गीत का प्रभाव हम लोगों के हृदय पर बड़े प्रबल रूप से पड़ता है, क्योंकि इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। ये दोनों एक हैं। तूफ़ान और समुद्र का जैसा एक विलक्षण सम्बन्ध है वैसा ही गान और हृदय का भी है।

क्योंकि सङ्गीत के कम्पन द्वारा हम लोगों का सारा हृदय चञ्चल हो उठता है, एक अनिर्दिष्ट आवेग से हम लोगों का हृदय कम्पित हो जाता है और मन उन्मत्त सा हो उठता है। कोई

कोई कवि इस अद्भुत भाव को अनन्त-विषयक अभिलाषा के नाम से पुकारते हैं। मैं भी कभी कभी इस भाव का अनुभव करता हूँ। इसका प्रयोग भाषा में भी करने की इच्छा है। केवल सङ्गीत ही के विषय में यह बात नहीं है किन्तु सन्ध्या के आकाश में अस्ताचल पर जानेवाले सूर्य की प्रभा ने भी मेरे हृदय में उस विराट् के हृदय-स्पन्दन का कई बार सञ्चार कर दिया है। जो एक बृहत् संगीत सदा ध्वनित होता रहता है, उसके साथ मेरे प्रति दिन के सुख-दुःखों का कोई सम्बन्ध नहीं। वह विश्वेश्वर के मन्दिर की प्रदक्षिणा कर रहे समस्त संसार का साम-गान है। केवल संगीत अथवा सूर्यास्त के बारे में ही यह बात नहीं कही जा सकती। बल्कि कोई भी प्रेम, जिसके कारण हम लोग अपना सम्पूर्ण अस्तित्व भूल जाते हैं, हमारे सांसारिक क्षुद्र बन्धनों को तोड़ कर उस अनन्त की ओर खींचता है। वह एक बड़ी उपासना का स्वरूप है। उसके द्वारा देश-काल-रूपी पत्थर तोड़े जाते हैं और एक निर्मल प्रवाह निकलता है जो उस अनन्त की ओर हमें ले जाता है।

प्रबल कम्पन संसार के कम्पन से हम लोगों को मिला देता है। जिस प्रकार एक बड़ी सेना एक भाव से प्रेरित होकर एक-प्राण हो जाती है, उसी तरह संसार का कम्पन जिस समय हम लोगों के हृदय में संचारित होता है उस समय हम लोग भी समस्त संसार के साथ एक हो जाते हैं। सारे संसार के कम्पित परमाणुओं के साथ मिलकर बड़े वेग से हम लोग अनन्त की ओर अग्रसर होते हैं।

इसी भाव को कई भाषाओं में अनेक प्रकार से कवियों ने प्रकाशित किया है। परन्तु इसको समझे तो कौन समझे ! इसे समझनेवालों की संख्या कितनी है ? ऐसे भाव को प्रकाशित करना कवियों की प्रतिभा का एक धुँधला विकाश है।

भाषा से हृदय का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। भाषा मस्तिष्क के द्वार से हृदय में प्रवेश करती है। भाषा केवल दूती है। इस दूती को महाराज की सभा में प्रवेश करने का अधिकार नहीं। वह महाराज के दीवानख़ाने तक जा सकती है और वहाँ जाकर अपने आने का संवाद महाराज के पास भेज देती है। भाषा का अर्थ समझना पड़ता है; उसका अन्वय अर्थ आदि करने में समय लगता है। पर संगीत के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। वह सीधा हृदय से जाकर मिल जाता है।

इसी कारण कविगण भाषा के साथ संगीत का योग कर देते हैं। वह अपने मन्त्र-बल से हृदय का द्वार खोल देता है। छन्द और ध्वनि के प्रवाह में हृदय को अवश-भाव से प्रवाहित होना पड़ता है। उस समय भाषा का काम बहुत सहज हो जाता है; उसका अर्थ समझने के लिए कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता। दूर से जब वंशी की धुन सुन पड़ती है, आँखों के सामने जब विकसित पुष्प-वन उपस्थित होता है, उस समय प्रेम का अर्थ समझने के लिए कोई दिक्कत उठानी नहीं पड़ती। सौन्दर्य पल भर में ही भाव के साथ हृदय का परिचय करा देता है। यह शक्ति सौन्दर्य ही में है, दूसरे में नहीं।

संगीत के दो भाग हैं। सुर और ताल, छन्द और ध्वनि।

ग्रीकों ने "ज्योतिष्क-मण्डली का सङ्गीत" नाम के एक सङ्गीत का उल्लेख किया है। महाकवि शेक्सपियर ने भी इसका ज़िक्र किया है। इसका कारण पहले कहा जा चुका है। एक गति के साथ दूसरी गति का स्वाभाविक सम्बन्ध होना ही इसका कारण है। अनन्त आकाश में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारा आदि आपस में मिल कर नृत्य कर रहे हैं। परन्तु इनका विश्वव्यापी महासंगीत कानों से सुना नहीं जाता, केवल आँखों से देखा जाता है। छन्द संगीत का एक रूप है। अतएव छन्द और ध्वनि दोनों मिल कर कविता को ऐसी शक्ति देते हैं, जिससे भाव में कम्पन उत्पन्न होता है, हृदय चेतन हो जाता है, और बाहरी भाषा हृदय की एक वस्तु हो जाती है। सुन्दरता कृत्रिम नहीं है, कृत्रिम तो भाषा है। भाषा मनुष्य की है, सौन्दर्य है सारे जगत् का और जगत् के विधाता का।

प्रसन्न होकर श्रीमती नदी ने कहा—नाटक में हमारे हृदय को विचलित कर देने लायक़ अनेक सामग्रियाँ वर्तमान रहती हैं। गाना, प्रकाश, दृश्य-पट और अच्छी सजावट ये सब मिलकर चारों ओर से हमारे हृदय पर अपना प्रभाव डालते हैं। नाटक में एक प्रकार के मूर्त्तिमान् भाव का ताँता बँध जाता है और वह अनेक कार्यों के रूप में प्रवाहित होता है। उस समय निरुपाय होकर हम लोगों का मन उसको आत्म-समर्पण कर देता है और बड़े वेग से उसमें मिल जाता है। रङ्गभूमि पर देखा जाता है कि अनेक प्रकार की कलाओं के बीच आपस में परस्पर सहयोगिता वर्तमान है। रङ्ग-मञ्च पर सङ्गीत, साहित्य, चित्र-विद्या, नाट्यकला आदि

सब एक उद्देश्य के लिए आपस में मिल जाते हैं। ऐसी सहयोगिता शायद ही और कहीं देख पड़े।

काव्य का अभिप्राय

नदी ने मुझसे कहा—कच और देवयानी के संवाद की जो कविता तुमने लिखी है वह मैं सुनना चाहती हूँ।

यह सुन कर मेरे हृदय में एक प्रकार का अभिमान उत्पन्न हुआ। परन्तु अभिमान-विनाशन मधुसूदन इस समय जागते थे। उनसे मेरा अभिमान नहीं देखा गया। शायद इसी कारण दीप्ति ने कहा—तुम बुरा न मानना, उस कविता का क्या भाव है और वह क्यों लिखी गई है—यह कुछ मेरी समझ में नहीं आया। सच तो यह है कि वह कविता अच्छी नहीं बनी।

मैं चुप रहा। मैं मन ही मन सोचने लगा कि यदि यही बातें दीप्ति विनय के साथ कहती तो क्या इससे किसी की कुछ हानि होती, अथवा सत्य का अपलाप होजाता? मेरी समझ में तो विनय के साथ कहने से कुछ भी हानि न होती। एक और बात है। जिस प्रकार लेखक में दोषों का रहना आश्चर्य नहीं है उसी प्रकार पाठकों की काव्य-रसज्ञता में न्यूनता होना भी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मन ही मन यों सोचने के बाद मैंने कहा—यद्यपि लेखक अपनी रचना को निर्दोष समझता है, पर कभी कभी वह धोखा भी खा जाता है। इतिहासों में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। और, समालोचक-गण सदा अभ्रान्त ही होते हैं, उनसे कोई भी भूल नहीं होती, इसके प्रमाण की इतिहासों में कमी नहीं। अर्थात् जैसे लेखक भ्रमपूर्ण होते हैं, उसी प्रकार समालोचक भी। अतएव इस

विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता था कि तुम्हारा लिखा पसन्द नहीं आया। यह अवश्य ही मेरा दुर्भाग्य है, और शायद तुम्हारा भी।

दीप्ति ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"हो सकता है।" इतना कह कर वह एक पुस्तक लेकर पढ़ने लगी।

इसके बाद नदी ने फिर दुबारा मुझसे अपनी कविता पढ़ने के लिए अनुरोध किया।

व्योम ने खिड़की के बाहर की ओर बहुत दूर आकाश में रहने-वाले किसी काल्पनिक पुरुष को सम्बोधन करके कहा—यदि तात्पर्य की बात कहो तो हमने तुम्हारी कविता का एक तात्पर्य समझा है।

क्षिति ने कहा—पहले वह बात तो मालूम हो जाय। कविता तो अभी पढ़ी ही नहीं गई और आप लोग लगे विचार करने। अभी तक मैं कवि महाशय के भय से चुप बैठी थी, पर अन्त में मुझे भी बोलना ही पड़ा।

व्योम ने कहा—सञ्जीवनी विद्या सीखने के लिए देवताओं ने देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच को शुक्राचार्य के समीप भेजा था। कच ने हज़ार वर्ष तक शुक्राचार्य की कन्या देवयानी को नृत्य-गीत आदि के द्वारा प्रसन्न किया, और उसीकी कृपा से कच को सञ्जीवनी विद्या प्राप्त हुई। कच के अपने घर लौटने का जब समय आया उस समय वह देवयानी के पास बिदा होने के लिए गया। उस समय देवयानी ने उस पर अपना प्रेम प्रकट किया और उससे सदा वहीं रहने का अनुरोध किया। कच का भी देवयानी पर प्रेम था, परन्तु कच ने उसका मना करना न माना। वह देवलोक को चला

गया। यही मूल कथा है। इस कथा में महाभारत की कथा से अन्तर है, पर बहुत ही थोड़ा है।

क्षिति ने दुःखित होकर कहा—कथा तो बड़ी नहीं है, परन्तु मुझे इस बात का भय है कि इसका तात्पर्य कहीं बहुत लम्बा चौड़ा न बढ़ जाय।

व्योम ने क्षिति की बातों पर ध्यान नहीं दिया। वह कहने लगा—यह कथा शरीर और आत्मा से सम्बन्ध रखती है।

यह सुनकर वहाँ जितने बैठे थे सभी विस्मित होकर उसकी ओर देखने लगे।

क्षिति ने कहा—अब मैं अपना शरीर और आत्मा लेकर यहाँ से विदा हो जाना चाहती हूँ। किसी तरह इज्ज़त तो बच जाय।

वायु ने दोनों हाथ से उसका आँचल पकड़ कर उसे बैठाया। उसने कहा—सङ्कट के समय हम लोगों को अकेला छोड़ कर तुम्हारा यहाँ से जाना अच्छा नहीं।

व्योम ने कहा—इस संसार में जीव स्वर्ग से आया है। वह यहाँ आकर यहाँ के सुख-दुःख आदि की शिक्षा ग्रहण करता है। जितने दिन उसे यहाँ विद्यार्थी की अवस्था में रहना पड़ता है उतने दिनों तक उसे इस आश्रम की कन्या—देह—का अनुवर्तन करना पड़ता है। देह को प्रसन्न रखने के लिए उसके पास बड़ा ही अद्भुत कौशल है। वह शरीर की इन्द्रिय-वीणा में स्वर्गीय सङ्गीत बजाता है और उसके द्वारा इस पृथ्वी पर स्वर्गीय नन्दन वन का ऐसा दृश्य फैलाता है कि जिससे गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि अपनी जड़ता छोड़ कर एक स्वर्गीय वस्तु बन जाते हैं।

यों कहते कहते स्वप्न देखनेवालों के समान व्योम अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वह उठ कर सीधा बैठ गया और कहने लगा— यदि इस दृष्टि से देखो तो हर एक आदमी में प्राचीन प्रेम का प्रकाश देखा जाता है। देखो, जीव अपनी सङ्गिनी को—अबोध और अपने-अनुगत संगिनी को—किस तरह ठगता है! वह देह के प्रत्येक परमाणु में एक प्रकार की आकांक्षा का भाव उत्पन्न कर देता है। उस आकांक्षा की पूर्त्ति शरीर के द्वारा नहीं होती। उसकी आँखों के सामने वह जो सौन्दर्य उपस्थित करता है उस सौन्दर्य का अन्त पाना आँखों की शक्ति के बाहर की बात है। इसी से दृष्टि-शक्ति कहती है—"जनम अवधि हम रूप निहारिनु नयन न तिरपित भेलो;" शरीर के पास जीव जो सङ्गीत उपस्थित करता है उसको अपने वश में करना श्रवण-शक्ति की शक्ति से बाहर का काम है। अतएव वह व्याकुल होकर कहता है "सोई मधुर बोल श्रवणहि सुनलू श्रुतिपथ परस न गेलो।" और यह प्राणों के द्वारा उत्साहित उसकी सङ्गिनी भी लता के समान हज़ारों शाखा-प्रशाखाएँ फैला कर, प्रेमोन्मत्त होकर, उसको आलिङ्गन-पाश में बाँधती है। देह धीरे धीरे जीव को प्रसन्न कर लेती है—बड़े यत्नों से छाया के समान उसके साथ रहती है और उसकी सेवा में कोई भी त्रुटि नहीं होने देती। जीव प्रवास को प्रवास न समझे, उसके सत्कार में कोई कमी न हो, इस पर वह सदा ध्यान रखती है। इस प्रकार प्रेम होने के पीछे एक दिन जीव अपनी अनुरक्त और अनुगत देह-लता को भूमि में लोटती और बिलखती हुई छोड़ कर चला जाता है। जाने के समय जीव देह

से कहता है—'प्रिये, मैं तुमको अपने से अलग नहीं समझता, पर आज तुमको अनायास छोड़ कर जाता हूँ ।' देह उस समय जीव के पैर पकड़ कर कहती है,—'प्रिय, यदि तुम्हें अन्त को जाना ही था, यदि तुम मुझको मिट्टी में मिलाकर चले जाना ही चाहते हो तो इतने दिनों तक अपने प्रेम में मुझको भुला क्यों रक्खा? अपने प्रेम से मुझको तुमने महिमावती क्यों बनाया ? हाय, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, परन्तु एक दिन प्रेम से उन्मत्त होकर मेरे इस एकान्त सोने के कमरे में आधी रात के समय अनन्त समुद्र पार होकर तुम आये क्यों ? मेरे किस गुण से तुम मुग्ध हो गये थे ?' परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर वह विदेशी कुछ भी नहीं देता और चला जाता है । वही आजन्म-मिलन का विच्छेद है, वही कृष्ण की मथुरा-यात्रा का दिन है, वही देह के साथ देह-राज के अन्तिम सम्भाषण का दिन है । ऐसा शोचनीय विरह-दृश्य क्या किसी और प्रेम-काव्य में वर्णन किया गया है ।

क्षिति की मुख-मुद्रा से परिहास की आशङ्का कर व्योम झट-पट बोल उठा—तुम लोग इसे प्रेम न समझो । तुम लोग समझते हो कि हम एक काल्पनिक कथा कह रहे हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है । इस संसार में यही सबसे पहला प्रेम है । जिस प्रकार जीवन का सबसे पहला प्रेम सब की अपेक्षा प्रबल होता है, उसी प्रकार जगत् का पहला प्रेम भी सब की अपेक्षा प्रबल और सरल होता है। यह आदि-प्रेम, यह 'काया' का प्रेम जब संसार में पहले पहल उत्पन्न हुआ उस समय तक संसार में जल और स्थल का विभाग नहीं हुआ था । उस दिन तक भी कोई कवि पैदा नहीं हुआ था और

न किसी इतिहास-वेत्ता विद्वान् ने ही जन्म लिया था। उस दिन संसार में यह घोषणा प्रचारित हुई कि यह संसार मैशीन नहीं है, —इसमें प्रेम नाम का एक अनिर्वचनीय पदार्थ है, जिसकी इच्छा-शक्ति-रूपिणी कीचड़ से पंकज (कमल) उत्पन्न होते हैं और उसी पङ्कज-वन में भक्तगण सौन्दर्य-स्वरूपिणी लक्ष्मी का तथा भाव-स्वरूपिणी सरस्वती का दर्शन करते हैं।

क्षिति ने कहा—यह सुन कर मैं प्रसन्न हुई कि हम में से हर एक के हृदय में इस प्रकार की काव्य की घटना हो रही है तथापि सरल स्वभाव देह के प्रति चञ्चल आत्मा का व्यवहार सन्तोष-जनक नहीं है, यह बात माननी ही होगी। मेरी धारणा है कि मेरा जीव ऐसी चपलता नहीं दिखावेगा और कम से कम कुछ दिनों तक अभी और मेरे शरीर में रहेगा। आप लोग भी मुझे ऐसा ही आशीर्वाद दें।

वायु ने कहा—भाई व्योम, तुम्हारे मुँह से शास्त्र-विरुद्ध बातें तो मैंने कभी नहीं सुनी थीं। आज तुम क्यों ईसाइयों की ऐसी बातें कर रहे हो? ये बातें तो तुम्हारी पहले की बातों से नहीं मिलतीं कि जीवात्मा स्वर्ग से आकर देह से मिलता है और उसका परि-णाम सुख-दुःख आदि के रूप में होता है।

व्योम ने कहा—इन सब बातों के साथ किसी सिद्धान्त के मिलान करने का प्रयत्न मत करना। मैं अपनी पहले की बातों से किसी दूसरे मत का विरोध करना नहीं चाहता। जीवन-यात्रा के व्यवसाय में प्रत्येक जाति अपने अपने राज्य में प्रचलित सिक्कों से मूलधन एकत्रित करती है। सिद्धान्त यही रहता है कि इस प्रकार

व्यवहार चलता है कि नहीं। सुख-दुःख, विपत्ति-सम्पत्ति आदि के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के लिए जीव इस संसार की पाठशाला में भेजा गया है। यही सिद्धान्त मूलधन है। इसके द्वारा जीवन-यात्रा बहुत उत्तम प्रकार से निभती है। अतएव इस विषय में मेरा सिद्धान्त है कि यह मूल-धन—यह सिक्का—खोटा नहीं है। जब समय आवेगा तब मैं आप लोगों को यह भी बतला दूँगा कि जो सिक्का मैंने ख़रीद रक्खा है, जिस प्रामिसरी नोट को लेकर मैं जीवन-यात्रा के व्यवसाय में प्रवृत्त हुआ हूँ, वह सिक्का—वह प्रामिसरी नोट—विश्वविधाता के बैंक में भी लिया जाता है।

क्षिति ने बड़े कष्ट से कहा—भाई, आप लोगों के मुँह से प्रेम की बातें भी बड़ी कठिन मालूम होती हैं। अब आप लोगों ने व्यापार-तत्त्व पर भी विचार करना शुरू कर दिया है। मुझे बड़ी थकावट मालूम होती है, अतएव यहाँ से जाना चाहती हूँ। अगर आप लोग कृपापूर्वक कुछ समय दें तो मैं भी अपनी सम्मति प्रकट कर दूँ।

कुरसी पर ज़ोर देकर व्योम ने अपने पैर खिड़की की ओर ऊपर को उठा दिये। क्षिति ने कहा—मेरी समझ से इस कविता में एवोल्यूशन थ्योरी अर्थात् विकास-वाद का कुछ कुछ आभास पाया जाता है। सञ्जीवनी विद्या का अर्थ है जीते रहने की विद्या। संसार में यह बात साफ़ साफ़ देख पड़ती है कि एक मनुष्य हज़ार ही वर्ष से नहीं, लाखों हज़ारों वर्षों से इस विद्या का अभ्यास कर रहा है। परन्तु जिसके अवलम्बन से वह इस विद्या का अभ्यास करता है उस प्राणिवंश से इसका क्षणिक प्रेम है; ज्योंही एक परिच्छेद समाप्त हुआ त्योंही वह निठुर प्रेमी—वह चञ्चल अतिथि—उसको

नष्ट-भ्रष्ट करके चला जाता है। पृथिवी की प्रत्येक तह में इस निठुर बिदाई का विलाप-गान लिखा हुआ है ;—

क्षिति की बातों के बीच ही में दीप्ति ने कहा—तुम लोग इस तरह अगर तात्पर्य निकालोगे तो तात्पर्यों की सीमा न रहेगी। लकड़ी को जला कर अग्नि का बिदा होना, फूलों को नष्ट करके फलों का निकलना, बीज को फोड़ करके अंकुर का उत्पन्न होना, इस प्रकार के अनेक तात्पर्य निकाले जा सकते हैं।

व्योम ने गम्भीरता के साथ कहा—ठीक बात है; ये सब तात्पर्य नहीं हैं, इनको उदाहरण कह सकते हैं। इनका सार केवल इतना ही है कि इस संसार में दोनों पैरों की सहायता बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते। बायें पैर के सहारे सारा शरीर खड़ा रहता है तो दाहना पैर आगे बढ़ाया जाता है, और दाहने पैर के सहारे पर बायाँ पैर आगे उठाया जाता है। ये दोनों पैर क्रमशः स्वयं बँधते हैं और तत्काल उस बन्धन को भी तोड़ देते हैं। इसी तरह हम लोगों को भी बँधना पड़ता और तत्क्षण बन्धन तोड़ना पड़ता है। हम लोग प्रेम करते हैं और पुनः उस प्रेम को छिन्न भिन्न कर देते हैं। संसार में यही बड़ा भारी दुःख है, और हम लोगों को इसी बड़े दुःख में से आगे बढ़ना पड़ता है। समाज के सम्बन्ध में भी यही बातें कही जा सकती हैं। प्राचीन नियम जब समयानुसार प्राचीन हो जाता है और प्रथा के रूप में परिणत होकर वह जब हम लोगों को जकड़ लेता है उस समय सामाजिक विप्लव उठ खड़ा होता है और उस विप्लव के कारण वह प्रथा छिन्न भिन्न हो जाती है। एक पैर आगे रखते ही पीछे वाला पैर उठा लेना

पड़ता है। यदि ऐसा न किया जाय तो चलना कठिन है। इसी कारण आगे बढ़ने के लिए परिचित रीतियों का त्याग करना ही विधाता का नियम है।

वायु ने कहा—इस कथा के अन्त में एक शाप है, उसका उल्लेख तुम लोगों में से किसी ने नहीं किया। विद्या प्राप्त कर और देवयानी का प्रेम-बन्धन तोड़कर कच ने जब यात्रा की थी तब देवयानी ने कच को शाप दिया था। शाप यह था—तुमने जो विद्या सीखी है वह तुम दूसरे को सिखा सकते हो परन्तु उससे स्वयं लाभ नहीं उठा सकते। इस शाप के सम्बन्ध में मैंने एक तात्पर्य निकाला है। यदि आप लोग सावधान होकर सुनना चाहें तो मैं कहूँ।

क्षिति ने कहा—यह पहले से कैसे कहा जा सकता है कि सुनने के समय सब लोग सावधान रह सकेंगे या नहीं। संभव है, प्रतिज्ञा की जाने पर भी अन्त में प्रतिज्ञा का पालन न हो सके। आप अपना तात्पर्य कहना शुरू कर दें, यदि पीछे आपको हम लोगों की दशा पर दया आवे तो अपना कथन अधूरा रहने दीजिएगा।

वायु ने कहा—जिस विद्या से जीविका में सहायता मिले उस को सञ्जीवनी विद्या कहते हैं। मान लो, कोई कवि उस विद्या को स्वयं सीखकर औरों को सिखाने के लिए इस संसार में आया है। अपने स्वाभाविक स्वर्गीय सामर्थ्य से उसने संसार को प्रसन्न कर लिया और वह विद्या भी सीख ली। उसका इस संसार पर प्रेम भी है, परन्तु जब संसार ने उससे कहा—आओ, तुम हमारे बन्धन में बँध जाओ, उस समय वह कहता है कि जो मैं तुम्हारे बन्धन में बँध जाऊँ, तुम्हारे आवर्त्तों में जो मैं भी चक्कर खाने लगूँ, तो

मैं इस सञ्जीवनी विद्या का प्रचार नहीं कर सकता। अतएव संसार में सबके साथ रहने पर भी मुझे सबसे अलग रहना पड़ेगा। उस समय संसार ने उसे शाप दिया—"जो विद्या तुमने हम से सीखी है वह तुम दूसरों को अवश्य सिखा सकते हो, पर स्वयं उसका उपयोग नहीं कर सकते।" इसी शाप के कारण हम संसार में देखते हैं कि छात्रगण गुरु से पढ़ी हुई विद्या का उपयोग अपने काम में करते हैं; पर गुरुजी अपने सांसारिक अनुभवों से स्वयं लाभ नहीं उठा सकते। इसका कारण यह है कि निर्लिप्त रह कर विद्या पढ़ने की चेष्टा सफल अवश्य होती है, निर्लिप्त रहकर बाहर से विद्याएँ सीखी जा सकती हैं, पर कामों में लगे न रहने के कारण उनसे व्यवहार में सहायता नहीं मिल सकती। इसी कारण पहले के समय में ब्राह्मण राज-मंत्री हुआ करते थे और क्षत्रिय राजा उनकी सलाह के अनुसार काम करते थे।

आप लोगों ने जिन बातों का उल्लेख किया है—इस कथा का तात्पर्य वर्णन करने में आप लोगों ने जो जो बातें कही हैं—वे बातें बहुत ही साधारण हैं। मान लो कि रामायण का तात्पर्य ऐसा समझा जाय कि राजा के घर में जन्म लेने पर भी अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, और शकुन्तला का यह तात्पर्य निकाला जाय कि उपयुक्त अवसर पर स्त्री-पुरुषों के हृदय में परस्पर प्रेम का सञ्चार हो जाना कुछ असम्भव नहीं है; तो यह बात बहुत ही साधारण होगी। इस छोटी सी बात को प्रकट करने के लिए कवि का इतना परिश्रम उठाना उचित नहीं कहा जा सकता।

इसके बाद नदी ने कहना शुरू किया। उसने कहा—मैं तो

समझती हूँ कि ये साधारण बातें ही कविता के लिए उपकरण हैं। राजपुत्र होकर, सब तरह के सुखों की सम्भावना रहने पर भी, श्रीराम और सीता को बड़े बड़े दुःख और सङ्कटों में अपना सारा जीवन बिताना पड़ा है। जैसे व्याध पक्षियों का पीछा करता रहता है उसी प्रकार दुःख ने जीवन भर रामचन्द्र और सीता का पीछा किया है। यह संसार में अवश्य होनेवाली घटना और मनुष्य के अभाग्य की पुरानी दुःख-कथा पाठक बड़े प्रेम से पढ़ते हैं और पढ़कर पुलकित होते हैं। शकुन्तला के प्रेम-बन्धन में वास्तव में कोई नई शिक्षा नहीं है। उसमें केवल यही अत्यन्त प्राचीन तथा सीधी सादी बात है कि अच्छे या बुरे अवसर पर प्रेम बड़े वेग से आकर स्त्री-पुरुष को एक दृढ़ बन्धन में बाँध देता है—उनके हृदय को एक बना देता है। शकुन्तला में यही प्रसिद्ध और सीधी बात है। इसी कारण लोगों में उसका बड़ा प्रचार और आदर है। कोई कोई कह सकते हैं कि द्रौपदी के चीर-हरण का अभिप्राय यह है कि मृत्यु तरु-लता, जीव-जन्तु-तृण आदि से आच्छादित इस पृथिवी का वस्त्र खींच रही है, परन्तु भगवान् की कृपा से पृथिवी के वस्त्र का कभी अन्त नहीं होता। सदा ही वह प्राण-मय सुन्दर वस्त्रों से विभूषित हो रही है। परन्तु सभा-पर्व के जिस स्थान पर हम लोगों के हृदय का खून उबल पड़ता है और अन्त को असहाय भक्त पर भगवान् की कृपा देख कर आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है उसका कारण क्या यह नवीन और विशेष 'अभिप्राय' है? अथवा अत्याचार-पीड़ित एक स्त्री की लज्जा और लज्जा-निवारण नामक एक प्राचीन और स्वाभाविक कथा है? कच

और देवयानी के संवाद में भी मनुष्य के हृदय की एक पुरानी और साधारण दुःख-गाथा लिखी गई है। जो लोग उस दुःख-गाथा की ओर ध्यान नहीं देते और तात्विक दृष्टि से तत्व को ही प्रधानता देना चाहते हैं वे काव्य-रस के अधिकारी नहीं।

वायु ने हँस कर हमको सम्बोधित किया। वह कहने लगा—श्रीमती नदी ने काव्य-रस की सीमा पर से हम लोगों का अधिकार हटा दिया है, वहाँ से इन्होंने हम लोगों को निकाल दिया है। अब कवि इसका उत्तर क्या देते हैं, यही सुनना है।

यह सुन कर नदी लज्जित होगई। वह बार बार वायु के कथन का प्रतिवाद करने लगी।

मैंने कहा—मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मैं जिस समय यह कविता कर रहा था उस समय तक मैंने कोई भी तात्पर्य नहीं सोचा था। परन्तु आज आप लोगों के विचारों को सुन कर मालूम होता है कि कविता कुछ बुरी नहीं हुई। कोशों में भी उसके अर्थ नहीं समाते हैं। काव्य का यही प्रधान गुण है कि कवि की रचना-शक्ति पाठकों की कल्पना-शक्ति को उत्तेजित कर देती है। कविता पढ़ने के समय सभी पाठक अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार अर्थ करने लगते हैं। कोई उसीसे सुन्दरता, कोई नीति और कोई तत्व का अर्थ निकालते हैं। जैसे आतशबाज़ी में पलीता लगाते ही वह जल उठती है वैसे ही काव्य भी पलीता है। आग लगते ही कोई तो बाण की तरह एकदम आकाश में उड़ जाता है, कोई छछूँदर की तरह उछलने लगता है और कोई बमगोले की तरह-गार्जन करता है; पर साधारणतः श्रीमती नदी के विचारों से मेरा कोई विरोध

नहीं। कोई कोई कहते हैं कि बीज ही फल का प्रधान अंश है, और यह बात वैज्ञानिक युक्ति से प्रमाणित भी की जा सकती है, तथापि बहुत से रसज्ञ ऐसे भी हैं जो फल तो खा लेते हैं पर उसका बीज फेंक देते हैं। इसी प्रकार किसी काव्य में यदि कोई विशेष शिक्षा हो और पाठक केवल काव्य-भाग को ही ग्रहण करके शिक्षा-भाग को छोड़ दे तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। और, जो लोग केवल शिक्षा की ओर ही विशेष ध्यान देते हैं उनको मैं आशीर्वाद देता हूँ कि वे भी अपने काम में सफलता प्राप्त करें और सुखी रहें। सुख किसीको बल-पूर्वक नहीं दिया जा सकता। कुसुम के फूल से कोई रङ्ग निकालते हैं, कोई तेल निकालने के लिए उसके बीजों की प्रतीक्षा करते हैं और कोई उसकी शोभा ही देखते हैं। इसी प्रकार काव्य से कोई इतिहास सीखते हैं, कोई दर्शनशास्त्र की युक्तियां निकालते हैं, कोई नीति और कोई व्यवहार का आविष्कार करते हैं तथा कोई काव्य से काव्य को ही ग्रहण करते हैं। जिसको जो मिलता है वह उसी को लेकर सन्तोष करता है। कोई किसी से विरोध नहीं करता। विरोध करने की आवश्यकता भी नहीं और उसमें कोई फल भी नहीं है।

प्राञ्जलता

नदी ने एक प्रसिद्ध अँगरेज़ कवि का नाम लेकर कहा—न मालूम क्यों, इस कवि की रचना मुझको पसन्द नहीं है।

दीप्ति ने और भी दृढ़ता से नदी के मत का समर्थन किया।

वायु का स्वभाव है कि वह, जहाँ तक टल सके, स्त्रियों के किसी

मत का स्पष्ट विरोध नहीं करता। इसलिए उसने मुसकुराकर कहा—परन्तु बड़े बड़े समालोचकों ने इस कवि को ऊँचा आसन दिया है।

दीप्ति ने कहा—अग्नि में जलाने की शक्ति है, इस बात को बतलाने के लिए किसी समालोचक की सहायता दरकार नहीं होती। वह तो आग में उँगली डालते ही मालूम हो जाती है। जिस कविता की उत्तमता अनायास न जानी जासके उसकी समालोचना पढ़ कर उत्तमता जानने का प्रयत्न करना मेरी समझ में अनावश्यक है।

अग्नि में जलाने की शक्ति है, यह बात वायु भी जानता था इसलिए वह चुप हो रहा। पर बेचारे व्योम को इन बातों से जानकारी तो थी नहीं, अतएव वह ज़ोर देकर यों कहने लगा—मनुष्य का मन मनुष्य को छोड़ कर चला जाता है और प्रायः वह पकड़ा भी नहीं जाता;—

व्योम को बीच ही में रोक कर क्षिति ने कहा—त्रेतायुग में हनुमान् की पूँछ भी सौ योजन लंबी थी और वह उनसे अलग बहुत दूर पर रहती थी। यदि कभी उनकी पूँछ पर मच्छर बैठ जाता था तो उसको उड़ाने के लिए घोड़े की डाक बैठानी पड़ती थी। मनुष्य का मन हनुमान्‌जी की पूँछ से भी बड़ा होता है। इसी कारण कभी कभी मन अगर कहीं दूसरी जगह चला जाता है तो समालोचक को घोड़े की डाक पर बैठ कर वहाँ जाना पड़ता है। पूँछ से मन में केवल अन्तर इतना ही है कि मन आगे आगे चलता है और पूँछ पीछे पड़ी रहती है। इसी कारण पूँछ की निन्दा होती है और मन की प्रशंसा।

क्षिति की बात समाप्त होने पर व्योम फिर कहने लगा—विज्ञान के उद्देश्य को जानना और दर्शन के उद्देश्य को समझना कठिन है। अन्यान्य बातें जानने तथा समझने की अपेक्षा विज्ञान का जानना और दर्शन को समझना कठिन है। इनको जानने और समझने के लिए कितने ही स्कूल, पुस्तकें, तथा और भी अनेक उपाय किये जाते हैं। साहित्य का उद्देश्य है आनन्द देना। पर उस आनन्द को ग्रहण करना भी सहज नहीं है। उसके लिए अनेक प्रकार की शिक्षा तथा सहायता की अपेक्षा है। इसी कारण मैं कहता था कि मन इतनी दूर आगे चला जाता है कि उसको पकड़ने के लिए सीढ़ी लगानी पड़ती है। यदि कोई घमण्ड करके कहे कि शिक्षा के बिना जो न जाना जाय वह विज्ञान नहीं है, जो बिना प्रयत्न के न समझा जाय वह दर्शन नहीं है और जो बिना साधन के आनन्द नहीं देता वह साहित्य नहीं है, तो उसको कुछ कहावतों और रामलीला, नाटक आदि के द्वारा ही सन्तोष करना चाहिए। उसको आगे बढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं।

वायु ने कहा—मनुष्य के संसर्ग से सभी वस्तुएँ प्रायः कठिन हो जाती हैं। असभ्य मनुष्य किसी तरह चिल्ला कर—सिर हिला कर प्रसन्न हो लेता है परन्तु सभ्य मनुष्यों के भाग्य में वह बात नहीं लिखी है। हम लोगों को बड़े परिश्रम से सङ्गीत सीखना पड़ता है। यह हम लोगों के ग्रह-दोष की बात है कि जब तक खूब अभ्यास के द्वारा हम लोग संगीत को नहीं सीख लेते तब तक आनन्द नहीं आता। सङ्गीत सीखने के लिए जितना परिश्रम करना पड़ता है उतना ही अच्छा गाने के लिए भी। इसका

फल यह होता है कि एक समय जिस वस्तु पर सर्व-साधारण का अधिकार था, किसी समय वही वस्तु केवल साधक-दल के अधिकार में आ जाती है। चिल्लाना सबको आता है। उससे असभ्य भी पूरा पूरा आनन्द उठाते हैं। पर सब लोग न तो गाना जानते हैं और न उससे सुख ही पा सकते हैं। अतः समाज ज्यों ज्यों अपनी उन्नति करता जाता है त्यों त्यों उसमें दो दलों की सृष्टि होती है— अधिकारी और अनधिकारी, रसिक और अरसिक।

क्षिति ने कहा—बेचारा मनुष्य इस प्रकार का बनाया ही गया है कि वह चाहे सीधे से सीधे उपाय का भी आश्रय ग्रहण करे परन्तु वह कठिन ही हो जाता है। वह कामों को सरलतापूर्वक करने के लिए कल बनाता है, परन्तु वह कल ही एक कठिन काम हो जाता है। उससे काम लेने में मनुष्यों को कठिनता का सामना करना पड़ता है। मनुष्य प्राकृत ज्ञान को नियमित करने के लिए विज्ञान का आविष्कार करता है, पर उस विज्ञान का जानना ही एक कठिन काम हो जाता है। सुविचार करने के लिए एक सहज मार्ग बनाने की इच्छा से मनुष्य क़ानून बनाता है, परन्तु उस क़ानून को यथार्थ समझने के लिए दीर्घजीवी को भी अपने जीवन का आधे से अधिक भाग लगा देना पड़ता है। लेन-देन में सुभीते के लिए मनुष्यों ने सिक्का बनाया, परन्तु अन्त में सिक्के की समस्या इतनी कठिन हुई कि वह हल न हो सकी। मनुष्य अपने सब कामों को सहज करने का प्रयत्न तो करता है परन्तु उसके सभी काम कठिन हो जाते हैं। यहाँ तक कि आमोद-प्रमोद, खाना-पीना आदि उसके सभी काम कठिन हो जाते हैं।

नदी ने कहा—इसी सिद्धान्त के अनुसार कविता भी कठिन हो गई है। इसी कारण आज-कल मनुष्यों में दो दल पाये जाते हैं—धनी और निर्धन, गुणी और निर्गुण। धनियों की संख्या थोड़ी है और निर्धन बहुत हैं; गुणी थोड़े हैं पर निर्गुणों का तो शुमार करना भी कठिन है। इस समय कविता पर सर्व-साधारण का अधिकार नहीं है, उस पर तो इने-गिने लोगों का ही अधिकार है! ये सब बातें मैंने समझ लीं पर बात तो यह है कि इस समय जिस कविता के बारे में हम लोग बातचीत कर रहे हैं उस कविता में तो कहीं भी कठिनता नहीं। उसमें ऐसा कोई भी भाग नहीं जिसे हमारे समान मनुष्य न समझ ले। वह बहुत ही सरल है, अतएव वह कविता अगर हमें अच्छी न लगे तो उसमें हमारी समझ का कुछ भी दोष नहीं।

क्षिति और वायु ने नदी के कहने पर और कुछ भी कहना नहीं चाहा। परन्तु व्योम बड़ी प्रसन्नता से कहने लगा—यह कोई बात नहीं कि जो सरल है वह सहज भी हो। कभी कभी वही बात अत्यन्त कठिन हो जाती है। क्योंकि काव्य का वह सरल अंश बाहरी उपायों से अपना अर्थ प्रकट करने के लिए स्वयं चेष्टा नहीं करता, वह चुपचाप पड़ा रहता है। उसको बिना समझे ही यदि पाठक आगे चले जाते हैं तो भी वह पाठकों को अपना अर्थ समझा देने के लिए बुलाता नहीं। प्राञ्जलता का यही प्रधान गुण है कि वह अनायास, बिना परिश्रम के ही, अपना सम्बन्ध मन के साथ स्थापित कर लेती है। उसके और मन के बीच में सम्बन्ध स्थापित कराने के लिए किसी दूसरे की आवश्य-

कता नहीं है। परन्तु कविता के जिस अंश को मध्यस्थ की सहायता के बिना मन ग्रहण नहीं कर सकता, जिस अंश को एक वार छोड़कर मन को दुबारा उसके पास जाना पड़ता है वह कविता प्राञ्जल नहीं है; प्राञ्जलता का उससे कोई सम्बन्ध नहीं। कृष्णनगर के कारीगर की बनाई हुई भिश्ती की मूर्त्ति अपनी रङ्गीन मशक और अङ्ग-भङ्गी से हम लोगों की इन्द्रियों को अपनी ओर अनायास ही आकर्षित कर सकती है। वह हमारी इन्द्रियों और अभ्यास की सहायता से हम लोगों के मन के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकती है, पर ग्रीस की बनी पत्थर की मूर्त्तियाँ ऐसी नहीं हैं। उनमें न रङ्ग है और न चमक-दमक ही। वे स्वयं, बिना किसी की सहायता के मन से अपना सम्बन्ध जोड़ती हैं। अतएव वे प्राञ्जल हैं। प्राञ्जल तो हैं किन्तु यह कोई बात नहीं कि वे सहज भी हैं। वे मूर्त्तियाँ निस्सार बाहरी उपायों का सहारा नहीं लेतीं, इस कारण उनमें अधिक भाव होना ही चाहिए।

दीप्ति ने कड़क कर कहा—आप लोग ग्रीस की पत्थर की मूर्त्तियों की बात इस समय रहने दें तो अच्छा है। इस विषय की बहुत सी बातें मैंने सुनी हैं और जीती रहूँगी तो और भी बहुत सुनूँगी। अच्छी वस्तुओं का यही दोष है कि उन्हें सबकी आँखों के सामने ही रहना पड़ता है और सभी उनके विषय की बातें करते हैं। उस वस्तु का न पर्दा रहता है और न कोई प्रतिष्ठा ही रहती है। उसके विषय में न कोई खोज करता है, न उसके विषय में विचारता है और न उसका ध्यान-पूर्वक निरीक्षण ही करता है। किन्तु केवल उसके सम्बन्ध की सभी बातें सुनना चाहते हैं। इसी

कारण सूर्य बीच बीच में मेघों की ओट में छिप जाया करते हैं; यदि वे सदा मेघ-मुक्त रहते तो उनकी इतनी प्रतिष्ठा न होती। मेरी समझ से संसार के बड़े बड़े प्रसिद्ध मनुष्यों को इस प्रकार के तिरस्कार का पात्र बीच बीच में बनना चाहिए—बीच बीच में ग्रीक-मूर्त्तियों की निन्दा भी होनी चाहिए। कभी कभी सर्व-साधारण में यह चर्चा भी फैलनी चाहिए कि कालिदास की अपेक्षा चाणक्य महान् कवि थे। नहीं तो सदा एक ही बात सुनते सुनते चित्त ऊब जाता है। जो हो, यह एक बाहरी बात है। मेरा कहना है कि कभी भाव का अभाव और बर्बरता सरलता के नाम से परिचित हो जाती है; कभी कभी भाव प्रकाश करने की क्षमता का न होना भावाधिक्य के नाम से पुकारा जाता है,—इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए।

मैंने कहा—कला-विद्या में सरलता असीम मानसिक उन्नति की सहेली है। बर्बरता और सरलता दोनों एक पदार्थ नहीं। बर्बरता में बाहरी दिखावा बहुत अधिक होता है, सभ्यता में वह दिखावा नहीं रहता, सभ्यता में बाहरी सजावट नहीं होती। अधिक अलङ्कार देखने में अच्छे लगते हैं परन्तु उनसे मन को कष्ट होता है। हम लोगों के देशी भाषा के समाचारपत्रों में और उच्च श्रेणी के साहित्य में सरलता और सावधानी का अभाव सा देख पड़ता है। सभी बढ़ाकर, ओजस्विता और भाव-भङ्गी के साथ, बोलना पसन्द करते हैं। बिना आडम्बर के सच्ची सच्ची बात, स्पष्ट भाषा में, प्रकाशित करने की ओर लोगों की रुचि ही नहीं है। क्योंकि सत्य जब प्राञ्जल वेश में आता है तब उसकी गम्भीरता और

असाधारणता हम पर प्रकट नहीं होती । भाव की सुन्दरता पर कृत्रिम अलङ्कार न हों तो हम लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं कर सकते ।

वायु ने कहा—संयम भद्रता का एक प्रधान लक्षण है । सज्जन मनुष्य अधिक अलङ्कार आदि की दिखाऊ अप्रधानता से अपनी उद्दण्डता नहीं दिखाते, किन्तु विनय और संयम के द्वारा वे अपनी मर्यादा स्थिर रखते हैं । कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि साधारण मनुष्य नियमित और सुसज्जित सज्जनता की अपेक्षा आडम्बर और बाहरी चमक-दमक को अधिक महत्व की दृष्टि से देखते हैं । वे इसको अधिक आकर्षक समझते हैं । यह सज्जनता का दोष नहीं ; यह तो उन साधारण मनुष्यों का अभाग्य है । साहित्य में और आचार-व्यवहार में संयम उन्नति का लक्षण है । चमक-दमक के द्वारा लोगों की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करना तो बर्बरता है ।

मैंने कहा—कभी कभी नई नई लहरों के न उठने से परिपूर्णता भी लोगों की दृष्टि से छिपकर चली जाती है और कभी कभी बहुत से लोग इसलिए विचलित हो जाते हैं कि परिपूर्णता का तो अभाव है, पर लहरें वहाँ उठा करती हैं । परन्तु इस कारण यह समझ लेना उचित नहीं कि परिपूर्णता में प्राञ्जलता रहती ही है और चमक-दमक में उथलापन रहता है ।

नदी को लक्ष्य करके मैंने कहा—उच्च श्रेणी का सरल साहित्य भी कभी कभी इसी कारण कठिन हो जाता है । क्योंकि मन तो उसको समझ लेता है पर वह अपने को स्वयं समझा नहीं सकता ।

दीप्ति ने कहा—मैं प्रणाम करती हूँ । आज आप लोगों ने

मुझे चौकस शिक्षा दी है। अब मैं उच्च पण्डितों के सामने उच्च साहित्य के विषय में मत प्रकाशित करने की बर्बरता नहीं करूँगी।

नदी ने उस अँगरेज़-कवि का नाम लेकर कहा—तुम लोग चाहे जो कहो, तर्क करो, चाहे गालियाँ दो, पर उस कवि की कविता मुझको अच्छी नहीं लगती।

कौतुक-हास्य

सर्दियों का सबेरा है। रास्ते में गुड़-लदी गाड़ियाँ जा रही हैं। प्रातःकाल का कुहासा नहीं रहा, सूर्य की किरणें प्रकाश फैला रही हैं। उस प्रकाश से शीत भी धीरे धीरे हटता जाता है। वायु चाय पी रहा है। क्षिति समाचारपत्र पढ़ रही है। इसी समय व्योम एक रङ्गीन गुलूबन्द सिर पर लपेटे और मोटी सी लाठी हाथ में लिये वहाँ आकर उपस्थित हुआ।

थोड़ी दूर पर द्वार के पास खड़ी नदी और दीप्ति गलबहियाँ डाले आपस में धीरे धीरे कुछ बातें कर रही हैं तथा न मालूम क्यों हँस रही हैं। वायु और क्षिति दोनों यह समझ रहे थे कि इस विचित्र वेश-धारी व्योम को देख कर ये हँस रही हैं। यही इनकी हँसी का लक्ष्य है।

इसी समय अन्यमनस्क व्योम का भी उन लोगों की हँसी की ओर ध्यान गया। वह अपनी कुरसी को और भी मेरे पास खिसका लाकर बोला—दूर से किसी पुरुष को यह भ्रम हो सकता है कि ये दोनों सखियाँ कोई कौतुक की बातें करती और हँसती हैं; पर वास्तव में यह बात नहीं है। वह केवल एक माया है। पक्ष-

पाती विधाता ने बिना कौतुक के पुरुष को हँसने की शक्ति नहीं दी है। परन्तु स्त्रियाँ किस कारण से हँसती हैं वह—'देवो न जानाति कुतो मनुष्यः'—परमेश्वर भी नहीं जानता, मनुष्य कहाँ से जानेगा? चकमक पत्थर में प्रत्यक्ष प्रकाश नहीं होता परन्तु संघर्ष से वह बड़े गर्जन के साथ अपना प्रकाश चारों ओर फैला देता है और मानिक का टुकड़ा अपने आप प्रकाशित होता है। वह प्रकाशित होने के लिए किसी की अपेक्षा नहीं रखता। स्त्रियाँ तनिक सी बात पर रोना भी जानती हैं और अकारण हँसना भी। बिना कारण के कार्य उत्पन्न नहीं होता, यह कठोर नियम केवल पुरुषों के लिए है।

वायु ने अपना पात्र ख़ाली कर के और चाय माँगी और फिर कहने लगा—केवल स्त्रियाँ ही नहीं हँसती हैं। सबसे पहले तो हमको इस हास्य-रस के विषय में ही कुछ बातें कहनी हैं। यह बात तो हमको मालूम है कि मनुष्य दुःख में रोता और सुख में हँसता है। परन्तु कौतुक से भी मनुष्य हँसता है, यह बात समझ में नहीं आई। कौतुक से तो कोई सुख नहीं होता। यदि कोई मोटा आदमी कुरसी के टूट जाने से ज़मीन पर गिर जाय तो अवश्य ही उससे हम लोगों को कोई सुख नहीं होता, परन्तु उससे हँसी आती है। यह बात सत्य और परीक्षित है। विचार की दृष्टि से देखने पर यह बात बहुत ही विचित्र मालूम पड़ती है।

क्षिति ने कहा—भाई रहने दो, संसार में बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिन पर बिना विचार किये ही आश्चर्य होता है। पहले उन आश्चर्य-दायक बातों को समाप्त कर लीजिए, तब और किसी ओर ध्यान दीजिएगा। एक पागल था। वह अपने घर के आँगन को

साफ़ करने के लिए झाड़ू देने लगा। झाड़ू देकर वह चाहता था कि यहाँ धूल न रह जाय। परन्तु झाड़ू देने से उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई। तब उसने कुदार से वहाँ की मिट्टी खोदनी प्रारम्भ की। फिर भी वह निराश ही हुआ, वह वहाँ की धूल को नहीं हटा सका। भाई वायु, यदि तुम भी सब बाहरी आश्चर्यों को हटा कर गम्भीरता-पूर्वक आश्चर्य करना चाहते हो तो कहो हम लोग चले जायँ। "कालो ह्ययं निरवधिः" काल की अवधि नहीं है, पर वह अवधि-हीन काल हम लोगों के अधीन नहीं है।

वायु ने हँस कर कहा—हमारी अपेक्षा तुम्हारे लिए ही विशेष चिन्ता की बात है। यदि तुम भी विशेष विचार करतीं तो सृष्टि की बातों को आश्चर्य की दृष्टि से देखतीं किन्तु जो और अधिक विचार न करतीं तो तुम उस अपने पागल से हमारी कल्पना की तुलना न करतीं।

क्षिति ने कहा—क्षमा करना भाई, तुम हमारे बहुत दिनों के मित्र हो। इसी कारण हमारे हृदय में वह भावना उत्पन्न हुई थी। जो हो, असल बात यह है कि कौतुक में हम लोग हँसते क्यों हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। और, इसी के साथ का एक दूसरा प्रश्न यह है कि चाहे कोई भी कारण हो परन्तु हम लोग हँसते क्यों हैं? ज्योंही कोई अच्छी चीज़ हम देखते हैं त्योंही हृदय से एक विलक्षण शब्द उत्पन्न होता है जिससे हमारे मुखमण्डल की मांस-पेशियाँ विकृत होकर सिकुड़ जाती हैं और दाँत बाहर निकल आते हैं। मनुष्य के समान इतने बड़े एक सभ्य प्राणी के लिए यह बात अनुचित, असङ्गत और अपमानकारक है, इसमें सन्देह नहीं।

योरप के सभ्य लोग भय या दुःख को प्रकट करने में अपना अपमान समझते और लज्जित होते हैं; और पूर्वीय देशों के वासी हम लोग सभ्य-समाज में कौतुक प्रकाशित करना अनुचित और औद्धत्य समझते—

वायु ने क्षिति की बात को बीच ही से काट करके कहा,—इसका कारण यह है कि कौतुक से प्रसन्न होने को हम लोग अनुचित समझते हैं। वह बच्चों का काम है। इसी कारण पूर्वीय देशों के सभी सज्जन कौतुक-रस को लड़कपन समझ कर उससे घृणा करते हैं। एक गान में हमने सुना था कि एक दिन श्रीकृष्ण प्रातःकाल शय्या से उठ कर हाथ में हुक्का लिये आग लेने को राधिका के कमरे में गये। यह सुनकर वहाँ जितने श्रोता थे वे सब के सब हँस पड़े। हुक्का हाथ में लिये श्रीकृष्ण की कल्पना न तो सुन्दर ही है और न आनन्द-जनक ही, तो भी लोग इसके सुनते ही हँस पड़े और आनन्दित हो गये। क्या यह बड़े आश्चर्य की बात नहीं है? इसी कारण यह चञ्चलता हम सभ्यों के समाज में अच्छी नहीं लगती। इससे केवल शरीर के स्नायुओं को कुछ उत्तेजना मिलती है। लेकिन इससे न तो हम लोगों को कुछ आनन्द मिलता है और न बुद्धि का ही विकाश होता है। कुछ स्वार्थ-सिद्धि होती हो, सो भी नहीं। अतएव इस अनर्थक छोटे से कारण के द्वारा अपनी बुद्धि को चञ्चल कर देना, धैर्य को नष्ट कर देना, मनस्वी प्राणी के लिए निस्सन्देह लज्जा की बात है।

क्षिति ने विचार कर कहा—यह बात सच्ची है, सम्भवतः किसी कवि की यह कविता आप लोगों ने अवश्य ही सुनी होगी,—

"तृषार्त हइया चाहिलाम एक घटि जल।
ताड़ाताड़ि एने दिले आधखाना बेल॥"

एक प्यासे मनुष्य ने एक गिलास जल माँगा, परन्तु उसको दिया गया बड़ी शीघ्रता से आधा बेल। इसमें दूसरों को आनन्दित होने का धर्म-सङ्गत और युक्ति-सङ्गत कोई कारण नहीं है। जिस मनुष्य ने जल माँगा था उसे यदि जल लाकर दिया जाता तो अवश्य ही उसके प्रति सदय व्यवहार करने के कारण हम लोगों को आनन्दित होने का अवसर मिलता। परन्तु उसको आधा बेल देने से मालूम नहीं लोग क्यों आनन्दित होते हैं; मालूम नहीं इस कार्य से हम लोगों के हृदय की कौन सी वृत्ति प्रफुल्लित होती है। इस कौतुक और सुख में जब भेद वर्त्तमान है तो इनका प्रकाशन पृथक् रीति से होना चाहिए। परन्तु प्रकृति के अधिकार में ऐसा ही होता है। कहीं तो व्यर्थ अपव्यय किया जाता है और कहीं आवश्यकता रहने पर भी हाथ खींच लिया जाता है। एक ही हँसी के द्वारा सुख और कौतुक दोनों का प्रकाशित होना उचित नहीं जान पड़ता।

व्योम ने कहा—आप लोग प्रकृति पर व्यर्थ ही दोषारोपण करते हैं। मनुष्य सुख से मुसकुराते हैं और कौतुक से अट्टहास्य करते हैं। इनमें एक स्थायी होता है और दूसरा क्षणिक।

वायु ने व्योम की बातों पर ध्यान नहीं दिया। वह बोला—आमोद और कौतुक सोलहों आने सुख नहीं हैं किन्तु ये भी दुःख के एक भेद हैं। जिस दुःख और पीड़ा का आघात हम लोगों के हृदय पर थोड़ी मात्रा में होता है उससे हम लोगों को सुख

भी हो सकता है। प्रतिदिन ठीक समय पर हम लोग बिना किसी तरह के परिश्रम के बनी-बनाई रसोई खाते हैं परन्तु उससे हम लोगों को कुछ प्रसन्नता नहीं होती। यदि किसी दिन अधिक तैयारी हुई तो उस दिन भोजन का ठीक समय टल जाता है, अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं, शायद अखाद्य भी खाना पड़ता है; परन्तु वह है हम लोगों के लिए प्रसन्नता। जिस कष्ट और अशान्ति को हम लोग अपनी इच्छा से उत्पन्न करते हैं वह कष्ट भी हम लोगों की चेतन-शक्ति को उत्तेजित करता है। कौतुक भी उसी प्रकार का सुख-जनक एक दुःख है। कृष्ण के बारे में हम लोगों की जो धारणा है उस धारणा में, इनका हुक्का हाथ में ले कर राधिका के घर में आना सुनने से, धक्का लगता है। उस आघात से भी हम लोगों को कुछ कष्ट मालूम पड़ता है। परन्तु वह कष्ट बहुत ही सामान्य और नियमित होता है। अतएव वह जितना दुःख देता है उसकी अपेक्षा हम लोगों की चेतना-शक्ति को उत्तेजित करके सुखी भी करता है। उस कष्ट की भी सीमा है। यदि वह सीमा से थोड़ा भी इधर उधर हुआ तो वह कौतुक दुःख के रूप में परिणत हो जाता है। यदि कहीं भक्ति का यथार्थ कीर्तन होता हो, और वहाँ कोई रसिकता के उन्माद से ग्रस्त बालक वही गीत गावे जिसमें श्रीकृष्ण के हुक्का हाथ में लिये राधिका के घर में जाने का वर्णन है तो उस समय श्रोताओं को कौतुक नहीं होगा किन्तु क्रोध उत्पन्न होगा। क्योंकि इसका आघात प्रबल होगा। उस क्रोध के कारण हाथ की मुट्ठी बँध जायगी और वह मुट्ठी उस रसिक की पीठ की पूजा करने के लिए तत्पर हो जायगी। अतएव मैं तो

समझता हूँ कि चेतना का पीड़न कौतुक है और प्रसन्नता भी वही है। अतः यथार्थ आनन्द का प्रकाश स्मितहास्य के द्वारा और कौतुक का प्रकाश अट्टहास्य के द्वारा होता है। कौतुक-हास्य तो मानसिक आघात को शब्द के साथ बाहर निकाल देने के समान है।

क्षिति ने कहा—आप लोग मनमाने सिद्धान्त गढ़ लेते हैं और उनके लिए मनमाने उदाहरण भी ढूँढ़ लेते हैं। ऐसी स्थिति में ज्ञान या सत्यासत्य का निर्णय होना कठिन है। यह सभी जानते हैं कि हम लोग कौतुक से सदा अट्टहास्य ही नहीं करते, कभी कभी मुसकुरा भी देते हैं। कभी कभी तो यहाँ तक होता है कि लोग मन ही मन हँसते हैं। परन्तु यह गौण बात है, मुख्य बात तो यह है कि कौतुक से हम लोगों का चित्त उत्तेजित हो उठता है और सामान्य उत्तेजना से हम लोगों को सुख मिलता है। मनुष्य एक युक्ति-पूर्ण नियम के द्वारा परिचालित होता है। उसे सदा अपने अभ्यस्त और नियमित काम करने पड़ते हैं। हम लोगों के हृदय पर और बाहर भी इस नियम का समान अधिकार है। जिस समय हम लोगों का चित्त अनियमित रूप से विचरण करता है उस समय उसे अपनी अवस्था की एक विशेषता मालूम होती है। उसी समय यदि उसकी नियमित और परिमित परिधि के बाहर की कोई बात उपस्थित होती है तो हमारे चित्त पर उसका धक्का लगता है, और हम लोग बड़े ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़ते हैं। उस आघात में सुख नहीं, सौन्दर्य नहीं और सुभीता भी नहीं। उसमें अधिक दुःख की भी मात्रा नहीं रहती। इसी कारण कौतुक से उत्तेजित होने को हम लोग आमोद समझते हैं।

मैंने कहा—सभी प्रकार के अनुभव—यदि उनसे किसी बड़े भारी दुःख और स्वार्थ-हानि की आशङ्का न हो तो—सुख के ज़रिए हैं। अधिक क्या, भय से भी लोग सुखी होते हैं यदि उस भय में कोई सच्चा भय का कारण न हो। लड़के बड़े चाव से भूत की कहानी सुनते हैं। क्योंकि हृत्कम्प की उत्तेजना से हम लोगों का चित्त चञ्चल हो जाता है, और उस चित्त की चञ्चलता से भी आनन्द होता है। रामायण में सीता के वियोग से राम को दुःखी देखकर हम लोग भी दुःखी होते हैं; ओथेलो की व्यर्थ निन्दा हम लोगों से सही नहीं जाती; कन्या की कृतघ्नता से दुःखित लियर के कष्ट हम लोगों को भी पीड़ित करते हैं। यदि काव्यों के इन वर्णनों से हम लोग दुःखित न होते, यदि हम लोगों को इनसे मर्म-व्यथा न होती तो उन काव्यों का आदर हम लोग कभी पूरा पूरा न कर सकते। हम लोग दुःख के काव्यों का जितना आदर करते हैं उतना आदर सुख के काव्यों का नहीं, क्योंकि दुःख का अनुभव करने से हम लोगों का चित्त अधिक उत्तेजित हो उठता है। कौतुक से मन में एक प्रकार का धक्का लगता है जिससे हम लोगों की अनुभव-शक्ति तीक्ष्ण हो जाती है। बहुत से रसिक ऐसे भी हैं जो एक दो थप्पड़ मारने को भी हँसी ही समझते हैं। कुछ लोग तो गाली को भी हँसने का कारण समझ कर उसका व्यवहार करते हैं। अतएव ब्याह में कान मलना और इसी तरह के और भी पीड़ा पहुँचानेवाले उपायों को बङ्गाल की स्त्रियाँ हँसी ही समझती हैं। एकाएक आतिशबाज़ी का बमगोला चलाना इस देश में उत्सव का अङ्ग समझा जाता है और कानों को बहरे

करनेवाले घड़ियाल-घण्टे आदि को बजा कर, धुएँ के द्वारा मधु-मक्खियों की तरह, घबराहट में डाल कर भक्ति-रस प्रवाहित करने का प्रयत्न किया जाता है।

क्षिति ने कहा—भाइयो, अब तो आप लोग रहने दें। एक प्रकार से बात भी समाप्त हो गई। जितने पीड़न से सुख होता है उसकी सीमा को आप लोग नाँघ गये हैं। अब तो आप लोग दुःख को ही बढ़ाते हैं। आप लोगों की बातों से दुःख के बढ़ने में सहायता मिलती है। हम लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कमेडी का हँसना और ट्रेजेडी का रोना दोनों ही दुःख की यथायोग्य मात्रा पर अवलम्बित हैं,—

व्योम ने कहा—बर्फ़ पर जब पहले सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब उसमें झिलमिलाहट पैदा होती है, फिर जब किरणों में ताप बढ़ जाता है तब बर्फ़ गलने लगती है। तुम कुछ प्रहसन और ट्रेजेडी के नाम लो, उनसे हम अभी प्रमाणित कर देते हैं,—

इसी समय दीप्ति और नदी दोनों हँसती हुई वहाँ आकर उपस्थित हुईं। दीप्ति ने कहा—क्यों, आप लोग किस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न कर रहे हैं?

क्षिति ने कहा—हम लोग इसी बात को प्रमाणित करते हैं कि तुम दोनों अभी तक बिना कारण वहाँ खड़ी खड़ी हँस रही थीं।

यह सुन कर दीप्ति नदी के मुँह की ओर देखने लगी। नदी ने भी उसकी ओर देखा, और दोनों ख़ूब हँसने लगीं।

व्योम ने कहा—हम लोग प्रमाणित करना चाहते थे कि

'कमेडी' में दूसरों के थोड़े दुःख को देख कर हम लोग हँसते हैं और ट्रेजेडी में दूसरे के अधिक दुःखों को देखकर रोते हैं।

दीप्ति और नदी की सम्मिलित मधुर हँसी से वह घर गूँज उठा। दोनों अधिक हँसने के लिए परस्पर एक दूसरे को दोषी बनाने लगीं। दोनों सखियाँ हँसते हँसते वहाँ से चली गईं।

पुरुष-सभ्य इस अकारण-हँसी को देख मुसकुरा कर चुप हो रहे। वायु ने कहा—व्योम, इस समय बहुत दिन चढ़ आया है, यदि तुम अपने इस पँचरङ्गे नागपाश को खोलकर रख दो तो तुम्हारे स्वास्थ्य में हानि होने की कोई सम्भावना नहीं।

क्षिति ने व्योम की लाठी उठा ली और उसे बड़े ध्यान से देखने लगी। इसके बाद उसने कहा—व्योम, तुम्हारी यह गदा कमेडी का विषय है या ट्रेजेडी का सामान?

कौतुक-हास्य की मात्रा

उस दिन की डायरी में मैंने कौतुक-हास्य के विषय में अपना मत लिखा था। उसको पढ़कर श्रीमती दीप्ति ने मुझको लिख भेजा है—"एक दिन सबेरे नदी और हम दोनों मिलकर हँसती थीं। धन्य है वह प्रातःकाल और हम दोनों सखियों का हँसना! सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक कितनी ही स्त्रियों ने इस प्रकार की चपलता दिखाई है और इतिहास में भी उसका भला-बुरा फल चिरस्थायी होगया है। हो सकता है कि स्त्रियाँ बिना कारण ही हँसती हों परन्तु उनका हँसना मन्दाक्रान्ता, उपेन्द्रवज्रा, शार्दूल-विक्रीड़ित, त्रिपदी, चतुष्पदी आदि छन्दों का कारण है, ऐसा लोगों से सुना गया है। स्त्रियों का स्वभाव चञ्चल है इस कारण वे बिना

कारण के ही हँसती हैं, और दूर से इस बात को देखकर बहुत से पुरुष व्यर्थ रोते हैं, बहुत से पुरुष तुक मिलाते हैं और कितने ही तो गले में रस्सी बाँध कर मर जाते हैं। अब की बार एक और नई बात देखली। वह यह कि स्त्रियों की हँसी देखकर कितने ही निपुण दार्शनिकों के मस्तिष्क में नये नये दर्शन-सिद्धान्त उत्पन्न होते हैं। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि तत्त्व-निर्णय करनेवालों की अपेक्षा पहले के तीन मनुष्य हमारी सम्मति से अच्छे हैं।"

उस दिन हास्य के विषय में हम लोगों ने जो सिद्धान्त निश्चित किया था उसको श्रीमती दीप्ति ने अपनी पूर्वोक्त बातों से अप्रमाणित सिद्ध किया है।

इस विषय में हमारी पहली बात यह है कि उस दिन के तत्त्व-विचार में हम लोगों ने प्रबल युक्तियों का प्रयोग नहीं किया, इस कारण दीप्ति का हम लोगों पर आक्षेप करना अयोग्य है। क्योंकि स्त्रियों के हँसने से इस संसार में जितने अनर्थ होते हैं उन अनर्थों में बुद्धिमानों का बुद्धि-नाश भी एक अनर्थ है। जिस समय हम लोग इस दार्शनिक तत्त्व का विचार करते थे उस समय हमारी अवस्था ही ऐसी होगई थी। यदि उस समय हम कविता लिखना चाहते तो लिख भी सकते, और गले में फाँसी भी डाल सकते।

दूसरी बात यह है कि उनके हँसने में से हम लोग अनुसन्धान के द्वारा तत्व निश्चित करेंगे, इस बात की कल्पना उन लोगों ने जिस प्रकार नहीं की थी उसी प्रकार हम लोगों ने भी तो यह कल्पना नहीं की थी कि हमारे तत्व में से वे युक्तियाँ ढूँढ़ निकालेंगी।

न्यूटन अपनी ज़िन्दगी भर तत्वान्वेषण करते रहे, और अन्त में उन्होंने कहा—"हम अभी तक ज्ञान-सागर के किनारे केवल कंकड़ चुनते रहे।" हम चार बुद्धिमान् एक क्षण की बातचीत से कंकड़ चुनने की भी कल्पना नहीं कर सकते,—हम लोग यदि कुछ करते थे तो केवल यही कि बालू का घर बनाना चाहते थे। इस खेल के मिस से ज्ञान-समुद्र की ओर थोड़ी दूर जाना और वहाँ की हवा खा आना ही हम लोगों का उद्देश्य था। हम लोग ज्ञान-समुद्र से कोई रत्न नहीं उठा लाये हैं; किन्तु स्वास्थ्यप्रद वायु का सेवन वहाँ अवश्य कर आये हैं। तदनन्तर वहाँ का बालू का घर टूट जाता है या रहता है, इससे हम लोगों का कुछ हानि-लाभ नहीं है।

रत्न की अपेक्षा स्वास्थ्य का मूल्य कम है, इस बात को हम नहीं मानते। रत्नों में प्रायः बहुत से रत्न खोटे हो जाते हैं, परन्तु स्वास्थ्य सदा स्वास्थ्य ही रहता है, उसका कोई दूसरा नाम नहीं होता। हम लोग पाञ्चभौतिक सभा के पाँच सदस्य मिलकर अभी तक सामान्य सिद्धान्त भी संग्रह कर सके हैं कि नहीं, इस विषय में हम लोगों को सन्देह है। परन्तु जितनी बार हम लोगों की सभा के अधिवेशन हुए हैं, हम लोगों को वहाँ से ख़ाली हाथों लौटना पड़ा है; तथापि उतनी ही बार हम लोगों के हृदय में बड़े वेग से रक्त का प्रवाह बहा है; हम लोगों ने नीरोगता प्राप्त की है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं।

क़िले के मैदान में एक छटाँक भी अन्न उत्पन्न नहीं होता किन्तु इससे वह अनावश्यक भी नहीं कहा जा सकता। हम लोगों की

पाञ्चभौतिक सभा भी हम पाँच आदमियों का "क़िले का मैदान" है। यहाँ हम लोग सत्यरूपी अन्न की फ़सल के लिए नहीं आते किन्तु सत्य का आनन्द लेने आते हैं। अतएव इस सभा में यदि किसी बात की पूरी पूरी मीमांसा न हो तो भी कोई हानि नहीं। सत्य का कुछ भाग पाजाना ही हम लोगों के लिए यथेष्ट है। सत्य के खेत को हम जोत नहीं सकते तो न सही, यदि वहाँ से हम लोग एक बार निकल जायँ तो भी हमारा इष्ट सिद्ध हो जायगा।

एक प्रकार का उदाहरण और देने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। रोग के समय डाक्टर की दवा से उपकार होता है परन्तु उस समय अपने आत्मीय जनों की सेवा-शुश्रूषा से बड़ा आनन्द मिलता है। जर्मन पण्डितों ने जो पुस्तकें लिखी हैं वे तत्वज्ञान के अन्तिम सिद्धान्त कही जा सकती हैं, परन्तु उनसे मन को आनन्द नहीं मिलता। वे पुस्तकें मन की सेवा नहीं करतीं अतएव वे औषध की वटिका कही जा सकती हैं। पाञ्चभौतिक सभा में हम लोग जिस प्रकार आलोचना करते हैं, उसको रोग की चिकित्सा कहना ठीक नहीं; उसको तो रोगी की शुश्रूपा कहनी चाहिए।

अब और अधिक उदाहरण देना निरर्थक है। मुख्य बात यह है कि उस दिन हम चार जनों ने मिल कर हँसी के विषय में जो बातें की थीं उनमें कोई एक बात भी अन्तिम बात नहीं कही जा सकती। यदि हम लोग अन्तिम सिद्धान्त पर पहुँचने का प्रयत्न करते तो उससे सभा का प्रधान नियम भङ्ग हो जाता। वैसा करने के लिए कथोपकथन-सभा का नियम डाँकना पडता।

कथोपकथन-सभा का एक प्रधान नियम यह है कि बिना ही परिश्रम के बड़े वेग से आगे बढ़ो अर्थात् मानसिक दौड़ लगाओ। यदि हम लोगों के पैर समतल न होते, किन्तु सुई की नोक के समान तीक्ष्ण होते तो अवश्य ही हम लोगों को बहुत दूर तक तह में घुस जाने का सुभीता होता परन्तु हम लोग आगे एक पैर भी नहीं बढ़ सकते। कथोपकथन-सभा में यदि हम लोग किसी एक बात को लेकर उसके अन्तिम सिद्धान्त तक पहुँचने का प्रयत्न करें तो केवल उसी स्थान पर अटक जाना पड़ेगा; वहाँ से एक पैर भी आगे बढ़ने का उपाय न रहेगा। कभी कभी ऐसा होता है कि मनुष्य चला जा रहा है, सहसा वह कीचड़ में गिर गया; वह अब वहीं फँसा है, उसका आगे एक पैर बढ़ना भी कठिन है। बेचारे के लिए चलना गले पड़ जाता है। ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनमें, विचार करने पर, बहुत दूर तक घुसना पड़ता है। बात-चीत के समय उन अनिश्चित और सन्दिग्ध बातों का विचार करना आवश्यक नहीं है। यह सब भूमि सन्ध्या-भ्रमण करनेवालों के लिए उपयोगी नहीं है, किन्तु जो किसान हैं और कृषि के द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करना चाहते हैं उनके योग्य है।

अस्तु, उस दिन प्रधानतया यही विचार हो रहा था कि जिस प्रकार मनुष्य दुःख से रोता है उसी प्रकार वह सुख से हँसता है। परन्तु इसी विचार में कौतुक की हँसी की बात न जानें कहाँ से बीच में उठ खड़ी हुई। कौतुक नाम की वस्तु रहस्यमय है। पशु भी सुख-दुःख का अनुभव करते हैं परन्तु उनमें कौतुक का अनुभव करने की शक्ति नहीं है। अलङ्कारशास्त्र में जिन रसों का वर्णन है वे प्रायः

सभी रस पशुओं के अव्यक्त और अपरिस्फुट साहित्य में वर्तमान हैं, परन्तु उनके साहित्य में हास्य-रस नहीं है। कदाचित् वानर की प्रकृति में इस हास्य-रस का कुछ परिचय पाया जाता है। वानरों और मनुष्यों की प्रकृति बहुत सी बातों में समान है।

जो बात असङ्गत है, उससे मनुष्य को दुखी होना चाहिए था; उससे हँसी आने का तो कुछ कारण नहीं है। कुरसी नहीं है, परन्तु कुरसी रक्खी हुई समझ कर यदि कोई बैठने लगे और भूमि पर गिर जाय तो इससे दर्शकों के सुखी होने का क्या कारण है? इसका यह एक ही उदाहरण नहीं है किन्तु समस्त कौतुकों से मनुष्य को दुखी होना चाहिए।

उस दिन की बातचीत में हम लोगों ने इसका एक कारण निश्चित किया था। उस दिन हम लोगों ने कहा था कि कौतुक की हँसी और आमोद की हँसी दोनों एक ही प्रकार की हैं। इन दोनों प्रकार की हँसिओं में एक प्रबलता रहती है। अतएव हम लोगों को यह संदेह होगया था कि आमोद और कौतुक, दोनों पदार्थ, एक ही हैं—इनकी प्रकृति समान है। उस प्रकृति का निर्णय हो जाने से कौतुक के रहस्य का भी बहुत कुछ भेद खुल जायगा।

हम लोगों के साधारण सुख में थोड़ा सा भेद है। किसी नियम को भङ्ग करने से जो थोड़ा सा दुःख होता है वह यदि न हो तो आमोद नहीं हो सकता। आमोद नित्य-नैमित्तिक नियमों के पालन से नहीं होता। वह तो कभी कभी होता है। उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। उस पीड़न और प्रयास के सङ्घर्ष से मनुष्यों के मन में जो उत्तेजना होती है, उसी से आमोद उत्पन्न होता है।

हम लोगों ने कहा था कि कौतुक में भी नियम पालन न करने की एक पीड़ा वर्त्तमान है। वह आघात यदि अधिक मात्रा में न हो तो उससे मन में एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है और उसी आकस्मिक उत्तेजना के धक्के से मनुष्यों को हँसना पड़ता है। जो सुसङ्गत उचित है वह सदा से नियमित है और असङ्गत थोड़ी देर के लिए, नियम भङ्ग करने से, उत्पन्न होता है। जिस काम के होने का जो स्थान और समय नियत है उसके उसी प्रकार होने पर हम लोगों के मन में किसी प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न नहीं होती। जो बात कभी नहीं हुई है अथवा जिसे हम लोगों ने पहले नहीं देखा है उसके सहसा देखने पर मन में एक विलक्षण आघात लगता है, जिससे हम लोगों की चेतनता जाग उठती है और हम लोग हँस पड़ते हैं।

उस दिन हम लोगों ने यहीं तक विचार किया था। इससे अधिक और कोई बात उस दिन नहीं हुई, परन्तु इस कारण ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इसके आगे कोई बात कही ही नहीं जा सकती। कहने को और भी बहुत बातें हैं।

श्रीमती दीप्ति ने पूछा है कि हम चार पण्डितों का सिद्धान्त यदि सत्य है तो मार्ग में चलते चलते ठोकर लग जाने से अथवा कहीं से दुर्गन्धि आने से भी हम लोगों को हँसना चाहिए। और जो हँसी न आवे तो, कम से कम, उत्तेजना से उत्पन्न सुख का अवश्य अनुभव करना चाहिए।

इस प्रश्न के द्वारा हम लोगों का सिद्धान्त खण्डित नहीं होता किन्तु वह थोड़ा संकुचित हो जाता है। इस प्रश्न के द्वारा हम

लोगों के सिद्धान्त की केवल सीमा नियत हो जाती है। इस प्रश्न से यह बात मालूम हुई कि सारे आघात कौतुक-प्रद उत्तेजना उत्पन्न नहीं करते, अतएव अब इस बात पर विचार करना चाहिए कि किस प्रकार के आघात से कौतुक-जनक उत्तेजना उत्पन्न होती है।

जड़-प्रकृति में करुण-रस और हास्य-रस नहीं है। जिस समय एक पत्थर दूसरे पत्थर से टकराता है उस समय न तो हम लोगों को करुणा होती है और न हम लोग रोते ही हैं। मैदान में जा रहे हैं, वहाँ एकाएक अपने समूह से बिछड़ा हुआ पत्थर दीख पड़ा, परन्तु किसी को भी हँसी नहीं आई। नदी, सोते, पर्वत आदि में भी कहीं कहीं विचित्रता दीख पड़ती है। इनसे इन्द्रियों को आघात पहुँचता है और पीड़ा भी होती है। पर ये आघात कौतुक-जनक नहीं हैं। सचेतन पदार्थों की विलक्षणता देखने से ही मनुष्यों को हँसी आती है।

इसका ठीक ठीक कारण बतलाना कठिन है, तथापि इसके कारण का अनुसन्धान करना कोई दोष की बात नहीं।

हमारी भाषा में कौतुक और कौतूहल, दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग होता है। संस्कृत साहित्य में भी ये दोनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। कभी कौतुक शब्द के स्थान पर कौतूहल शब्द और कभी कौतूहल शब्द की जगह पर कौतुक शब्द का प्रयोग होता है। अतएव यह बात अनुमान से जानी जाती है कि इन दोनों शब्दों में परस्पर सम्बन्ध है।

कौतूहल का प्रधान भाग है नवीन वस्तु देखने की लालसा, और कौतुक की भी प्रधान सामग्री नवीनता है। विरुद्ध, असङ्गत

वस्तुओं में जैसी एक प्रकार की नवीनता है वैसी नवीनता सङ्गत—अविरुद्ध—पदार्थों में नहीं देखी जाती।

प्रकृत असङ्गति या विरोध का सम्बन्ध इच्छा-शक्ति के साथ है। जड़-पदार्थों से उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं। हम मार्ग में जा रहे हैं। उस समय कहीं से दुर्गन्धि आई। हमने निश्चय किया कि यहाँ पास ही कहीं कोई सड़ी गली वस्तु पड़ी है इसी कारण ऐसा हो रहा है। इसमें किसी प्रकार भी नियम का विरोध नहीं है। यह तो अवश्य होना ही था। जिन कारणों से जड़-प्रकृति के जो कार्य होते हैं वे उसी प्रकार होंगे।

यदि हम मार्ग में जाते जाते किसी मान्य और प्रभावशाली वृद्ध को नाचते देखते हैं तो उस समय यह बात विपरीत मालूम होती है। क्योंकि वैसा होना अनिवार्य नियम के अधीन नहीं है। माननीय वृद्धों का आचरण इस प्रकार का होगा, इसकी आशा हम लोग कभी नहीं करते। मनुष्य में इच्छा-शक्ति वर्त्तमान है, इस कारण वह यदि चाहे तो नाच सकता है और न चाहे तो नहीं। परन्तु जड़-पदार्थ अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी नहीं कर सकते। अतएव उनकी चाहे जैसी स्थिति हो परन्तु वे असङ्गत या कौतुकावह नहीं हैं। इसी तरह सहसा ठोकर लगना और दुर्गन्ध का आना आदि कार्य हास्य-जनक नहीं हैं। चाय का चम्मच यदि चाय के प्याले से बिछलकर स्याही में गिर पड़े तो इससे किसी को हँसी नहीं आती। भार-आकर्षण-नियम को वश करना चम्मच की शक्ति के बाहर की बात है। पर यदि कोई अन्यमनस्क लेखक चाय का चम्मच स्याही से भर कर चाय पीने की मुद्रा बनावे तो यह

अवश्य ही कौतुक की बात है। यह देख कर सभी हँसने लगते हैं। जैसे जड़ पदार्थों में धर्म नहीं है वैसे उनमें असङ्गति भी नहीं है। जिसके मन है, जिसको मन के द्वारा भेद-ज्ञान होगया है उसे ही उचित-अनुचित और सङ्गत-असङ्गत आदि का ज्ञान होता है।

कौतूहल नामक पदार्थ प्रायः निठुरता के रूप में परिणत होता है, और कौतुक में भी निठुरता वर्तमान है। कहते हैं कि सिराजुद्दौला दो मनुष्यों की दाढ़ी परस्पर बँधवा दिया करता और उनकी नाक में नास भरवा देता था। जब वे छींकने लगते थे तब सिराजुद्दौला प्रसन्न होता और हँसता था। परन्तु इसमें असङ्गति कहाँ है? नाक में हुलास पड़ने पर तो सभी छींकते हैं। यह तो स्वाभाविक बात है। परन्तु यहाँ भी इच्छा और कार्य में विरोध है। जिनकी नाक में सुँघनी भरी गई है उनकी इच्छा नहीं कि वे छींकें, क्योंकि वे जानते हैं कि छींकने से दाढ़ी पर ज़ोर से झटका लगेगा और इससे उनको कष्ट उठाना पड़ेगा, तथापि उनको छींकना पड़ता ही है।

इसी प्रकार इच्छा के साथ अवस्था की, उद्देश्य के साथ उपाय की और बातों के साथ कार्य की असङ्गति होती है तथा इनमें निष्ठुरता भी वर्तमान रहती है। प्रायः जिसको देख कर हम लोग हँसने लगते हैं, वास्तव में वह अपनी अवस्था को हँसने के योग्य नहीं समझता। इसी कारण पाञ्चभौतिक सभा में व्योम ने कहा है कि कमेडी और ट्रेजेडी दोनों केवल पीड़न के मात्रा-भेद हैं। एक में साधारण निष्ठुरता प्रकट होती है जिससे हम लोग हँसने लगते हैं और दूसरे में अधिक निष्ठुरता प्रकाशित होती है जिसके कारण हम लोग फूट फूट कर रोते हैं।

अधिक निष्ठुरता और साधारण निष्ठुरता दोनों में ही असङ्गति होती है। साधारण निष्ठुरता में भी अवस्था और इच्छा की असङ्गति देखी जाती है। फ़ालस्टाफ़ विण्डसर-वासिनी नटी के प्रेम से व्याकुल हो विश्वास-पूर्वक आगे बढ़ा परन्तु बेहद फ़ज़ीहत उठाकर उसे पीछे लौट आना पड़ा। रामचन्द्र रावण को मार कर और अपने वनवास की प्रतिज्ञा पूरी करके अपनी राजधानी में लौट आये। अब उनके दाम्पत्य-सुख भोगने का बहुत ही अनुकूल समय है। परन्तु इसी समय न मालूम कहाँ से बिना मेघ के वज्रपात हुआ। गर्भवती सीता को वन में निर्वासित करने के लिए रामचन्द्र को बाध्य होना पड़ा। इन दोनों स्थानों में आशा से फल की और इच्छा से अवस्था की असंगति प्रकाशित हुई है। अतएव यह बात अब साहस-पूर्वक कही जा सकती है कि असङ्गति दो प्रकार की होती है। एक असङ्गति हास्य-जनक है और दूसरी दुःख-जनक। विरक्ति, विस्मय, क्रोध आदि उत्पन्न करनेवाली असङ्गति भी इसी दुःख-जनक असङ्गति की श्रेणी में है।

अर्थात् जो असङ्गति हम लोगों के मन के बाहरी भाग में आघात करती है उससे कौतुक उत्पन्न होता है और जो असङ्गति मन के भीतर आघात करती है उससे दुःख उत्पन्न होता है। शिकारी जब किसी श्वेत पदार्थ को दूर से देखता है तब उसे हंस समझ कर उसको अपना लक्ष्य बनाता है। उसने फ़ौरन् गोली चला दी और जब वह उसके पास गया तो देखता क्या है कि यह हंस नहीं, यह तो श्वेत वस्त्र का टुकड़ा है। उस समय उसका नैराश्य देख कर हम लोग हँसने लगते हैं। परन्तु जो मनुष्य किसी पदार्थ को

पाना अपने जीवन का लक्ष्य समझता है तथा अनेक प्रयत्न और बड़ी सावधानी से उसको पाने के लिए अपने समस्त जीवन में उद्योग करता रहता है और कार्य सिद्ध होने पर जब उसे मालूम हुआ कि जिस पदार्थ के लिए हम इतने दिनों से परिश्रम करते थे वह एक तुच्छ पदार्थ है, तब उसके हृदय की कैसी दशा होती है! उस समय की उसकी निराशा से हमारा हृदय दुःखित हो जाता है।

इसका सारांश यह है कि असङ्गति ही अवस्था-भेद से विस्मय का रूप धारण करती है, और वही विस्मय से आगे बढ़कर हास्य के रूप में परिणत होती है, तदनन्तर हास्य से भी आगे जाकर रोदन के रूप में परिणत हो जाती है।

सुन्दरता के विषय में सन्तोष।

दीप्ति और नदी दोनों अभी नहीं आई हैं, केवल हमीं चार जने उपस्थित हैं।

वायु ने कहा—उस दिन के कौतुक-हास्य के सम्बन्ध में एक बात हमारे हृदय में उत्पन्न हुई है। वह यह कि अधिकांश कौतुक के द्वारा हम लोगों के हृदय में एक अद्भुत चित्र खिंच जाता है। और, उसी के कारण हम लोग हँसते हैं। परन्तु जो उस अद्भुत चित्र को नहीं देख सकते, जिनकी बुद्धि अबस्ट्रैक्ट विषयों के ही चक्कर काट रही है उनके हृदय पर कौतुक का कुछ भी असर नहीं पड़ता।

क्षिति ने कहा—पहले तो तुम्हारी बात ही समझ में नहीं आई; और दूसरे यह अबस्ट्रैक्ट शब्द अँगरेज़ी का है।

वायु ने कहा—मैं अपने पहले अपराध को दूर करने का तो प्रयत्न करता हूँ परन्तु दूसरे अपराध से छुटकारा पाने के लिए मुझे कोई उपाय नहीं देख पड़ता। अतएव मेरी प्रार्थना है कि मेरा दूसरा अपराध विद्वज्जन अपनी उदारता से क्षमा करें। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जो पदार्थों की ओर ध्यान न देकर केवल पदार्थों के गुणों को ही ग्रहण करते हैं उनपर हास्य-रस का असर नहीं पड़ सकता। वे हास्य-रस के रसिक नहीं हैं।

क्षिति ने कहा—नहीं नहीं, अभी और स्पष्ट करके कहो।

वायु ने कहा—मैं एक उदाहरण देता हूँ। देखो, हमें साहित्य में किसी सुन्दरी का वर्णन करना है तो किसी व्यक्ति का चित्र अङ्कित करने के लिए प्रयत्न नहीं किया जाता; किन्तु सुमेरु, अनार, कदम्ब, विम्ब आदि के गुणों की एक सूची बना कर रख दी जाती है, और इस सूची का सम्बन्ध समस्त स्त्री-जाति के साथ कराया जाता है। चाहे किसी भी सुन्दरी का वर्णन करना हो, उसके स्थान पर यही सूची उठा कर रख दी जाती है। अतएव चित्र के समान हम कोई बात स्पष्ट नहीं देख सकते और न हम लोग स्वयं ही चित्र बना सकते हैं। इसलिए कौतुक के एक प्रधान अङ्ग से हम लोग वञ्चित रह जाते हैं। हम लोगों के प्राचीन काव्यों में प्रशंसा के व्याज से गजेन्द्र की गति के साथ स्त्रियों के चलने की तुलना की गई है। यह तुलना दूसरे देशों के काव्यों में उपहासास्पद समझी जायगी। परन्तु प्रश्न यह है कि हम लोगों के देश में ऐसी तुलना कैसे उत्पन्न हुई और सर्वसाधारण में इसका प्रचार ही क्योंकर हुआ? इसका कारण यह है कि हमारे देश में पदार्थ से उसके गुण अना-

यास ही अलग किये जा सकते हैं। जब इच्छा हुई, समूचे हाथी को अलग कर दिया और उसके मन्द गमन को अलग। अतएव प्राचीन कवि जब षोडशी सुन्दरी की गति में गजेन्द्र-गति का आरोप करते थे उस समय उनके सामने हाथी नहीं रहता था; वे तो उसका मन्दगमन ही देखते थे। कवि जब किसी सुन्दर पदार्थ का वर्णन करना चाहता है उस समय उसके लिए आवश्यक है कि वह एक सुन्दर उपमा भी ढूँढ़े, क्योंकि उपमा का केवल सादृश्य अंश ही हम लोगों के हृदय में प्रतिफलित नहीं होता; किन्तु उस वस्तु के अन्यान्य अंश भी हम लोगों के हृदय में अवश्य प्रतिफलित होते हैं। अतएव हाथी की सूँड़ के साथ स्त्रियों के हाथ-पैरों की तुलना करना बड़े ही दुःसाहस की बात है। पर हमारे देश के पाठकों ने न तो इस तुलना को हास्यास्पद समझा और न निन्दित ही। इसका कारण यह है कि हमारे देश के पाठक हाथी की सूँड़ की केवल गोलाई ही ग्रहण कर लेंगे तथा उसका और अंश छोड़ देंगे। इसी विलक्षण शक्ति के कारण इस देश के पाठकों ने उस तुलना को हेय नहीं समझा। गिद्धिन के साथ कानों का क्या सादृश्य है, यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। हम में तद-नुरूप कल्पना-शक्ति नहीं है। पर जब सोचते हैं कि सुन्दर मुँह के दोनों ओर दो गिद्धिनें लटक रही हैं, तब हँसी नहीं आती, क्योंकि हम लोगों की कल्पना-शक्ति इतनी तुच्छ भी नहीं है। मालूम होता है, नई शिक्षा के कारण हँसी रोकने की हम लोगों की शक्ति विकृत होती जाती है। इसी से ऐसा हो जाया करता है।

क्षिति ने कहा—हमारे देश के काव्यों में जहाँ स्त्री की देह का वर्णन हुआ है वहाँ उसकी ऊँचाई और गोलाई बतलाने के लिए हमारे कवियों ने झट सुमेरु और पृथिवी का आह्वान किया है। इसका कारण यह है कि अवस्ट्रैक् के देश में परिमाण-विचार की आवश्यकता नहीं समझी जाती। बैल का कन्धा ऊँचा होता है और प्रसिद्ध शिखर काञ्चनजङ्घा भी ऊँचा है। अतएव पदार्थ को छोड़ कर केवल गुण की दृष्टि से बैल के कन्धे (डील) के साथ काञ्चन-जङ्घा की भी तुलना की जा सकती है। परन्तु जो अभागा काञ्चन-जङ्घा की उपमा सुन कर अपने कल्पना-पट पर हिमालय के शिखर को अङ्कित देखता है, और जो बेचारा पर्वत-शिखर से उसकी ऊँचाई अलगा कर निरी ऊँचाई देखने की शक्ति नहीं रखता उसके लिए यह बात निस्सन्देह बड़ी ही कठिन होगी। भैया, आज की तुम्हारी यह बात हृदय में ठीक ठीक बैठ गई है अतएव इसका मैं विरोध नहीं कर सकती, इसका मुझे बड़ा दुःख है।

व्योम ने कहा—यह कैसे कह दूँ कि विरोध करने की कोई बात नहीं है। वायु को अपना मत दूसरे रूप में प्रकट करना चाहिए। सच्ची बात तो यह है कि हम लोग अन्तर्जगत् के प्राणी हैं, हम लोगों के लिए बाह्यजगत् कुछ विशेष आवश्यक नहीं है। हम लोग अपने मन में जो विचार करते हैं, जो नई बात निश्चित करते हैं, उसका विरोध यदि बाह्य-जगत् करे तो उसका प्रभाव हम लोगों पर नहीं पड़ता। हम लोग उसके विरोध को मानते ही नहीं। जिस प्रकार धूमकेतु की पूँछ किसी ग्रह की कक्षा में आ जाय तो इससे ग्रह की कोई भी क्षति नहीं होती किन्तु

क्षति होती है उसी धूमकेतु की, इसी प्रकार अन्तर्जगत् से बाह्य-जगत् का कभी यथारीति संघर्ष नहीं होता। यदि कभी हो भी जाय तो उसमें बाह्यजगत् को ही हटना पड़ेगा। जो लोग हाथी को अत्यन्त सत्य समझते हैं, जिनके सामने हाथी की सत्यता बड़ी प्रबलता से घूम रही है, वे गजेन्द्र-गमन की उपमा में गजेन्द्र को अलग रख कर केवल उसके गमन का ही ग्रहण नहीं कर सकते। गजेन्द्र अपने विशाल शरीर को लिये अटल रूप से काव्य-मार्ग में जाकर अड़ जाता है। परन्तु हम लोगों के लिए चाहे गज हो या गजेन्द्र, किसी की कुछ भी सत्ता नहीं है। गज हम लोगों के सामने इतनी प्रबलता से नहीं खड़ा रहता कि केवल उसके गमन के लिए उस समूचे को भी स्मरण रखना पड़े।

क्षिति ने कहा—हम लोग अपने हृदय में एक बाँस का क़िला सा बनाते हैं। उसीमें हम लोगों का अन्तर्जगत् सुरक्षित रहता है। अतएव गजेन्द्र हो, सुमेरु हो अथवा पृथिवी, कोई भी हम लोगों के हृदय में स्थान नहीं पा सकता। यह बात केवल काव्य ही के लिए नहीं है, किन्तु ज्ञान-राज्य में भी हम लोग बाह्य-जगत् को तनिक भी स्थान नहीं देते। इसका मैं एक सीधा सादा उदाहरण आप लोगों को सुनाती हूँ। हम लोगों के गाने में सात सुर हैं। वे भिन्न भिन्न पशु-पक्षी आदि के कण्ठस्वरों से लिये गये हैं। हम लोगों के सङ्गीत के विषय में यह बात बहुत दिनों से कही जाती है। परन्तु हमारी सङ्गीत-विद्या के उस्तादों के मन में अभी तक इस विषय में कोई सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ। यद्यपि बाह्य-जगत् एक स्वर से इसका प्रतिवाद करता है, परन्तु हम लोग उधर ध्यान

नहीं देते। सा-रे-ग-म का पहला सुर गधे के सुर से लिया गया है, ऐसी अद्भुत-कल्पना किसी स्वरज्ञाता के मन में उत्पन्न हो किस प्रकार हुई, इसका निश्चय करना हमारे लिए बहुत ही कठिन है।

व्योम ने कहा—ग्रीक लोग इस बाह्य-जगत् को भाप या मरीचिका के समान नहीं समझते थे। उनकी समझ में बाह्य-जगत् प्रत्यक्ष प्रकाशमान था। इसलिए वे मानसिक सृष्टि से बाह्य-सृष्टि का मिलान करने के लिए विशेष सावधान रहते थे। यदि वे किसी विषय में परिमाण को डाँक जाते तो बाह्य-जगत् के सामने उनको लज्जित होना पड़ता था। अतः उन लोगों ने अपने देवी-देवता आदि की मूर्त्तियाँ सुन्दर बनवाई हैं। उनकी मानसिक सृष्टि पर बाह्य-जगत् की प्रबल छाया पड़ी है जिससे उनकी भक्ति और आनन्द में कोई न्यूनता नहीं होती। हम लोगों का सिद्धान्त वैसा नहीं है। हम लोग अपने देवता की चाहे जैसी मूर्त्ति बनावें परन्तु हमारी कल्पना के साथ बाह्य-जगत् का कोई भी विरोध नहीं रहता। मूषक-वाहन चतुर्भुज एकदन्त लम्बोदर गणेश की मूर्त्ति हमारे लिए हास्यास्पद नहीं। क्योंकि हम लोग उस मूर्त्ति की उपासना अपने हृदय में ही करते हैं; बाहरी बातों से,—जगत् की सच बातों से—मूर्त्तियों की तुलना करना हम लोग ठीक नहीं समझते। क्योंकि हम लोगों की दृष्टि में बाह्य-जगत् की सत्यता नहीं है, प्रत्यक्ष-सत्य पर हम लोगों का विश्वास नहीं है। हम लोग किसी एक पदार्थ का अवलम्बन करके अपने मानसिक भावों को सदा जागृत रखते हैं।

वायु ने कहा—जिसके आधार से हम लोग प्रेम या भक्ति का उपभोग करते हैं अथवा साधना करते हैं वह अवलम्बन सम्पूर्ण और स्वाभाविक भी हो, इस बात पर ध्यान देना हम आवश्यक नहीं समझते। हम लोग सामने एक मूर्त्ति कुरूप भी देखें तो भी उसको सुन्दर समझते हैं। मनुष्य की श्याम छवि हम लोगों के हृदय को विशेष रूप से आनन्दित नहीं कर सकती, परन्तु उसी श्याम छवि से अङ्कित कृष्ण की मूर्त्ति देख कर हम लोग गद्‌गद हो जाते हैं। वाह्यजगत् के आदर्श को जो अपनी इच्छा के अनुसार नहीं बदल सकते, उसमें कुछ फेरफार नहीं कर सकते, वे जब अपने मानसिक सुन्दर भाव को मूर्त्ति का रूप देने लगते हैं उस समय वे उस मूर्त्ति में अस्वाभाविकता अथवा कुरूपता नहीं रहने देते। ग्रीकों की नज़र को (कृष्ण का) साँवला सलोना रङ्ग बराबर खटकता।

व्योम ने कहा—हम भारतवासियों की इस प्रकृतिगत विशेषता के कारण, सम्भव है, उच्च कोटि की कलाविद्या की उन्नति में बाधा उत्पन्न हुई हो, परन्तु इससे कुछ फल भी हुआ है। हम लोगों को प्रेम-स्नेह और सौन्दर्य के उपभोग के लिए किसी बाहरी पदार्थ का मुखापेक्षी नहीं होना पड़ता, सुभीते-सुयोग आदि की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। हमारे देश की स्त्रियाँ अपने पति को देवता समझ कर उनकी पूजा करती हैं। परन्तु भक्ति की जाने के लिए पति में देवभाव या महत्व आदि का वर्तमान रहना स्त्रियाँ आवश्यक नहीं समझतीं; पति पशु के समान ही क्यों न हो तथापि उसकी पूजा में किसी प्रकार की त्रुटि न होगी। यहाँ की

स्त्रियाँ अपने पति को मनुष्य समझ कर उसका तिरस्कार भी कर सकती हैं और दूसरी ओर उसको देवता समझ कर पूजती भी हैं। ये दोनों भाव समान रूप से चलते हैं। एक के कारण दूसरे में कोई भी बाधा नहीं आती। क्योंकि हम लोगों के मानसिक जगत् के साथ वाह्य-जगत् का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

वायु ने कहा—एक पति-देवता ही क्यों, बल्कि पौराणिक देव-देवियों के विषय में भी हमारे दो प्रकार के भाव हैं। ये दोनों भाव भी परस्पर एक दूसरे को बाधा नहीं देते। हम लोगों के देवताओं के विषय में जो जनश्रुतियाँ और शास्त्र-कथाएँ प्रसिद्ध हैं वे हमारे उच्च धार्मिक आदर्श के योग्य नहीं। हम लोगों के साहित्य और सङ्गीत में देवताओं की निन्दा लिखकर उनका तिरस्कार और उपहास भी किया गया है, परन्तु इस कारण देवताओं की भक्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती। गाय को हम लोग पशु ही समझते हैं, समय समय पर उसकी निर्बुद्धिता का उपहास भी करते हैं, यदि वह खेत में जाय तो उसे लाठी से मार कर निकाल भी देते हैं और कीचड़-गोबर में भी उसको रखते हैं, परन्तु जब हम उसे भगवती कहते हैं, जब गऊ-माता कहकर उसकी पूजा करने लगते हैं, उस समय इन सब बातों को हम भूल जाते हैं—इधर हमारा ध्यान भी नहीं जाता।

क्षिति ने कहा—और देखो, जिसे गाना नहीं आता, जिसका गाना बेसुरा है उसकी तुलना हम लोग गधे से करते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि हम लोगों के गान का पहला सुर गधे के सुर से लिया गया है। जब हम इस बात को कहते हैं तब

उस बात को भूल जाते हैं और जब उस बात को कहते हैं तब इस बात को । यह हम लोगों की एक बहुत बड़ी शक्ति है, इसमें सन्देह नहीं । परन्तु इस शक्ति के कारण व्योम ने जिस सुभीते का उल्लेख किया है उसको मैं सुभीता नहीं समझती । हम लोगों में काल्पनिक सृष्टि करने की शक्ति है इस कारण अर्थ-लाभ, ज्ञान-लाभ तथा सौन्दर्योपभोग के विषय में हम लोग उदासीन रहते हैं, इनकी ओर से सन्तुष्ट रहना ही हम लोग विशेष उचित समझते हैं । हम लोगों को किसी भी बात की आवश्यकता नहीं है । यूरोपीय विद्वानों का ढङ्ग ठीक हमसे उलटा है । वे अपने वैज्ञानिक अनुमान को हज़ारों बार अनेक प्रकार की परीक्षाओं के द्वारा प्रमाणित करते हैं तथापि उनको सन्देह बना ही रहता है । हम लोगों के हृदय में यदि कोई एक उत्तम और सुमङ्गत सिद्धान्त उत्पन्न हो तो हम लोग उस सिद्धान्त की उत्तमता और सुसङ्गति देखने में ही लट्टू हो जाते हैं, बाह्य-जगत् में उसकी परीक्षा करना आवश्यक नहीं समझते । ज्ञान-लाभ के विषय में जो बातें हैं वे ही हृदय की वृत्तियों के लिए भी हैं । हम सौन्दर्य का विचार करना चाहते हैं, परन्तु उसके लिए अपने मानसिक भावों को बाहर अङ्कित करना उचित नहीं समझते, किन्तु जो कुछ हो उसीमें सन्तुष्ट हो जाते हैं । यहाँ तक कि आलङ्कारिक अत्युक्ति को सत्य मान कर उसी के अनुसार हम लोग एक मूर्त्ति गढ़ लेते हैं और उसी असङ्गत विरूप तथा काल्पनिक मूर्त्ति को अपनी इच्छा के अनुसार परिणत करके तृप्त हो जाते हैं किन्तु अपने देवता को, अपने हृदय के आदर्श को सुन्दर बनाने के लिए प्रयत्न नहीं करते । हम भक्ति करना चाहते हैं

परन्तु यथार्थ भक्ति-भाजन को ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं समझते। अपात्र की भक्ति करते हैं और उसीसे हम सन्तुष्ट रहते हैं। अतएव हम लोग कहते हैं कि हमारे गुरु पूज्य हैं; हम लोग यह नहीं कहते कि जो पूज्य हैं वे हमारे गुरु हैं। कान में मन्त्र फूँकनेवाले ही हमारे गुरु हैं, उस मन्त्र का अर्थ भी उनको मालूम नहीं है, अथवा गुरुजी हमारे झूठे मुक़द्दमे में प्रधान साक्षी हैं। गुरुजी की योग्यता तो यह है, परन्तु उनकी चरण-रज से अपना मस्तक पवित्र करने की हमें बड़ी लालसा रहती है। इस प्रकार के सिद्धान्त के अनुसार हमें भक्ति-भाजन को ढूँढ़ना नहीं पड़ता। बड़े आराम की भक्ति है।

वायु ने कहा—शिक्षा के प्रभाव से हम लोगों का हृदय आजकल डाँवाँडोल होगया है, इसके उदाहरण के स्थान पर हम बङ्किम बाबू के कृष्ण-चरित्र को ही लेते हैं। बङ्किम बाबू ने कृष्ण की पूजा करने और उनकी पूजा प्रचारित करने के पहले, श्रीकृष्ण को निर्मल और निष्कलङ्क बनाने का प्रयत्न किया है। उनका यह प्रयत्न इतना बढ़ गया है कि कृष्ण के चरित्र से अप्राकृतिक बातों को उन्होंने काट-छाँट कर बिलकुल अलग कर दिया है; अपने मानसिक ऊँचे आदर्श पर उन्होंने श्रीकृष्ण को बैठाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने यह बात कहीं नहीं कही है कि देवताओं के लिए कोई दोष नहीं है, अथवा तेजस्वियों के सभी दोष क्षन्तव्य होते हैं। उन्होंने एक नये असन्तोष का अंकुर उत्पन्न किया है। सच्चे देवता को ढूँढ़ने के लिए उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया है। बङ्किम बाबू इस प्रकृति के मनुष्य नहीं थे कि जिसको देखा उसीको प्रणाम किया और सन्तुष्ट होगये।

क्षिति ने कहा—इस असन्तोष के न रहने के कारण बहुत

दिनों से देवता को देवता होने की, पूज्य को उन्नत बनने की और मूर्त्ति को भाव के अनुसार होने की आवश्यकता नहीं हुई है। ब्राह्मण को हम देवता कहते हैं, इस कारण बिना कारण ही ब्राह्मण पूजा पाते हैं और हम लोग भी भक्ति करने के बन्धन से छूट जाते हैं। देवता समझ कर स्त्री पूजा करती है इसलिए पति किसी भी योग्यता को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता, और स्त्री को भी यथार्थ भक्ति-योग्य पति के न मिलने का कोई कष्ट नहीं होता। सौन्दर्य का अनुभव करने के लिए सुन्दर पदार्थ की आवश्यकता नहीं है, भक्ति करने के लिए भक्तिभाजन का भी कोई प्रयोजन नहीं है—इस प्रकार की परम सन्तोष-वृत्ति को हम सुभीता नहीं मान सकते। इससे समाज की दीनता, अप्रतिष्ठा और अवनति होती है। बहिर्जगत् की उपेक्षा करके—उसे लुप्त करके—केवल मानसिक जगत् को ही सर्व-प्रधान मानना हानिकारी है; जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल को काटने के समान है।

सभ्यता का आदर्श

नदी ने कहा—देखो भाई, आज घर में उत्सव है, भले भले आदमी आवेंगे, अतः तुम लोग अपने व्योम से कह दो कि आज वह सभ्यवेश में आवे।

यह सुन कर हम सब लोग हँसने लगे। कुछ अप्रसन्न होकर दीप्ति ने कहा—नहीं जी, यह हँसने की बात नहीं है। तुम लोग व्योम से अवश्य कह दो, नहीं तो न मालूम वह सभ्य-समाज में कैसा वेश बनाकर आवे। इन सब बातों में समाज का अनुगमन विशेष आवश्यक है।

इस बात को और बढ़ाने की इच्छा से वायु ने कहा—क्यों, आवश्यकता क्यों है ?

दीप्ति ने कहा—कवि काव्य-संसार में अपने शासन का तिरस्कार जिस प्रकार नहीं होने देता,—छन्दों की शिथिलता, विन्यास की अप्रौढ़ता, शब्दों की कर्कशता आदि को देखना पसन्द नहीं करता,—उसी प्रकार हम लोगों के आचार, व्यवहार, भूषण आदि के विषय में भी समाज का कठोर शासन है। उसका पालन न करना अनुचित है। यदि समाज इस प्रकार कठोर शासन न करे तो उसकी शृङ्खला और सुन्दरता बिगड़ जाय।

क्षिति ने कहा—व्योम यदि मनुष्य न होकर शब्द होता तो उसको भट्टीकाव्य में भी स्थान न मिलता, केवल मुग्ध-बोध व्याकरण के सूत्रों के सहारे ही उसे रहना पड़ता।

हमने कहा—समाज को सुन्दर, शिष्ट और शृङ्खलित बनाना हम सबका कर्तव्य है। परन्तु अन्यमनस्क बेचारा व्योम और सब बातों को भूलकर लम्बे पैर बढ़ाते चला जाता है तो क्या बुरा लगता है!

दीप्ति ने कहा—यदि उसके कपड़े अच्छे होते तो वह और भी अच्छा मालूम होता।

क्षिति ने कहा—सच सच कहो, यदि व्योम अच्छे अच्छे कपड़े पहने तो क्या अच्छा लगेगा? यदि हाथी के मोर की पूँछ लग जाय तो क्या उससे हाथी की शोभा बढ़ेगी, और मोर ही क्या हाथी की पूँछ से शोभित होगा? इसी प्रकार तुम्हारे व्योम को भी वायु के कपड़े नहीं सजते, और वायु यदि व्योम का कपड़ा पहने तो वह घर में घुसने देने के योग्य भी न रह जाय।

वायु ने कहा—वेश-भूषा, आचार-व्यवहार आदि की त्रुटि जिस प्रकार अज्ञता, असावधानता, मूर्खता आदि प्रकाशित करती है उसी प्रकार वह देखने में भी कुत्सित मालूम होती है। इसी कारण आज यह बङ्गाली-समाज इतना श्रीहीन होगया है। दरिद्र और समाज से बहिष्कृत दोनों ही समान हैं। आज बङ्गाली-समाज जैसे पृथिवी के समाज से बाहर है। हिन्दुस्तानियों की सलाम के समान बङ्गाली के पास साधारण अभिवादन का कोई शब्द नहीं है। इसका कारण यह है कि बङ्गाली को केवल घर में रहना है, वह केवल गाँव का रहनेवाला जीव है। वह अपने घर और गाँव के सम्बन्धियों को जानता है, पृथिवी के और किसीसे उसका सम्बन्ध ही क्या है? इसी कारण किसी अपरिचित समाज के साथ शिष्टाचार का नियम ढूँढ़ने पर भी उसे नहीं मिलता। अँगरेज़ हो चाहे चीना, सभी के शिष्टाचार के लिए हिन्दुस्तानी आदमी सलाम कह कर अभिवादन कर सकता है, और हम बङ्गाली वहाँ नमस्कार तो कर नहीं सकते, केवल असभ्य की तरह खड़े रहते हैं। बङ्गाली स्त्रियाँ भी आवृत नहीं हैं। वे सदा ही अनावृत रहती हैं, क्योंकि वे तो सदा घर में ही रहती हैं। अतएव जेठ, ससुर आदि सम्बन्धियों से प्रचलित-लज्जा का परिमाण तो अधिक है परन्तु साधारण सभ्य-समाज में लज्जा-विषयक उनका कुछ भी ध्यान नहीं है। कपड़ा पहनने और न पहनने के विषय में बङ्गाली पुरुषों की भी बड़ी उपेक्षा है। सर्वदा अपने ही समाज में रहने से, दूसरे समाजवालों से सम्बन्ध न रहने के कारण, इस विषय में उन लोगों के हृदय में एक प्रकार की उपेक्षा बद्ध-मूल होगई है। अतएव बङ्गालियों की वेश-भूषा, आचार-

व्यवहार आदि के अभाव से उनकी अलसता, शिथिलता, स्वेच्छाचारिता तथा आत्मसम्मान का अभाव प्रकाशित होता है, अतः यह बङ्गाली जाति की वर्बरता का चिह्न है।

मैंने कहा—परन्तु इसके लिए हम लोगों को लज्जित न होना चाहिए। एक ऐसा रोग होता है कि उसके कारण मनुष्य जो कुछ खाता है वह सब शक्कर हो जाता है, इसी प्रकार हमारे देश में भला-बुरा जो कुछ है वह सब एक अद्भुत मानसिक विकार के कारण अहङ्कार के रूप में परिणत हो जाता है। अहङ्कार-वश हम लोग कहते हैं कि हमारी सभ्यता आध्यात्मिक है, खाने-पीने से उसका सम्बन्ध नहीं। अतएव बाहरी पदार्थों की ओर हम ध्यान ही नहीं देते, इन जड़ पदार्थों का कुछ भी मूल्य हम नहीं समझते।

वायु ने कहा—जिनका चित्त किसी उच्चतम विषय की ओर लग गया है वे यदि ऐसी छोटी छोटी बातों को भूल जायँ या उधर से उदासीन रहें तो उनको इसके लिए कोई दोष भी नहीं देता और उनका कोई उपहास भी नहीं करता। हर एक समाज में इस प्रकार के मनुष्य बड़ी प्रतिष्ठा और ऊँची दृष्टि से देखे जाते हैं। प्राचीन भारतवर्ष में पढ़ने-पढ़ानेवाले ब्राह्मण इसी श्रेणी के समझे जाते थे। वे क्षत्रिय या वैश्य के समान वेश-भूषा तथा काम-काज में लगे रहेंगे, ऐसी उनसे कोई भी आशा नहीं करता था। योरप में भी इस सम्प्रदाय के मनुष्य थे और वहाँ आज भी वर्त्तमान हैं। मध्य युग में उत्पन्न होनेवाले आचार्यों की बात छोड़ देने पर भी आधुनिक युग के न्यूटन आदि इसी श्रेणी के विद्वान् योरप में उत्पन्न हुए थे जिनका वेश-भूषा की ओर विशेष ध्यान न था। वे किसी के निमन्त्रण में

साधारण वेश से जाते थे और लौकिक व्यवहार के नियमों का भी पालन नहीं करते थे। तथापि समाज न उनको दण्ड देता था और न उनका उपहास करता था। सभी समाजों में इस प्रकार के थोड़े से महात्मा सदा ही रहते हैं। ये समाज में रहने पर भी समाज से बाहर रहते हैं, और समाज भी इस कारण उनपर अप्रसन्न नहीं होता। क्योंकि वे इस प्रकार रहकर भी समाज का कल्याण करते हैं। परन्तु आश्चर्य है कि बङ्गाल में थोड़े से मनुष्य ही नहीं किन्तु समूचा देश सब प्रकार की स्वभाव-विचित्रताओं को भूल कर, समाज के नियमों को एक ओर रख कर, अनायास ही उस आध्यात्मिकता के ऊँचे शिखर पर चढ़ता जाता है। हम लोग ढीले ढाले कपड़े और आचारों को लेकर बड़े आनन्द से अपना समय बिता रहे हैं। हम लोग जो चाहें करें, जैसा चाहें करें, कोई रोकने-टोकनेवाला नहीं है, क्योंकि हम सब लोग समान हैं। सभी परब्रह्म में लीन होने के लिए तैयार बैठे हैं।

इसी समय अपनी बेतरह लम्बी लाठी लिये व्योम वहाँ उपस्थित हुआ। आज का उसका वेश दूसरे दिन के वेशों से भी अद्भुत है। क्योंकि आज उत्सव का दिन है इस कारण वह सज कर आया है। ऊपर से एक लम्बी और ढीली-ढाली चपकन पहने है, उसके भीतर और बहुत से मैले कपड़े पहने है। भीतर के कपड़ों के छोर इधर उधर दीख पड़ते हैं। व्योम के इस विलक्षण वेश को देख कर हम लोग हँसी न रोक सके। दीप्ति और नदी ने मन ही मन उसका तिरस्कार किया।

व्योम ने पूछा—तुम आज किस विषय का विचार कर रहे हो?

वायु ने हम लोगों के विचार का विषय संक्षेप में उसे सुनाया। वायु ने कहा—हमारे सारे देशवासियों ने वैराग्य की दशा का वेश बना लिया है।

व्योम ने कहा—बिना वैराग्य के संसार का कोई भी बड़ा काम नहीं हो सकता। जिस प्रकार प्रकाश और छाया का सम्बन्ध है उसी प्रकार वैराग्य भी कर्म के साथ मिला हुआ है। जिसमें वैराग्य जिस परिमाण में वर्तमान है उसीके अनुसार वह संसार में काम भी करता है।

क्षिति ने कहा—ठीक है, इसीलिए जिस समय पृथिवी का समस्त समाज अनेक प्रकार के सुखों की आशा से दिन-रात परिश्रम कर रहा था उस समय वैरागी डारविन संसार के हज़ारों काम छोड़ कर इस बात को प्रमाणित करने के लिए प्रयत्न कर रहा था कि मानव-समाज का आदि-पुरुष वानर था। इस समाचार के प्राप्त करने के लिए डारविन को बड़ा वैराग्य-साधन करना पड़ा था।

व्योम ने कहा—यदि गेरीबाल्डी संसार की आसक्ति से अपने को बाहर न करता तो इटली को स्वाधीनता कौन दिलवाता? संसार की जो जातियां कर्म-निपुण हैं वे ही यथार्थ में वैराग्य की महिमा भी जानती हैं। ज्ञान-लाभ के लिए जो मेरु-प्रदेश की हिम-शीतल मृत्यु-शाला के तुषार-रुद्ध द्वार पर बार बार आघात करते हैं, जो धर्म-प्रचार करने के लिए नर-मांस-भक्षी राक्षसों के देश में निर्भय होकर जाते हैं, जो मातृभूमि की पुकार सुन कर बड़ी शीघ्रता से धन-जन-मोह-ममता आदि को अनायास छोड़ कर अनेक कष्ट

उठाने के लिए तथा मृत्यु के मुँह में कूद पड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं वे ही जानते हैं कि वैराग्य का अर्थ क्या है। वैराग्य का अर्थ जानने का अधिकार भी उन्हींको है। हम लोग कर्महीन, श्री-हीन, निश्चेष्ट और निर्जीव हो गये हैं। वैराग्य शब्द का अर्थ भला हम क्या समझ सकेंगे। हमारा वैराग्य अधःपतित जाति की मूर्च्छा है, जड़ता है, इसके लिए हमको अहङ्कार न करना चाहिए।

क्षिति ने कहा—हम लोग अपनी इस मूर्च्छावस्था को आध्यात्मिकता पाने की अवस्था समझते हैं और स्वयं अपनी भक्ति करते हैं।

व्योम ने कहा—कर्मी मनुष्य कर्म के कठिन नियमों को मान कर चलता है। अतएव कर्मों के नियम पालने में लगे रहने के कारण समाज के बहुत से छोटे छोटे नियम उससे छूट जाते हैं, परन्तु वह अकर्मण्य नहीं बनता। जो आफ़िस जाने के लिए दौड़ा जा रहा है उससे क्या कोई ऐसी आशा कर सकता है कि वह ठहर कर थोड़ी देर तक हमारे साथ शिष्टालाप करेगा? अँगरेज़ माली जब कपड़े उतार कर और कमीज़ की आस्तीन चढ़ा कर बाग़ का काम करने लगता है उस समय कोई ऊँचे घराने की स्त्री उस माली को देख कर लज्जित नहीं होती, क्योंकि लज्जित होने का कोई कारण नहीं है। परन्तु हम लोग जब किसी काम-काज के न रहने से दिन भर अपने घर के सामने वाली सड़क पर बड़ा पेट खोले इधर उधर घूमा करते हैं उस समय संसार के सामने किस वैराग्य और किस आध्यात्मिकता के भरोसे अपनी असभ्यता

छिपाना चाहते हैं ! जिस वैराग्य में कोई महान् और क्रिया-शील साधन नहीं है वह वैराग्य वैराग्य नहीं, वह तो असभ्यता का नामान्तर है ।

व्योम के मुँह से ये बातें सुन कर नदी आश्चर्य-चकित हो गई । वह थोड़ी देर तक चुप रह कर बोली—जब तक हम सभ्य लोग अपनी सभ्यता की रक्षा करने की ओर विशेष ध्यान न देंगे और जब तक हम लोग स्वयं अपने वेश, व्यवहार, वासस्थान आदि को सभ्योचित न बनावेंगे तब तक न तो हम अपना सम्मान कर सकेंगे और न दूसरे ही करेंगे । हम लोगों ने अपनी प्रतिष्ठा आप ही बहुत घटा दी है ।

क्षिति ने कहा—प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए वेतन-वृद्धि की भी आवश्यकता है, परन्तु वह तो मालिकों के अधीन है ।

दीप्ति ने कहा—वेतन-वृद्धि की विशेष आवश्यकता नहीं है, किन्तु प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए चेतन-वृद्धि होनी चाहिए । इस देश के धनी व्यक्ति भी बड़े गन्दे रहते हैं, परन्तु इसका कारण उनकी अलसता और मूर्खता है, धन का अभाव कारण नहीं है । जिनके पास धन है वे समझते हैं कि जोड़ी गाड़ी के बिना हमारे धनी होने से क्या फल ! परन्तु उनके घर में जाकर देखने पर मालूम होता है कि उनका घर तो सभ्य मनुष्यों की गोशाला के योग्य भी नहीं । अहङ्कार-वृद्धि के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उन बातों की ओर हम लोगों का ध्यान भी जाता है, उसके लिए हम लोग प्रयत्न भी करते हैं; परन्तु जिन पर हमारा आत्मसम्मान निर्भर है, जिससे हमारे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है उसके लिए हम लोगों

के धन की कमी हो जाती है । इस देश की स्त्रियाँ भी इस बात को नहीं समझतीं कि सुन्दरता के लिए थोड़े से आभूषणों के पहनने की आवश्यकता है, परन्तु अधिक गहने पहन कर अपने धनोन्माद का परिचय देना अशिष्टता और असभ्यता है । सो इसके लिए—इस धनोन्माद की तृप्ति के लिए—उनके पास धन की कमी नहीं होती । आँगने में कचड़ा पड़ा है, घर की दीवार तेल और कालिख से पुती हुई है परन्तु उनको साफ़ करने की ओर ध्यान ही नहीं है । कमी धन की नहीं है, सच्ची बात यह है कि इस देश में अभी तक यथार्थ सभ्यता स्थापित नहीं हुई ।

क्षिति ने कहा—मैं तो समझती हूँ कि हम लोगों का स्वभाव बालकों के समान है, अतएव हम लोग अत्यन्त सरल हैं । धूल में, कीचड़ में पड़े रहने, नङ्गे रहने तथा किसी भी नियम का पालन न करने आदि से हम लोगों को कुछ लज्जा नहीं मालूम होती । हम लोगों की सभी बातें अकृत्रिम और आध्यात्मिक हैं ।

अपूर्व रामायण

घर में कोई मङ्गलोत्सव होनेवाला है, अतएव घर के पास ही एक ऊँचे मचान पर नौबतवाले नौबत बजा रहे हैं । व्योम बहुत देर तक आँखें बन्द किये बैठा था, सहसा वह आँखें खोल कर बोल उठा ।

व्योम ने कहा—हम लोगों की देसी रागिनियों में मृत्यु-शोक का भाव व्याप्त है; ये स्वर रो रो कर कह रहे हैं कि इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है । इस संसार में सभी चञ्चल सभी विनाशी हैं । यह बात हम लोगों के लिए न तो नई है और

न प्रिय ही है, किन्तु अटल कठोर सत्य है। तथापि यह ध्वनि आज शहनाई के सुर में सुनने से इतनी मधुर क्यों लगती है? मधुर लगने का कारण यह है कि यद्यपि यह सत्य कठोर है, परन्तु शहनाई के सब से मधुर स्वर में यह गाया जा रहा है—मालूम होता है, मृत्यु भी इसी रागिनी के समान दयावती और सुन्दरी है। इस संसार की छाती पर जो बड़ा भारी पत्थर रक्खा हुआ है, वह इस गान के प्रभाव से हलका मालूम होने लगता है। एक के हृदय से जो वेदना उत्पन्न होती थी, जो क्रन्दन चारों ओर फैल जाता था, जो रोने की ध्वनि हृदय को विचलित कर दिया करती थी, उसी को जगत् के मुँह से ध्वनित करके शहनाई करुणा-पूर्ण और सान्त्वना-मय रागिनी की सृष्टि करती है।

दीप्ति और नदी अपने अतिथि-सत्कार का काम समाप्त करके आईं और बैठ गईं। परन्तु आज मङ्गलोत्सव के दिन जब उन लोगों ने व्योम को मृत्युविषयक आलोचना करते देखा तो वे दुखी होकर वहाँ से उठ कर चली गईं। परन्तु उन लोगों का दुःखित होना व्योम को मालूम नहीं हुआ। वह दृढ़ता-पूर्वक अपनी बात कहता ही रहा। नौबत बहुत अच्छी बज रही थी इस कारण हम लोगों ने व्योम के साथ बहुत तर्क-वितर्क नहीं किया।

व्योम ने कहा—इस नौबत को सुनने से हमारे हृदय में एक बिलकुल नई बात उत्पन्न हुई है—हर एक कविता में एक एक विशेष रस वर्तमान रहता है। अलङ्कारशास्त्र में शृङ्गार, करुण और शान्त आदि नामों से उस रस का विभाग किया गया है। मैं

समझता हूँ कि यदि काव्य-दृष्टि से सृष्टि-तत्त्व पर विचार किया जाय तो मृत्यु ही उनमें सब से प्रधान रस निश्चित होगा। मृत्यु के कारण ही उसमें यथार्थ कवित्व-शक्ति उत्पन्न हुई है। यदि मृत्यु न होती, संसार में जिस वस्तु का जहाँ स्थान है वह वस्तु यदि सदा अविकृत रूप से वहीं वर्तमान रहती तो यह संसार स्थायी क़ब्रिस्तान के समान अत्यन्त सङ्कीर्ण हो जाता, अत्यन्त कठिन और सब ओर से बँध जाता। इस निश्चलता के स्थायी भार का वहन करना मनुष्यों के लिए बहुत ही कठिन हो जाता। यह अस्तित्व का भारी भार मृत्यु के द्वारा हलका होता रहता है। विचरण करने के लिए जगत् के बड़े भारी मैदान को वह साफ़ रखती है। मृत्यु के केन्द्र की ओर यह जगत् असीम है। जो प्रत्यक्ष है, जो वर्तमान है, वही हम लोगों के लिए उपादेय और आदरणीय है। वही यदि चिरस्थायी होता तो उसका अकेलापन बेहद अखरता। फिर उसकी शिकायत ही नहीं हो सकती। उस समय यह कौन बतलाता कि इसके बाहर भी असीमता है? यदि मृत्यु अपने प्रबल प्रवाह में अनन्त को बहा न ले जाती तो उस अनन्त के भार को यह जगत् कैसे सँभाल सकता?

वायु ने कहा—यदि मृत्यु न होती तो मनुष्यों के जीवित रहने की कोई भी मर्यादा नियत न रहती। दुनिया जिसकी निन्दा करती है, जिसका तिरस्कार करती है वह व्यक्ति भी मृत्यु रहने के कारण अपनी ज़िन्दगी से ऊब नहीं जाता।

क्षिति ने कहा—मैं इसके लिए विशेष चिन्तित नहीं हूँ। मेरे मत से, मृत्यु के न रहने पर सब पदार्थों को परिचालित कौन

करता ? किसके द्वारा सब पदार्थ अपने अपने स्थान से आगे बढ़ाये जाते, और यहाँ सब से अधिक चिन्ता की भी बात होती। उस समय यदि व्योम अद्वैत तत्त्व की आलोचना करने बैठते तो कोई भी इनसे हाथ जोड़ कर यह प्रार्थना न करता कि भाई इस समय रहने दो, समय नहीं है। क्योंकि मृत्यु के न रहने पर समय का भी अन्त न होता। इस समय प्रायः सात आठ वर्ष की अवस्था में बालक पढ़ना प्रारम्भ करते हैं और पचीस वर्ष तक पढ़ने के पश्चात् कालेज से डिग्री पाकर अथवा फ़ेल होकर निश्चिन्त हो जाते हैं। मृत्यु के अभाव में, अमुक अवस्था में पढ़ना प्रारम्भ करना चाहिए और अमुक अवस्था में पढ़ना समाप्त करना चाहिए, इसका कोई भी नियम न रहता। न तो पढ़ना प्रारम्भ करने का ही नियम होता और न शीघ्रता-पूर्वक समाप्त होने का ही। सब प्रकार के काम-काज का और जीवन-यात्रा का कामा, सेमीकोलन, पूर्णविराम आदि के द्वारा विभाग न हो सकता।

व्योम ने इन बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वह अपनी धुन में लगा ही रहा और फिर कहने लगा—हम लोगों का स्वर्ग, पुण्य, देवत्व आदि मृत्यु के परे है। यहाँ पृथिवी पर न्याय नहीं है—मेरी समझ में मृत्यु के बाद सुविचार होता है। पृथिवी में इच्छाएँ पूर्ण नहीं होतीं, आशा है मृत्यु के पश्चात्—मृत्यु की कल्पतरु-छाया में—आशाएँ पूर्ण होती होंगी। इस जगत् में चारों ओर स्थूल और कठिन पदार्थ दीख पड़ते हैं जिनका आघात हम लोगों के मानसिक आदर्श पर लगता है। जगत् की जिस सीमा की ओर मृत्यु है, जहाँ सब पदार्थों का अवसान होता है, वहीं हमारी प्रिय और

प्रबल वासना को—सुन्दर और शुद्ध कल्पना को—रोकनेवाला कोई नहीं है। हम लोगों के शिव श्मशान-वासी हैं, अतएव हमारे मङ्गल का सबसे उत्तम आदर्श है मृत्यु।

मुल्तानी समाप्त होने पर शाम को—जब सुनहरा अन्धकार चारों ओर फैल रहा था तब—नौबत में पुरवी बजने लगी। वायु ने कहा—मनुष्य अपनी जिन आशाओं और आकांक्षाओं को मृत्यु के उस पार स्वर्गलोक में निर्वासित कर देता है, उन्हीं सबको—अश्रु-जल-प्लावित हृदय के धन को—यह शहनाई का सुर पुनः इस पृथिवी में ही लौटा लाता है। साहित्य, सङ्गीत तथा अन्य ललित कलाएँ मनुष्य-हृदय के समस्त नित्य पदार्थों को यहीं इसी जीवन में स्थापित करती हैं। मानों ये सब कहती हैं कि पृथिवी स्वर्ग है, सत्यता सुन्दर है और यह क्षणिक जीवन ही अमर है। अपने समस्त प्रेम को इकट्ठा करके मृत्यु के उस पार भेज देना चाहिए, अथवा इसी पृथिवी में रखना चाहिए, इसी बात पर बहस है। वैराग्य कहता है कि मृत्यु के पश्चात् ही यथार्थ प्रेम का स्थान है; साहित्य और ललित कला आदि कहते हैं कि हम लोग यथार्थ प्रेम का स्थान इसी लोक में दिखा देते हैं।

क्षिति ने कहा—मैं इस विषय में रामायण की एक अपूर्व कथा कहकर इस सभा का विसर्जन करूँगी।

राजा रामचन्द्र—अर्थात् मनुष्य—प्रीति नामक सीता को राक्षसों के हाथ से उबार कर ले आये और सुख-पूर्वक अयोध्या पुरी में रहने लगे। इसी समय धर्मशास्त्रों का एक दल आया और उसने प्रीति को कलङ्कित बताया। उस दल ने कहा कि यह अनित्य पदार्थों

के साथ रह कर आई है अतएव इसका परित्याग करना चाहिए। अनित्य पदार्थों के साथ रहने पर भी यह देवांश से उत्पन्न राजकुमारी कलङ्कित नहीं हुई थी, परन्तु इस बात को आज प्रमाणित कौन करेगा? इसको प्रमाणित करने के लिए एक अग्नि-परीक्षा थी, पर वह परीक्षा तो होगई है। अग्नि से यह राजकुमारी जली नहीं, किन्तु और भी अधिक उज्वल होकर चमकने लगी। तथापि धर्मशास्त्रों के कानाफ़ूसी करने से अन्त में राजा ने प्रीति को मृत्यु—तमसा—के तीर पर निर्वासित कर दिया। तदनन्तर महाकवि के और उनके शिष्यों के आश्रम में यह अनाथिनी रहने लगी। वहाँ इसने लव और कुश—काव्य और ललित कला—नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। वही दोनों बालक कवि से राग-रागिनी की शिक्षा पाकर राज-सभा में आज अपनी परित्यक्ता माता का यशोगान करने आये हैं। इन नवीन गायकों के गाने से विरही राजा का चित्त व्याकुल हो गया और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। अभी उत्तरकाण्ड समाप्त नहीं हुआ है। अभी तो विजय-महोत्सव देखना बाक़ी है। तो क्या त्याग-प्रचारक प्रवीण वैराग्य-धर्म का विजय-महोत्सव? जी नहीं, प्रेममङ्गल-गायक इन दोनों अमर बालकों का।

वैज्ञानिक कौतूहल।

विज्ञान की आदिम उत्पत्ति और उसके अन्तिम उद्देश्य के विषय में व्योम और क्षिति में अनेक प्रकार का तर्क-वितर्क हो रहा था। इसी विषय में व्योम ने कहा—

यद्यपि हम लोगों की कौतूहल-वृत्ति के कारण ही विज्ञान की उत्पत्ति हुई है, तथापि मेरा विश्वास है कि हम लोगों का कौतूहल

वैज्ञानिक अनुसन्धान करने ही के लिए उत्पन्न नहीं होता। हम लोगों के कुतूहल की उत्पत्ति तो अवैज्ञानिक ढङ्ग से ही होती है। हम लोगों की कुतूहल-वृत्ति पारस पत्थर की खोज में निकलती है, परन्तु उसे मिलती हैं किसी प्राचीन जीव की ठठरियाँ; वह निकलती है अलाउद्दीन के विचित्र दीपक के लिए, परन्तु उसे मिलता है दियासलाई का बक्स; वह चाहती है 'कीमिया' परन्तु उसे मिलता है रसायनशास्त्र। आस्ट्रालोजी के लिए वह आकाश की छानबीन करती है परन्तु उसे मिलती है आस्ट्रानेमी। वह नियम नहीं ढूँढ़ती, वह कार्य-कारण-परम्परा को जानना नहीं चाहती, वह ढूँढ़ती है नियमों का न होना। वह सोचती है कि वह वस्तु प्राप्त हो जिसमें कार्य-कारण न हो, जहाँ कारण से कार्य और कार्य से कारण उत्पन्न होने का झंझट न रहे; वह चाहती है नूतनता, परन्तु बूढ़े विज्ञान के कारण उसकी सभी नूतनताएँ पुरातन के रूप में परिणत हो जाती हैं। इन्द्रधनुष को वह परकला-विच्छुरित वर्णमाला (रङ्गों की श्रेणी) का परिवर्द्धित रूप और पृथ्वी की गति को पके हुए ताल-फल के पतन के समान प्रमाणित करने का प्रयत्न करती है।

जिस नियम के वशवर्ती धूलिकण हैं, उसी नियम के अधीन यह अनन्त आकाश और अनन्त काल है। इस आविष्कार के कारण आजकल हम लोग आनन्दित और विस्मित हो रहे हैं। परन्तु यह आनन्द और विस्मय मनुष्यों के लिए स्वाभाविक नहीं है। इस अनन्त आकाश की ज्योतिर्मण्डली का अनुसन्धान करने के लिए मनुष्य ने जब प्रयत्न करना प्रारम्भ किया था, उस समय उसकी यह दृढ़ धारणा थी कि यह ज्योतिर्मय और अन्धकार-मय स्थान

धूलिकण के नियमों से संचालित नहीं होता होगा। वहाँ आश्चर्य-मय अनियमित अलौकिक उत्सव होगा। परन्तु अनुसन्धान करने पर उसे मालूम हुआ कि सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, सप्तर्षिमण्डल आदि भी इसी धूलिकण के नियम से परिचालित होते हैं। ये भी उसी नियम के अधीन हैं। नूतन पदार्थ के जानने के लिए हम लोगों के हृदय में जो आनन्द उत्पन्न होता है वह हम लोगों का एक कृत्रिम अभ्यास है, वह स्वभाव नहीं है।

वायु ने कहा—यह बात असत्य नहीं है। पारस पत्थर के लिए और अलाउद्दीन के दीपक के लिए स्वभाव से मनुष्यों के हृदय में एक प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती है। बाल्यावस्था में 'कथामाला' की एक कहानी मैंने पढ़ी थी। उसमें लिखा था कि मरने के समय एक किसान अपने पुत्र से कह गया कि तुम्हारे लिए अमुक स्थान में हमने धन गाड़ दिया है। उसका पुत्र निर्दिष्ट खेत में धन ढूँढ़ने लगा, पर वह कृतकार्य नहीं हुआ। परन्तु वहाँ की धरती खोदी जाने के कारण खेत में उस वर्ष अन्न बहुत उत्पन्न हुआ, जिससे किसान की दीनता-दरिद्रता जाती रही। बाल्यावस्था में सभी बालकों को इस कहानी के पढ़ने से कष्ट होता है। खेती से धन सभी को मिलता है, परन्तु वह तो चाहता था गुप्त-धन, जो गुप्त ही होगया। यही नियम का अभाव है, इसका प्राप्त होना आकस्मिक है, इसी कारण मनुष्यों की इस ओर अधिक रुचि होती है। 'कथामाला' में चाहे जो लिखा हो, परन्तु वह किसान का पुत्र अपने पिता का कृतज्ञ नहीं हुआ, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। वैज्ञानिक नियमों का तिरस्कार होना मनुष्यों को बहुत प्रिय है,

हम लोगों को इसका प्रमाण प्रतिदिन मिलता है। जो वैद्य अपनी निपुणता और चिकित्सा की अभिज्ञता से रोगियों का रोग हटाता है, उसके विषय में हम कहते हैं कि इसके हाथ में यश है, यह यशस्वी है। शास्त्रीय चिकित्सा के द्वारा वैद्य ने रोग दूर किया, इस बात से न तो हम लोगों की तृप्ति ही होती है और न आनन्द ही होता है। चिकित्सा करनेवाले की निपुणता न मानकर उसमें अनियम को कारण बता कर हम लोग तृप्त होते हैं।

मैंने कहा—इसका कारण यह है कि यद्यपि नियम व्यापक है, अनन्त काल और देश में फैला हुआ है, तथापि सीमा-बद्ध है,—यह अपनी परिधि से इधर उधर कभी नहीं हटता,—अतएव उसका नाम नियम है और इसी कारण मनुष्य की कल्पना भी उसके अधीन रहना नहीं चाहती। शास्त्रीय चिकित्सा से हम लोग अधिक फल होने की आशा नहीं करते—रोग असाध्य है, चिकित्सा से दूर होने की आशा नहीं है, नियम अपनी सीमा तक पहुँच गया है। उस समय हाथ के यश नामक पदार्थ पर हम लोग भरोसा करते हैं क्योंकि उसकी सीमा नहीं है अतएव हम लोगों की आशा–कल्पना–उसके द्वारा रोकी नहीं जाती। इसलिए वैद्य की दवा की अपेक्षा महात्मा की दवा विशेष महत्त्व की समझी जाती है। महात्मा की औषध के कितने अच्छे अच्छे फल होंगे, इसकी कोई सीमा नहीं है, इस आशा का अन्त नहीं है। मनुष्य की जानकारी इस विषय में ज्यों ज्यों अधिक बढ़ती है, अमिट नियमों का उसे ज्यों ज्यों अधिक परिचय होता है, त्यों त्यों वह कुतूहल की स्वाभाविक नई अभिलाषा को सीमा-बद्ध करता है। उस समय

नियम की प्रतिष्ठा राजपद पर होती है। पहले तो अनिच्छा से परन्तु पीछे अभ्यास के कारण उस पर मनुष्य की आन्तरिक भक्ति-श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

व्योम ने कहा—परन्तु वह भक्ति यथार्थ भक्ति नहीं है, वह काम-चलाऊ भक्ति है। जब इस बात का निश्चय हो जाता है कि संसार के सभी कार्य नियमाधीन हैं, कोई भी काम नियम का व्यतिक्रम करके नहीं होता, उस समय अगत्या मनुष्य को नियमों के अधीन होना पड़ता है। उस समय विज्ञान के विरुद्ध अनियम को महत्व नहीं दिया जाता। मन्त्र का डोरा (गण्डा), महात्माजी की विभूति, मन्त्र का जल आदि के उपयोग के समय भी इलेक्ट्रिसिटी, मेग्नाटिज़्म, हिप्नाटिज़्म आदि विज्ञान के नक़ली मार्का दिखला कर अपने आप को भुलाना पड़ता है। हम लोग नियम की अपेक्षा अनियम को अच्छा समझते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि स्वयं हम लोगों में भी एक स्थान पर नियम का अभाव है। हम लोगों की इच्छा-शक्ति सब नियमों के बाहर है। वह स्वाधीन है। चाहे वह पराधीन भी हो, परन्तु हम लोग उसे स्वाधीन ही समझते हैं। उस आन्तर प्रकृति की स्वाधीनता के समान बाहरी प्रकृति में भी स्वाधीनता का चित्र देखने की इच्छा हम लोगों को स्वभावतः उत्पन्न होती है और उस इच्छा से हम लोगों को आनन्द भी होता है। एक इच्छा से अनेक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। इच्छा के द्वारा जो फल हम लोगों को प्राप्त होते हैं वे बड़े ही प्रिय हैं। उन फलों के साथ ही साथ दूसरी अनेक इच्छाएँ भी उत्पन्न होती हैं। जब तक अनेक इच्छाएँ उत्पन्न न हों तब तक वे फल हम

लोगों को मीठे नहीं मालूम होते। अतएव जब तक हम लोगों को यह ज्ञान था कि इन्द्र हमारे लिए पानी बरसाते हैं, वायु हम लोगों के लिए शीतल वायु बहाता है, अग्नि से हम लोगों को प्रकाश मिलता है, तब तक हृदय में विशेष आनन्द होता था,— उस समय एक प्रकार की तृप्ति थी। परन्तु अब हम लोगों को विदित हुआ है कि वायु का चलना, धूप का होना और पानी बरसना आदि का सम्बन्ध किसी की इच्छा से नहीं है। प्रिय-अप्रिय, योग्य-अयोग्य आदि का विचार न कर ये सब काम नियमित होते रहते हैं। आकाश में जलीय परमाणु जब शीतल वायु के द्वारा एकत्रित होंगे उस समय महात्माजी के मस्तक पर पानी पड़ेहीगा, चाहे इससे उन्हें सर्दी ही क्यों न हो जाय। कोई दुष्ट ही क्यों न हो, तो भी उसके खेत में पानी बरसता ही है। विज्ञान की आलोचना करने से आज हम लोगों की यही धारणा हो गई है। यह धारणा अभ्यस्त हो गई है। परन्तु इससे हृदय तृप्त नहीं है, यह बात हम लोगों को अच्छी नहीं मालूम होती।

मैंने कहा—पहले हम लोगों ने स्वाधीन इच्छा का कर्त्तृत्व सिद्ध किया था, परन्तु आज आप लोग उस पद पर नियम को वरण करते हैं। विज्ञान की आलोचना के द्वारा यह निश्चय होता है कि यह जगत् आनन्द-शून्य और इच्छा-शक्ति-शून्य है। परन्तु जब तक हम लोगों के हृदय में आनन्द की मात्रा वर्तमान है, तब तक उसे जगत् के हृदय में बिना स्थापित किये हम लोगों को प्रसन्नता नहीं है। हम लोगों के हृदय में संसार के नियमों का एक प्रकार का विपर्यय है, और उस विपर्यय को संसार में कहीं भी

स्थान नहीं, यह बात मानना हम लोगों के लिए असम्भव है। क्योंकि हम लोगों की इच्छा एक विश्व-इच्छा की,—हम लोगों का प्रेम एक विश्व-प्रेम की,—अपेक्षा रखता है। इसी के आधार पर उनकी स्थिति है।

वायु ने कहा—जड़-प्रकृति नियम के अधीन है। जड़-प्रकृति के नियमों की दीवार चीन की दीवार से भी दृढ़ और ऊँची है। परन्तु मानव-प्रकृति में एक छोटा सा छिद्र है। उस छिद्र से देखने पर मालूम हुआ कि दीवार के उस पार अनियम का स्वराज्य वर्तमान है। और, वह इसी छिद्र के मार्ग से आकर हम लोगों से मिलता है। उसी राज्य से सुन्दरता, स्वाधीनता, प्रेम, आनन्द आदि—इस मार्ग से हो कर—हम लोगों के पास आते हैं। अतएव हम लोग उस सौन्दर्य को, उस प्रेम को विज्ञान के नियम में बाँधना नहीं चाहते।

इसी समय घर में नदी आई। उसने वायु से कहा—उस दिन दीप्ति की, पियानो बजाने की स्वरलिपि की, पुस्तक तुमने बहुत ढूँढ़ी थी परन्तु पता न लगा। बतलाओ, उसकी क्या दशा हुई?

वायु ने कहा—मुझे मालूम नहीं।

नदी ने कहा—रात को चूहा उस पुस्तक को उठा ले गया। उसे कुतर कर उसने पियानो के तारों में फेंक दिया। इस प्रकार अनर्थक हानि करने का कारण ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता।

वायु ने कहा—मालूम होता है, वह चूहा अपने कुल में एक शक्तिशाली वैज्ञानिक है। उसने अनेक प्रकार के अनुसन्धानों के द्वारा बजाने की पुस्तक और बाजे के तारों के परस्पर-सम्बन्ध का पता लगाया है। इस समय वह रात भर इसकी जाँच कर रहा है। एक-तान-पूर्ण सङ्गीत के रहस्य का आविष्कार करने के लिए

वह प्रयत्न कर रहा है; अपने पैने दाँतों से पुस्तक का विश्लेषण कर रहा है, और पियानो के तारों के साथ उसका मिलान करके उसे देख रहा है। अभी उसने स्वरलिपि की पुस्तक को कुतरना शुरू किया है, फिर वह बाजे के तारों को काटेगा, तख़्ते काटेगा, अन्त को बाजे में सैकड़ों छिद्र करके अपनी छोटी नाक के द्वारा उसकी परीक्षा करेगा। उसका काम ज्यों ज्यों आगे बढ़ेगा त्यों त्यों सङ्गीत-रहस्य भी उससे दूर होता जायगा। मैं समझता हूँ कि मूषक-कुल-तिलक ने जिस मार्ग का आश्रय लिया है उस मार्ग से वे अवश्य कागज़ और तारों के उपादान-विषयक नवीन सिद्धान्त का आविष्कार कर सकेंगे, परन्तु कागज़ और तारों का यथार्थ सम्बन्ध इस उपाय से नहीं मालुम हो सकता। अन्त को नई पौध के मूसों के मन में यह तर्क उपस्थित होगा कि कागज़ निरा कागज़ है, और तार भी केवल तार ही है। 'कागज़ और तारों में किसी ज्ञानवान प्राणी ने एक आनन्द-जनक सम्बन्ध स्थापित किया है,' यह प्राचीन मूषकों का युक्ति-हीन कुसंस्कार है। परन्तु इससे इतना फल अवश्य हुआ कि अनुसन्धान-कार्य में उसके प्रवृत्त होने से कागज़ और तारों की कठिनता की बहुत कुछ परीक्षा हो गई है।

कभी कभी बिल के भीतर से दाँतों के बजने की अपूर्व सङ्गीत-ध्वनि सुन पड़ती है। उस ध्वनि को सुन कर हृदय मुग्ध हो जाता है। यह क्या बात है?

